अध्याय ७

भगवान् चैतन्य के पाँच स्वरूप

अगत्येक-गतिं नत्वा हीनार्थाधिक-साधकम् ।
श्री-चैतन्यं लिख्यतेऽस्य प्रेम-भक्ति-वदान्यता ॥१॥

अगत्येक-गतिं नत्वा हीनार्थाधिक-साधकम् ।
श्री-चैतन्यं लिख्यतेऽस्य प्रेम-भक्ति-वदान्यता ॥१॥

अगति—सर्वाधिक पतितों के; **एक**—केवल एक; **गतिम्**—गति; **नत्वा**—नमस्कार करने के बाद; **हीन**—हीन, निम्न; **अर्थ**—अर्थ; **अधिक**—उससे बड़ा; **साधकम्**—जो कर सकता है; **श्री-चैतन्यम्**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **लिख्यते**—लिखा जा रहा है; **अस्य**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु का; **प्रेम**—प्रेम; **भक्ति**—भक्ति; **वदान्यता**—महानता, बड़प्पन।

अनुवाद

मैं सर्वप्रथम उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जो इस भौतिक जगत् में समस्त प्रकार की सम्पत्ति से विहीन व्यक्ति के लिए जीवन के चरम लक्ष्य हैं और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने वाले के लिए एकमात्र अर्थ हैं। इस तरह मैं उन भगवान् की प्रेममयी भक्ति के उदार योगदान के विषय में लिखने जा रहा हूँ।

तात्पर्य

मनुष्य भौतिक अस्तित्व की बद्ध अवस्था में निस्सहायता के वातावरण में रहता है, किन्तु माया के वशीभूत होकर बद्धजीव यह सोचता है कि वह अपने देश, समाज, मैत्री तथा प्रेम के द्वारा पूर्णतया सुरक्षित है। उसे यह पता नहीं रहता कि मृत्यु के समय ये सब उसे नहीं बचा सकते। भौतिक प्रकृति के नियम इतने

कठोर हैं कि हमारी सम्पत्ति हमें मृत्यु के क्रूर हाथों से बचा नहीं सकती। *भगवद्गीता* (१३.९) में कहा गया है—*जन्म-मृत्यु-जराव्याधिदुःख दोषानुदर्शनम्*—जो सचमुच प्रगति कर रहा है, उसे दुःखी जीवन के चार तत्त्वों—जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि—पर सदैव विचार करना चाहिए। जब तक मनुष्य भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं कर लेता, तब तक वह इन दुःखों से बच नहीं सकता। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त बद्धजीवों के एकमात्र आश्रय हैं। फलतः बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी भौतिक सम्पत्ति में आस्था नहीं रखता, अपितु वह पूर्ण रूप से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है। ऐसा व्यक्ति *अकिञ्चन* कहलाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जिसके पास इस भौतिक जगत् में कुछ भी नहीं होता। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् *अकिञ्चन-गोचर* भी कहे जाते हैं, क्योंकि वे ऐसे व्यक्ति द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, जिसकी आस्था भौतिक सम्पत्ति में नहीं रहती। अतएव ऐसा पूर्णतया शरणागत व्यक्ति, जो भौतिक सम्पत्ति पर निर्भर नहीं होता, उसके लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र आश्रय हैं।

प्रत्येक व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा अन्ततः मोक्ष पर आश्रित है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपने उदार चरित्र के कारण मोक्ष से भी श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करने वाले हैं। इसलिए इस श्लोक के *हीनार्थाधिक साधकम्* शब्द यह इंगित करते हैं कि यद्यपि भौतिक आकलन के अनुसार मोक्ष का पद धर्म, अर्थ तथा काम के निम्न-स्तरीय पदों से बड़ा है, किन्तु मोक्ष से भी ऊपर भक्ति एवं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य प्रेम का पद है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस महान् वरदान को प्रदान करने वाले हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*प्रेमा पुमार्थो महान्*—"भगवत्प्रेम समस्त मानव समाज के लिए परम वरदान है।" इसीलिए *श्री चैतन्य-चरितामृत* के लेखक श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करते हैं और तब भगवत्प्रेम का वरदान प्रदान करने में उनकी उदारता का वर्णन करते हैं।

জয় জয় মহাপ্রভু শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য ।
তাঁহার চরণাশ্রিত, সেই বড় ধন্য ॥২॥

जय जय महाप्रभु श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
ताँहार चरणाश्रित, सेइ बड़ धन्य ॥ २॥

जय—जय हो; **जय**—जय हो; **महाप्रभु**—महाप्रभु की; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—श्रीकृष्ण चैतन्य; **ताँहार**—उनके; **चरण-आश्रित**—जिसने चरणकमलों की शरण ली है; **सेइ**—वह; **बड़**—बहुत; **धन्य**—धन्य।

अनुवाद

मैं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की जय-जयकार करता हूँ। जिसने उनके चरणकमलों की शरण ले रखी है, वह सर्वाधिक धन्य व्यक्ति है।

तात्पर्य

प्रभु का अर्थ है स्वामी। श्री चैतन्य महाप्रभु सभी प्रभुओं के प्रभु हैं, इसलिए वे महाप्रभु कहलाते हैं। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की शरण लेता है, वह बड़ा भाग्यशाली है, क्योंकि उनकी कृपा से वह भगवान् की प्रेमाभक्ति के पद को प्राप्त हो सकता है, जो मोक्ष से भी बढ़कर है।

पूर्वे गुर्वादि छय तत्त्वे कैल नमस्कार ।
गुरु-तत्त्व कहियाछि, एबे पाँचेर विचार ॥ ३॥

पूर्वे—प्रारम्भ में; **गुरु-आदि**—गुरु आदि; **छय**—छः; **तत्त्वे**—तत्त्वों में; **कैल**—मैंने किया है; **नमस्कार**—नमस्कार; **गुरु-तत्त्व**—गुरु को समझने का तत्त्व; **कहियाछि**—मैंने पहले ही वर्णन किया है; **एबे**—अब; **पाँचेर**—पाँचों का; **विचार**—विचार, वर्णन।

अनुवाद

मैं प्रारम्भ में गुरु-तत्त्व की व्याख्या कर चुका हूँ। अब मैं पंचतत्त्व की विवेचना करने की चेष्टा करूँगा।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के प्रथम खण्ड में लेखक श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने दीक्षा-गुरु तथा शिक्षा-गुरु का वर्णन *वन्दे गुरून् ईश-भक्तान् ईशमीशावतारकान्* से शुरू होने वाले श्लोक में किया है। उस श्लोक के छः आध्यात्मिक विषयों में से गुरु विषयक तत्त्व का वर्णन हो चुका है।

अब लेखक अन्य पाँच तत्त्वों का वर्णन करेंगे। वे हैं—ईश-तत्त्व, उनका विस्तार तत्त्व, उनका अवतार तत्त्व, उनका शक्ति तत्त्व तथा उनका भक्त तत्त्व।

পঞ্চ-তত্ত্ব অবতীর্ণ চৈতন্যের সঙ্গে ।
পঞ্চ-তত্ত্ব লঞা করেন সঙ্কীর্তন রঙ্গে ॥৪॥

পঞ্চ-তত্ত্ব অবতীর্ণ চৈতন্যের সঙ্গে ।
পঞ্চ-তত্ত্ব লঞা করেন সঙ্কীর্তন রঙ্গে ॥৪॥

पञ्च-तत्त्व—ये पाँच तत्त्व; **अवतीर्ण**—अवतरित हुए; **चैतन्येर**—चैतन्य महाप्रभु के साथ; **सङ्गे**—के संग में; **पञ्च-तत्त्व**—वही पाँच तत्त्व; **लञा**—अपने साथ लेकर; **करेन**—वे करते हैं; **सङ्कीर्तन**—संकीर्तन; **रङ्गे**—अत्यन्त आनन्द में।

अनुवाद

ये पाँचों तत्त्व श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ अवतरित होते हैं और इस तरह महाप्रभु अत्यन्त हर्षपूर्वक अपना संकीर्तन आन्दोलन सम्पन्न करते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (११.५.३२) में श्री चैतन्य महाप्रभु विषयक निम्नलिखित कथन मिलता है :

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

"कलियुग में बुद्धिमान लोग भगवान् की पूजा पार्षदों समेत संकीर्तन यज्ञ द्वारा करेंगे।" श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ उनके पूर्ण विस्तार श्री नित्यानन्द प्रभु, उनके अवतार श्री अद्वैत प्रभु, उनकी अन्तरंगा शक्ति रूप श्री गदाधर प्रभु तथा उनकी तटस्था शक्ति रूप श्रीवास प्रभु रहते हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण इन सबके स्वामी हैं। हमें यह जानना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव इन अन्य तत्त्वों के साथ रहते हैं। अतएव जब हम *श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु-नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि-गौर-भक्त-वृन्द* कहकर चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करते हैं, तभी वह नमस्कार पूर्ण होता है। हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारक होने के नाते सर्वप्रथम पंचतत्त्व मन्त्र— *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द* का उच्चारण करके

श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करते हैं और तब हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करते हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में दस प्रकार के अपराध हो सकते हैं, किन्तु इस पंचतत्त्व मन्त्र—*जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द*—के उच्चारण में इन अपराधों पर विचार नहीं किया जाता। श्री चैतन्य महाप्रभु *महावदान्यावतार* अर्थात् सर्वाधिक उदार अवतार कहलाते हैं, क्योंकि वे पतितात्माओं के अपराधों पर ध्यान नहीं देते। अतएव हमें *महामन्त्र* कीर्तन (हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥) का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण करनी चाहिए, पंचतत्त्व महामन्त्र को सीखना चाहिए और तब हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए। तभी यह अत्यधिक प्रभावशाली होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु का लाभ उठाते हुए अनेक विवेकहीन अनैतिक भक्त अपना एक मनगढ़न्त महामन्त्र बना लेते हैं। कभी-कभी वे गाते हैं—*भज निताई गौर राधे श्याम हरे कृष्ण हरे राम* या *श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।* किन्तु वास्तव में समस्त पंचतत्त्व नामों (*श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द*) का कीर्तन करना चाहिए और तब सोलह अक्षरों वाले हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे महामन्त्र का। किन्तु ये अनैतिक कम बुद्धि वाले लोग पूरी विधि को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। निस्सन्देह, वे भी भक्त हैं, अतएव अपनी भावनाओं को इस तरह व्यक्त कर सकते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के शुद्ध भक्त जिस विधि की संस्तुति करते हैं, वह है—पहले पूर्ण पंचतत्त्व मन्त्र का कीर्तन करना और तब महामन्त्र—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—का कीर्तन करना।

পঞ্চ-তত্ত্ব—এক-বস্তু, নাহি কিছু ভেদ ।
রস আস্বাদিতে তবু বিবিধ বিভেদ ॥৫॥

पञ्च-तत्त्व—एक-वस्तु, नाहि किछु भेद ।
रस आस्वादिते तबु विविध विभेद ॥ ५ ॥

पञ्च-तत्त्व—पाँच तत्त्व; **एक-वस्तु**—पाँच होकर भी एक; **नाहि**—नहीं; **किछु**—कुछ; **भेद**—भेद; **रस**—रस; **आस्वादिते**—आस्वादन करने में; **तबु**—फिर भी; **विविध**—विविध; **विभेद**—भेद।

अनुवाद

आध्यात्मिक दृष्टि से इन पाँच तत्त्वों में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दिव्य धरातल पर सभी वस्तुएँ परम पूर्ण होती हैं। तथापि आध्यात्मिक जगत् में भी विविधता होती हैं और इन आध्यात्मिक विविधताओं का आस्वादन करने के लिए उनमें अन्तर करना आवश्यक होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपनी *अनुभाष्य* टीका में पंचतत्त्वों का वर्णन इस प्रकार किया है : परम शक्तिमान भगवान् पाँच प्रकार की लीलाओं का आस्वादन करने के लिए पंचतत्त्व के सदस्यों के रूप में प्रकट होते हैं। वास्तव में उनमें कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि वे परम धरातल पर स्थित होते हैं। किन्तु वे विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक रसों का आस्वादन करने के लिए विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक विविधता का प्रकाश करके निर्विशेषवादियों के लिए चुनौती प्रस्तुत करते हैं। वेदों में कहा गया है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से जानी जाती हैं।" वेदों के इस कथन से यह जाना जा सकता है कि आध्यात्मिक जगत् में रसों या आस्वादों के नित्य विभेद पाये जाते हैं। श्री गौरांग, श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत, श्री गदाधर तथा श्रीवास ठाकुर—ये सभी एक ही धरातल पर हैं, किन्तु यदि कोई आध्यात्मिक रूप से उनमें अन्तर करना चाहे, तो उसे यह जानना होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त-रूप हैं, नित्यानन्द प्रभु भक्त के गुरु के रूप में प्रकट होते हैं, अद्वैत प्रभु भक्तावतार हैं, गदाधर प्रभु भक्त की शक्ति हैं और श्रीवास ठाकुर शुद्ध भक्त हैं। इस प्रकार उनमें आध्यात्मिक भेद हैं। *भक्त रूप* (श्री चैतन्य महाप्रभु), *भक्त स्वरूप* (नित्यानन्द प्रभु) तथा *भक्त अवतार* (श्री अद्वैत प्रभु) का वर्णन क्रमशः स्वयं भगवान्, भगवान् के प्रत्यक्ष

प्राकट्य तथा भगवान् के पूर्ण अंश के रूप में हुआ है और वे सभी विष्णु की कोटि में आते हैं। यद्यपि भगवान् की आध्यात्मिक तथा तटस्था शक्तियाँ भगवान् विष्णु से अभिन्न हैं, किन्तु वे आश्रित (अधीनस्थ) तत्त्व के रूप में हैं, जबकि विष्णु आश्रय तत्त्व हैं। यद्यपि वे समान धरातल पर हैं, किन्तु दिव्य रसों के आस्वादन की सुविधा के लिए वे भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुए हैं। किन्तु वास्तव में एक दूसरे से उनके भिन्न होने की कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि पूजक (उपासक) तथा पूज्य (उपास्य) को किसी भी अवस्था में विलग नहीं किया जा सकता। परम धरातल पर एक को दूसरे के बिना नहीं समझा जा सकता।

पञ्च-तत्त्वात्मकं कृष्णं भक्त-रूप-स्वरूपकम् ।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त-शक्तिकम् ॥ ६ ॥

पञ्च-तत्त्व-आत्मकम्—पाँच दिव्य तत्त्वों को समझकर; **कृष्णम्**—भगवान् कृष्ण को; **भक्त-रूप**—भक्त के रूप में; **स्वरूपकम्**—भक्त के विस्तार में; **भक्त-अवतारम्**—भक्त के अवतार में; **भक्त-आख्यम्**—भक्त के नाम से जाने जाने वाले; **नमामि**—मैं नमस्कार करता हूँ; **भक्त-शक्तिकम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति।

अनुवाद

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ जो भक्त, भक्त के विस्तार, भक्त के अवतार, शुद्ध भक्त और भक्त-शक्ति—इन पाँच रूपों में प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य

श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के भ्राता के रूप में उनके प्रत्यक्ष विस्तार हैं। वे साक्षात् सच्चिदानन्द विग्रह हैं। उनका शरीर दिव्य है और भक्ति भाव से पूरित है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु *भक्त रूप* कहलाते हैं और श्री नित्यानन्द प्रभु *भक्त-स्वरूप* (भक्त के विस्तार) कहलाते हैं। भक्त के अवतार श्री अद्वैत प्रभु *विष्णु-तत्त्व* हैं और उसी कोटि में आते है। शान्त, दास्य, सख्य,

वात्सल्य तथा माधुर्य रस के धरातलों पर भी भक्तों के विविध प्रकार होते हैं। श्री दामोदर, श्री गदाधर तथा श्री रामानन्द विभिन्न शक्तियाँ हैं। इससे *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—इस वैदिक सूत्र की पुष्टि होती है और ये सारे भक्त मिलकर श्री चैतन्य महाप्रभु बनाते हैं, जो साक्षात् कृष्ण हैं।

स्वयं भगवान्कृष्ण एकले ईश्वर ।
अद्वितीय, नन्दात्मज, रसिक-शेखर ॥७॥

स्वयं भगवान्कृष्ण एकले ईश्वर ।
अद्वितीय, नन्दात्मज, रसिक-शेखर ॥७॥

स्वयम्—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **एकले**—अकेले; **ईश्वर**—ईश्वर, परम नियन्ता; **अद्वितीय**—बिना किसी और के, अद्वितीय; **नन्द-आत्मज**—महाराज नन्द के पुत्र के रूप में प्रकट हुए; **रसिक**—रसों के भोक्ता, रसिक; **शेखर**—चोटी, शिखर।

अनुवाद

समस्त आनन्द के आगार कृष्ण परम नियन्ता, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। कोई न तो कृष्ण से बड़ा है न उनके तुल्य है, फिर भी वे महाराज नन्द के पुत्र के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में कविराज गोस्वामी भगवान् कृष्ण का सही-सही वर्णन यह कहते हुए करते हैं कि यद्यपि उनके समान या उनसे बढ़कर कोई नहीं है और वे समस्त आध्यात्मिक आनन्द के स्रोत हैं, फिर भी वे महाराज नन्द और यशोदा माता के पुत्र-रूप में प्रकट होते हैं।

रासादि-विलासी, व्रजललना-नागर ।
आर यत सब देख,—ताँर परिकर ॥८॥

रासादि-विलासी, व्रजललना-नागर ।
आर यत सब देख,—ताँर परिकर ॥८॥

रास-आदि—रास नृत्य; **विलासी**—भोक्ता; **व्रज-ललना**—वृन्दावन की गोपियाँ;

नागर—नागर; **आर**—अन्य; **यत**—सब; **सब**—प्रत्येक; **देख**—जानना चाहिए; **ताँर**—उनकी; **परिकर**—संगिनी।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण रासनृत्य के परम भोक्ता हैं। वे व्रज की बालाओं के नायक हैं और अन्य सारे मात्र उनके संगी हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर *रासादि विलासी* (अर्थात् "रास नृत्य के भोक्ता") शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रासनृत्य का आनन्द एकमात्र श्रीकृष्ण ही भोग सकते हैं, क्योंकि वे ही वृन्दावन की युवतियों के परम नायक हैं। अन्य सारे उनके भक्त तथा संगी हैं। यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की समानता करने वाला कोई नहीं है, किन्तु ऐसे अनेक अनैतिक धूर्त हैं, जो श्रीकृष्ण के रासनृत्य का अनुकरण करते हैं। वे मायावादी हैं और लोगों को चाहिए कि उनसे सतर्क रहें। रासनृत्य एकमात्र श्रीकृष्ण के द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं।

सेइ कृष्ण अवतीर्ण श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
सेइ परिकर-गण सङ्गे सब धन्य ॥९॥

सेइ कृष्ण अवतीर्ण श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
सेइ परिकर-गण सङ्गे सब धन्य ॥ ९ ॥

सेइ कृष्ण—वही भगवान् कृष्ण; **अवतीर्ण**—अवतीर्ण हुए हैं; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु के रूप में; **सेइ**—वे; **परिकर-गण**—साथी; **सङ्गे**—उनके साथ; **सब**—सब; **धन्य**—धन्य।

अनुवाद

वे ही भगवान् कृष्ण अपने ही समान यशस्वी शाश्वत संगियों के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए।

एकले ईश्वर-तत्त्व चैतन्य-ईश्वर ।
भक्त-भावमय ताँर शुद्ध कलेवर ॥१०॥

एकले ईश्वर-तत्त्व चैतन्य-ईश्वर ।
भक्त-भावमय ताँर शुद्ध कलेवर ॥ १० ॥

एकले—मात्र एक व्यक्ति; **ईश्वर-तत्त्व**—ईश्वर, परम नियन्ता; **चैतन्य**—चैतन्य, परम जीवन शक्ति; **ईश्वर**—नियन्ता; **भक्त-भाव-मय**—भक्त के भाव से युक्त; **ताँर**—उनका; **शुद्ध**—शुद्ध, दिव्य; **कलेवर**—देह।

अनुवाद

परम नियन्ता श्री चैतन्य महाप्रभु एकमात्र भगवान् हैं, जो भावविभोर होकर भक्त बन गये हैं, फिर भी उनका शरीर दिव्य है और भौतिक रूप से कलुषित नहीं है।

तात्पर्य

तत्त्व या सत्य अनेक प्रकार के हैं, जिनमें *ईश-तत्त्व, जीव-तत्त्व* तथा *शक्ति-तत्त्व* सम्मिलित हैं। ईश-तत्त्व से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का बोध होता है, जो कि परम जीवनी शक्ति रूप हैं। *कठ उपनिषद्* में कहा गया है—*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*—भगवान् परम नित्य एवं परम जीवनी शक्ति (चेतना) हैं। जीव भी नित्य हैं और वे जीवनी शक्तियाँ भी हैं, किन्तु वे आकार में अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जबकि परमेश्वर परम जीवनी शक्ति और परम नित्य हैं। परम नित्य कभी भी नश्वर भौतिक प्रकृति का शरीर धारण नहीं करते, जबकि परम नित्य के अंश रूप जीवों में ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के अनुसार परमेश्वर असंख्य जीवों के सर्वोपरि स्वामी हैं।

किन्तु मायावादी दार्शनिक सूक्ष्म जीवों को परम पुरुष के समान बताने का प्रयास करते हैं। वे उनमें कोई अन्तर नहीं देखते, इसलिए उनका दर्शन *अद्वैतवाद* कहलाता है। किन्तु वस्तुत: उनमें अन्तर है। यह श्लोक विशेषतया मायावादियों को यह बताने के लिए है कि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर परम नियन्ता हैं। ये परम नियन्ता स्वयं कृष्ण हैं, किन्तु दिव्य लीला के लिए भगवान् ने भक्त का रूप—श्री चैतन्य महाप्रभु का रूप—स्वीकार किया है।

जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण इस ग्रह पर मनुष्य के रूप में आते हैं, तो कुछ धूर्त उन्हें सामान्य मनुष्य मान बैठते हैं। जो लोग इस प्रकार से गलत सोचते हैं, उन्हें *मूढ* या मूर्ख कहा जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह मूर्खतावश चैतन्य महाप्रभु को कहीं सामान्य मनुष्य न मान बैठे। उन्होंने भक्त का भाव तो स्वीकार किया है, किन्तु

वे परम भगवान् हैं। चैतन्य महाप्रभु के समय से ही कृष्ण के अनेक नकली अवतार हुए हैं, जो यह नहीं समझ सकते कि चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, सामान्य मनुष्य नहीं। जो अल्पज्ञानी हैं, वे किसी मनुष्य को ईश्वर कहकर प्रचारित करते हैं और इस तरह अपने "ईश्वरों" की सृष्टि करते हैं। यही उनकी भूल है। अतएव *ताँर शुद्ध कलेवर*—जैसे कथन हमें सतर्क करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु का शरीर भौतिक नहीं, अपितु पूर्ण रूप से आध्यात्मिक है। अतएव चैतन्य महाप्रभु को सामान्य भक्त नहीं मानना चाहिए, यद्यपि उन्होंने भक्त का रूप धारण किया है। फिर भी यह अच्छी तरह जान लेना होगा कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, चूँकि उन्होंने भक्त भाव स्वीकार किया, इसलिए उनकी लीलाओं को समझने में भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए और उन्हें कृष्ण के समकक्ष नहीं मानना चाहिए। इसी कारण से जब-जब श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण या विष्णु कहकर सम्बोधित किया जाता था, तो वे अपने कान बन्द कर लेते थे, क्योंकि उन्हें यह पसन्द न था कि कोई उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहकर सम्बोधित करे। भक्तों का एक वर्ग *गौराङ्ग-नागरी* कहलाता है, जो चैतन्य महाप्रभु के विग्रह का प्रयोग करते हुए कृष्ण की लीलाओं का मंचन करता है। यह भूल है, जिसे *रसाभास* कहा जाता है। जहाँ चैतन्य महाप्रभु भक्त रूप में आनन्द उठाने का प्रयत्न कर रहे हों, वहाँ उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहकर विचलित नहीं करना चाहिए।

কৃষ্ণ-মাধুর্যের এক অদ্ভুত স্বভাব ।
আপনা আস্বাদিতে কৃষ্ণ করে ভক্ত-ভাব ॥ ১১ ॥
कृष्ण-माधुर्य्येर एक अद्भुत स्वभाव ।
आपना आस्वादिते कृष्ण करे भक्त-भाव ॥ ११ ॥

कृष्ण-माधुर्य्येर—कृष्ण की परम आह्लादिनी शक्ति; **एक**—एक है; **अद्भुत**—अद्भुत; **स्वभाव**—स्वभाव; **आपना**—स्वयं; **आस्वादिते**—आस्वादन के लिए; **कृष्ण**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; **करे**—करते हैं; **भक्त-भाव**—भक्त का भाव स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

कृष्ण का दिव्य माधुर्य रस इतना अद्भुत है कि स्वयं कृष्ण इसका पूर्णतया आस्वादन करने के लिए भक्त का रूप धारण करते हैं।

तात्पर्य

यद्यपि कृष्ण आनन्द के आगार हैं, किन्तु वे भक्त का रूप धारण करके इसका आस्वादन करने की विशेष इच्छा रखते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु भक्त के रूप में विद्यमान हैं, किन्तु वे स्वयं कृष्ण हैं। इसलिए वैष्णवजन गाते हैं—*श्रीकृष्णचैतन्य राधा-कृष्ण नहे अन्य*—"राधा तथा कृष्ण का सम्मिलित रूप श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं।" श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा है, *चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तम्*—राधा तथा कृष्ण एक होकर चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए।

इथे भक्त-भाव धरे चैतन्य गोसाञि ।
'भक्त-स्वरूप' ताँर नित्यानन्द-भाइ ॥ १२॥

इथे भक्त-भाव धरे चैतन्य गोसाञि ।
'भक्त-स्वरूप' ताँर नित्यानन्द-भाइ ॥ १२॥

इथे—इस कारण से; **भक्त-भाव**—भक्त का भाव; **धरे**—स्वीकार करते हैं, धारण करते हैं; **चैतन्य**—चैतन्य महाप्रभु; **गोसाञि**—दिव्य गुरु; **भक्त-स्वरूप**—ठीक शुद्ध भक्त की भाँति; **ताँर**—उनके; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **भाइ**—भाई।

अनुवाद

इसी कारण से परम शिक्षक श्री चैतन्य महाप्रभु भक्त का रूप स्वीकार करते हैं और भगवान् नित्यानन्द को अपने ज्येष्ठ भाई के रूप में स्वीकार करते हैं।

'भक्त-अवतार' ताँर आचार्य-गोसाञि ।
एइ तिन तत्त्व सबे प्रभु करि' गाइ ॥ १३॥

'भक्त-अवतार' ताँर आचार्य-गोसाञि ।
एइ तिन तत्त्व सबे प्रभु करि' गाइ ॥ १३॥

भक्त-अवतार—भक्त के रूप में अवतार; **ताँर**—उनका; **आचार्य-गोसाञि**—परम गुरु, अद्वैत आचार्य प्रभु; **एइ**—ये सब; **तिन**—तीन; **तत्त्व**—तत्त्व; **सबे**—सब; **प्रभु**—प्रभु; **करि'**—ऐसे विचार से; **गाइ**—हम गाते हैं।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य भगवान् चैतन्य के भक्त-अवतार हैं। इसलिए ये तीनों तत्त्व (चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत गोसांई) आश्रय देने वाले या प्रभु हैं।

तात्पर्य

गोसाञि का अर्थ है *गोस्वामी*। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है, वह *गोस्वामी* या *गोसाञि* कहलाता है। जो व्यक्ति ऐसा नियन्त्रण नहीं रख पाता, वह *गोदास* अर्थात् इन्द्रियों का दास कहलाता है और वह गुरु नहीं बन सकता। जो गुरु अपनी इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है, वह गोस्वामी कहलाता है। यद्यपि गोस्वामी उपाधि अनैतिक लोगों के लिए वंशानुगत उपाधि बन चुकी है, किन्तु वास्तव में यह उपाधि श्री रूप गोस्वामी से प्रारम्भ हुई, जो अपने आपको सामान्य गृहस्थ तथा सरकारी मन्त्री के रूप में प्रस्तुत करते थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु के उपदेश से वे गोस्वामी का उच्च पद प्राप्त कर सके। अतएव गोस्वामी वंशानुगत उपाधि का नहीं, अपितु व्यक्ति की योग्यता का सूचक है। जब कोई आध्यात्मिक दृष्टि से ऊपर उठ जाता है, तो जात-पात के भेदभाव के बिना वह गोस्वामी कहलाया जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत गोसांई प्रभु स्वाभाविक गोस्वामी हैं, क्योंकि वे *विष्णुतत्त्व* हैं। इसीलिए वे सभी प्रभु (स्वामी) हैं और वे कभी-कभी चैतन्य गोसांई, नित्यानन्द गोसांई तथा अद्वैत गोसांई कहलाते हैं। दुर्भाग्यवश जिन लोगों के पास गोस्वामी की योग्यता नहीं होती, उनके तथाकथित वंशजों ने इस उपाधि का वंशानुगत या व्यापारिक उपाधि के रूप में स्वीकार कर लिया है। किन्तु यह आचरण शास्त्र-सम्मत नहीं है।

এক মহাপ্রভু, আর প্রভু দুইজন ।
দুই প্রভু সেবে মহাপ্রভুর চরণ ॥১৪॥

एक महाप्रभु, आर प्रभु दुइजन ।
दुइ प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण ॥१४॥

एक महाप्रभु—एक महाप्रभु; **आर प्रभु दुइजन**—तथा दूसरे दो प्रभु (नित्यानन्द एवं

अद्वैत प्रभु); **दुइ प्रभु**—दो प्रभु (नित्यानन्द तथा अद्वैत गोसांई); **सेवे**—सेवा करते हैं; **महाप्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु के; **चरण**—चरणकमल।

अनुवाद

उनमें से एक महाप्रभु हैं और अन्य दो प्रभु हैं। ये दोनों प्रभु महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा करते हैं।

तात्पर्य

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत प्रभु एक ही विष्णु तत्त्व से सम्बन्धित हैं, तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु को सर्वश्रेष्ठ होने के रूप में स्वीकार किये जाते हैं और अन्य दो प्रभु उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा में सामान्य जीवों को यह शिक्षा देने के लिए लगे रहते हैं कि हम में से हर एक जीव श्री चैतन्य महाप्रभु पर आश्रित है। *चैतन्य-चरितामृत* में ही अन्यत्र (आदि ५.१४२) कहा गया है—*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—कृष्ण एकमात्र ईश्वर हैं और अन्य सभी अर्थात् विष्णु तत्त्व तथा जीव तत्त्व भगवान् की सेवा में रत रहते हैं। विष्णु तत्त्व (यथा नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत) और जीव तत्त्व (यथा श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द) दोनों ही भगवान् की सेवा करते हैं, किन्तु विष्णु तत्त्व सेवकों तथा जीव तत्त्व सेवकों में अन्तर समझना आवश्यक है। जीव तत्त्व सेवक अर्थात् गुरु वास्तव में ईश्वर का सेवक होता है। जैसाकि पिछले श्लोकों में कहा जा चुका है, परम जगत् में ऐसा अन्तर नहीं होता, फिर भी परमेश्वर तथा उनके आश्रितों में भेद करने के लिए ऐसे अन्तरों पर ध्यान देना आवश्यक है।

एइ तिन तत्त्व,—'सर्वाराध्य' करि मानि ।
चतुर्थ ये भक्त-तत्त्व,—'आराधक' जानि ॥ १५॥

एइ तिन तत्त्व,—'सर्वाराध्य' करि मानि ।
चतुर्थ ये भक्त-तत्त्व,—'आराधक' जानि ॥ १५॥

एइ तिन तत्त्व—ये तीनों तत्त्व; **सर्व-आराध्य**—सबके आराध्य (पूज्य); **करि मानि**—ऐसा स्वीकार करके; **चतुर्थ**—चौथा; **ये**—जो है; **भक्त-तत्त्व**—भक्त तत्त्व; **आराधक**—आराधक; **जानि**—मैं समझता हूँ।

अनुवाद

ये तीन तत्त्व (चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु) सभी जीवों द्वारा पूजनीय हैं और चौथे तत्त्व (श्री गदाधर प्रभु) उनके आराधक अर्थात् पूजक माने जाते हैं।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने *अनुभाष्य* में पंचतत्त्वों की सत्यता के बारे में व्याख्या करते हुए कहते हैं कि हमें यह समझना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु परम आश्रय तत्त्व हैं और नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु उनके आश्रित हैं, किन्तु वे भी आश्रय तत्त्व हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु परम भगवान् हैं और नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु उनके प्राकट्य हैं। वे सभी विष्णु तत्त्व हैं, अतएव जीवों द्वारा पूजनीय हैं। यद्यपि पंचतत्त्वों के अन्तर्गत अन्य दो तत्त्व—शक्ति तत्त्व तथा जीव तत्त्व, जो कि गदाधर तथा श्रीवास के रूप में जाने जाते हैं—परमेश्वर के आराधक या पूजक हैं, किन्तु वे एक ही श्रेणी में आते हैं, क्योंकि वे सनातन रूप से भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे रहते हैं।

श्रीवासादि यत कोटि कोटि भक्त-गण ।
'शुद्ध-भक्त'-तत्त्व-मध्ये ताँ-सवार गणन ॥ १६॥

श्रीवासादि यत कोटि कोटि भक्त-गण ।
'शुद्ध-भक्त'-तत्त्व-मध्ये ताँ-सबार गणन ॥ १६॥

श्रीवास-आदि—श्रीवास ठाकुर आदि भक्त; **यत**—अन्य सब; **कोटि कोटि**—कोटि कोटि, असंख्य; **भक्त-गण**—भक्तगण; **शुद्ध-भक्त**—शुद्ध भक्त; **तत्त्व-मध्ये**—सत्य में; **ताँ-सबार**—वे सब; **गणन**—गिने जाते हैं।

अनुवाद

भगवान् के शुद्ध भक्त असंख्य हैं, जिनमें श्रीवास ठाकुर प्रमुख हैं। ये सभी शुद्ध भक्त कहलाते हैं।

गदाधर-पण्डितादि प्रभुर 'शक्ति'-अवतार ।
'अन्तरङ्ग-भक्त' करि' गणन याँहार ॥ १७॥

गदाधर-पण्डितादि प्रभुर 'शक्ति'-अवतार ।
'अन्तरङ्ग-भक्त' करि' गणन याँहार ॥ १७॥

गदाधर—गदाधर; **पण्डित**—पण्डित; **आदि**—आदि; **प्रभुर**—प्रभु की; **शक्ति**—शक्ति; **अवतार**—अवतार; **अन्तरङ्ग**—अत्यन्त गुप्त; **भक्त**—भक्त; **करि'**—स्वीकार करके; **गणन**—गणना; **याँहार**—जिनकी।

अनुवाद

गदाधर पंडित इत्यादि भक्तों को भगवान् की अंतरंगा शक्ति का अवतार मानना चाहिए। वे भगवान् की सेवा में लगे हुए अन्तरंग भक्त हैं।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर श्लोक १६ तथा १७ के सन्दर्भ में अपने *अनुभाष्य* में बतलाते हैं : "कुछ विशेष लक्षण होते हैं जिनसे अन्तरंग भक्त तथा शुद्ध भक्त जाने जाते हैं। सारे शुद्ध भक्त *शक्ति-तत्त्व* हैं। इनमें से कुछ माधुर्य प्रेम में अवस्थित हैं, तो अन्य वात्सल्य, सख्य तथा दास्य प्रेम में अवस्थित हैं। निश्चय ही, ये सभी भक्त हैं, किन्तु जब इनकी तुलना की जाती है, तो माधुर्य प्रेम में स्थित भक्त अन्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। इसलिए जो भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के माधुर्य प्रेम में अवस्थित हैं, वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सर्वोच्च अन्तरंग भक्त माने जाते हैं। ऐसे भक्त जो नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु की सेवा करते हैं, वे सामान्यतया वात्सल्य, सख्य, दास्य तथा शान्त रस में अवस्थित होते हैं। जब ऐसे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अतीव अनुरक्ति उत्पन्न कर लेते हैं, तो वे भी माधुर्य रस के अन्तरंग भक्तों के समुदाय में आ जाते हैं।" भक्ति का यह क्रमिक विकास श्री नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा निम्न प्रकार से वर्णित है :

गौराङ्ग बलिते हबे पुलक शरीर।
हरि हरि बलिते नयने ब'बे नीर॥
आर कबे निताइचाँद करुणा करिबे।
संसारवासना मोर कबे तुच्छ हबे॥
विषय छाडिया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥

रूप रघुनाथ-पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझब श्रीयुगलपिरीति॥

"वह समय कब आयेगा, जब चैतन्य महाप्रभु का नाम लेते ही मेरा शरीर पुलकित हो उठेगा और वह समय कब आयेगा, जब हरे कृष्ण नाम का कीर्तन करते ही अश्रुओं की निरन्तर धारा प्रवाहित होने लगेगी? नित्यानन्द प्रभु मुझ पर कब दयालु होंगे और भौतिक भोग की इच्छाओं से मुझे मुक्त करा देंगे? कब मेरा मन भौतिक आनन्द की इच्छाओं के कल्मष से पूर्णतया मुक्त हो सकेगा? तभी मेरे लिए वृन्दावन को समझ पाना सम्भव हो सकेगा। यदि मैं रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी आदि छः गोस्वामियों की शिक्षाओं में अनुराग उत्पन्न कर सकूँ, तो क्या मेरे लिए राधा तथा कृष्ण के माधुर्य रस को समझना सम्भव होगा?" श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति में अनुरक्ति होने से भावावेश की स्थिति तुरन्त प्राप्त होती है। उस दशा में जब वह नित्यानन्द प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तो वह भौतिक संसार की सारी आसक्ति से मुक्त हो जाता है और तब वह भगवान् की वृन्दावन लीलाओं को समझने का पात्र बन जाता है। उस दशा में जब वह छः गोस्वामियों के प्रति प्रेम विकसित करता है, तब वह राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम को समझ सकता है। ये शुद्ध भक्त की प्रगति की विभिन्न अवस्थाएँ हैं, जिनसे होकर शुद्ध भक्त राधा तथा कृष्ण एवं श्री चैतन्य महाप्रभु की माधुर्य प्रेममयी सेवा के घनिष्ठ सम्बन्ध के स्तर तक ऊपर उठ सकता है।

যাঁ-সবা লঞা প্রভুর নিত্য বিহার ।
যাঁ-সবা লঞা প্রভুর কীর্তন-প্রচার ॥১৮॥
যাঁ-সবা লঞা করেন প্রেম আস্বাদন ।
যাঁ-সবা লঞা দান করে প্রেম-ধন ॥১৯॥

য়াঁ-সবা লঞা প্রভুর নিত্য বিহার ।
য়াঁ-সবা লঞা প্রভুর কীর্তন-প্রচার ॥১৮॥
য়াঁ-সবা লঞা করেন প্রেম আস্বাদন ।
য়াঁ-সবা লঞা দান করে প্রেম-ধন ॥১৯॥

ग्राँ-सबा—सब; **लञा**—साथ मिलकर; **प्रभुर**—भगवान् की; **नित्य**—नित्य; **विहार**—लीला; **ग्राँ-सबा**—वे सब जो हैं; **लञा**—साथ देते हैं; **प्रभुर**—भगवान् का; **कीर्तन**—संकीर्तन; **प्रचार**—प्रचार; **ग्राँ-सबा**—जिन व्यक्तियों के साथ; **लञा**—संगति में; **करेन**—वे करते हैं; **प्रेम**—ईश-प्रेम; **आस्वादन**—आस्वादन; **ग्राँ-सबा**—वे जो हैं; **लञा**—संगति में; **दान करे**—दान देते हैं; **प्रेम-धन**—ईश्वर-प्रेम।

अनुवाद

अन्तरंग भक्त या शक्ति-समूह भगवान् की लीलाओं में नित्य संगी होते हैं। भगवान् केवल उन्हीं के साथ संकीर्तन आन्दोलन के प्रसार हेतु अवतरित होते हैं, उन्हीं के साथ वे माधुर्य रस का आस्वादन करते हैं और केवल उन्हीं के साथ वे जनसामान्य को इस भगवत्प्रेम का वितरण करते हैं।

तात्पर्य

श्री रूप गोस्वामी अपनी पुस्तक *उपदेशामृत* में शुद्ध भक्त तथा अन्तरंग या विश्वासपात्र भक्तों का अन्तर बतलाते हुए निम्नलिखित विकास क्रम अंकित करते हैं—हजारों कर्मियों में से एक व्यक्ति तब श्रेष्ठ बनता है, जब वह पूर्ण वैदिक ज्ञान को प्राप्त करता है। ऐसे अनेक विद्वानों तथा दार्शनिकों में से जो कोई वास्तव में भौतिक बन्धन से मुक्त होता है, वह श्रेष्ठ है और ऐसे अनेक सचमुच मुक्त व्यक्तियों में से जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का भक्त होता है, उसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। ऐसे अनेक भगवान् के दिव्य प्रेमियों में से गोपियाँ श्रेष्ठ हैं और गोपियों में भी श्रीमती राधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीमती राधिका भगवान् कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं। इसी तरह उनके कुंड यथा श्यामकुण्ड तथा राधाकुण्ड भी भगवान् को अत्यधिक प्रिय हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने ग्रंथ *अनुभाष्य* में टीका की है कि पाँच तत्त्वों में से दो तो *शक्ति तत्त्व* हैं और शेष तीन *शक्तिमान् तत्त्व* हैं। अनन्य तथा अन्तरंग दोनों ही प्रकार के भक्त कृष्णभावनामृत के अनुकूल अनुशीलन में लगे रहते हैं। वे दार्शनिक चिन्तन या सकाम कर्मों से रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होते। ये सभी शुद्ध भक्त माने जाते हैं और इनमें से जो भक्त एकमात्र माधुर्य प्रेम में लगे रहते हैं, वे *माधुर्य भक्त* या अन्तरंग भक्त कहलाते हैं। वात्सल्य, सख्य तथा दास्य रस की प्रेममयी सेवाएँ ईश्वर के माधुर्य प्रेम में

सम्मिलित हैं। निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक अन्तरंग भक्त ईश्वर का शुद्ध भक्त होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रत्यक्ष विस्तार नित्यानन्द प्रभु के साथ अपनी लीलाओं के आनन्द का उपभोग करते हैं। उनके शुद्ध भक्त तथा उनके तीन पुरुष अवतार—कारणोदकशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु संकीर्तन आन्दोलन का प्रतिपादन करने के लिए सदैव भगवान् के साथ रहते हैं।

सेइ पञ्च-तत्त्व मिलि' पृथिवी आसिया ।
पूर्व-प्रेमभाण्डारेर मुद्रा उघाड़िया ॥ २० ॥
पाँचे मिलि' लूटे प्रेम, करे आस्वादन ।
यत यत पिये, तृष्णा बाढ़े अनुक्षण ॥ २१ ॥

सेइ पञ्च-तत्त्व मिलि' पृथिवी आसिया ।
पूर्व-प्रेमभाण्डारेर मुद्रा उघाड़िया ॥ २० ॥
पाँचे मिलि लुटे प्रेम, करे आस्वादन ।
यत यत पिये, तृष्णा बाढ़े अनुक्षण ॥ २१ ॥

सेइ—वे; **पञ्च-तत्त्व**—पाँच तत्त्व; **मिलि'**—मिलकर; **पृथिवी**—इस पृथ्वी पर; **आसिया**—उतरकर, अवतरित होकर; **पूर्व**—मौलिक; **प्रेम-भाण्डारेर**—दिव्य प्रेम के आगार; **मुद्रा**—मुद्रा; **उघाड़िया**—तोड़कर; **पाँचे मिलि'**—ये सब पाँच मिलकर; **लुटे**—लूट लेते हैं; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **करे आस्वादन**—आस्वादन करते हैं; **यत यत**—जितना; **पिये**—पीते हैं; **तृष्णा**—इच्छा; **बाढ़े**—बढ़ती है; **अनुक्षण**—बारम्बार।

अनुवाद

कृष्ण के गुण दिव्य प्रेम के आगार माने जाते हैं। जब कृष्ण विद्यमान थे, तब यह प्रेम का आगार निश्चय ही उनके साथ आया था, किन्तु वह पूरी तरह से सीलबन्द था। किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने पंचतत्त्व के संगियों के साथ आये, तो उन्होंने दिव्य कृष्ण-प्रेम का आस्वादन करने के लिए कृष्ण के दिव्य प्रेमागार की सील तोड़कर उसे लूट लिया। वे ज्यों-ज्यों उसका आस्वादन करते गये, त्यों-त्यों और अधिक आस्वादन करने की उनकी तृष्णा बढ़ती ही गई।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु *महावदान्यावतार* कहलाते हैं, क्योंकि वे साक्षात् कृष्ण होते हुए भी दीन पतितात्माओं के प्रति श्रीकृष्ण से बढ़कर दयावान हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान थे, तब उनकी इच्छा थी कि हर कोई उनकी शरण में आये और उन्होंने वादा किया था कि तभी वे उसको संरक्षण प्रदान करेंगे। किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने संगियों समेत इस पृथ्वी पर आये, तो उन्होंने भेदभाव त्यागकर दिव्य भगवत्प्रेम का वितरण किया। इसीलिए श्री रूप गोस्वामी समझ गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं, क्योंकि भगवान् के अतिरिक्त ऐसा कौन होगा, जो परम पुरुष के अन्तरंग प्रेम का वितरण कर सके।

पुनः पुनः पियाइया हय महामत्त ।
नाचे, कान्दे, हासे, गाय, यैछे मद-मत्त ॥ २२॥

पुनः पुनः पियाइया हय महामत्त ।
नाचे, कान्दे, हासे, गाय, ग्रैछे मद-मत्त ॥ २२॥

पुनः पुनः—बारम्बार; **पियाइया**—पिलाते हैं; **हय**—होते हैं; **महा-मत्त**—अत्यन्त उन्मत्त; **नाचे**—नाचते हैं; **कान्दे**—चिल्लाते हैं; **हासे**—हँसते हैं; **गाय**—गाते हैं, कीर्तन करते हैं; **ग्रैछे**—जैसे; **मद-मत्त**—मदिरा पान किया हो।

अनुवाद

स्वयं श्री पंचतत्त्वों ने पुनः पुनः नाचकर इस तरह भगवत्प्रेम रूपी अमृत को पीना सुगम बनाया। वे नाचते, रोते, हँसते और गाते थे, मानो उन्मत्त हों और इस तरह उन्होंने भगवत्प्रेम का वितरण किया।

तात्पर्य

सामान्यतया लोग कीर्तन तथा नर्तन का वास्तविक अर्थ नहीं समझ सकते। श्री श्रीनिवास आचार्य ने गोस्वामियों का वर्णन करते हुए कहा है, *कृष्णोत्कीर्तनगाननर्तनपरौ*—न केवल चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगी ही इस कीर्तन तथा नर्तन का प्रदर्शन करते थे, अपितु अगली पीढ़ी में छः गोस्वामियों ने भी उनका अनुसरण किया। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन भी इसी

सिद्धान्त का पालन करता है, इसीलिए केवल कीर्तन तथा नर्तन से हमें विश्वभर में अच्छी स्वीकृति मिली है। किन्तु यह जान लेना होगा कि यह कीर्तन तथा नर्तन इस भौतिक जगत् का नहीं है। वास्तव में ये दिव्य कार्यकलाप हैं, क्योंकि कोई जितना ही कीर्तन और नर्तन में रत होता है, वह उतना ही अधिक भगवत्प्रेम रूपी अमृत का आस्वादन कर सकता है।

पात्रापात्र-विचार नाहि, नाहि स्थानास्थान ।
येइ याँहा पाय, ताँहा करे प्रेम-दान ॥२३॥

पात्रापात्र-विचार नाहि, नाहि स्थानास्थान ।
येइ याँहा पाय, ताँहा करे प्रेम-दान ॥ २३ ॥

पात्र—पात्र; **अपात्र**—कुपात्र; **विचार**—विचार; **नाहि**—नहीं है; **नाहि**—नहीं हैं; **स्थान**—उचित स्थान; **अस्थान**—अनुचित स्थान; **येइ**—कोई; **याँहा**—जहाँ भी; **पाय**—अवसर पाता है; **ताँहा**—वहीं; **करे**—करते हैं; **प्रेम-दान**—भगवत्प्रेम का दान।

अनुवाद

भगवत्प्रेम का वितरण करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों ने कभी यह विचार नहीं किया कि कौन सुपात्र है और कौन नहीं है, इसका वितरण कहाँ किया जाये और कहाँ नहीं। उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी। जहाँ कहीं भी अवसर मिला, पंचतत्त्व के सदस्यों ने भगवत्प्रेम का वितरण किया।

तात्पर्य

कुछ ऐसे धूर्त हैं, जो चैतन्य महाप्रभु के सन्देश के विरुद्ध कृष्णभावनामृत आन्दोलन की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इसने यूरोपियों तथा अमरीकियों को ब्राह्मणों के रूप में सम्मिलित करके उन्हें संन्यास दीक्षा दी है। किन्तु यहाँ पर हमें प्रामाणिक कथन प्राप्त होता है कि भगवत्प्रेम के वितरण में यह विचार नहीं करना चाहिए कि पात्र यूरोपीय है, कि अमरीकी, हिन्दू है या मुसलमान इत्यादि। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार जहाँ कहीं भी सम्भव हो, करना चाहिए और उन सभी लोगों को स्वीकार कर लेना चाहिए जो इस प्रकार ब्राह्मणों, हिन्दुओं या भारतीयों से भी बढ़कर वैष्णव बन जाते

हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की आकांक्षा थी कि उनका नाम पृथ्वी के ग्राम-ग्राम तथा शहर-शहर में फैले। अतएव जब चैतन्य महाप्रभु का सम्प्रदाय सारे विश्व में फैल चुका है, तो जो इसे अंगीकार करते हैं, क्या उन्हें वैष्णव, ब्राह्मण तथा संन्यासी के रूप में स्वीकार न किया जाए? ऐसे मूर्खतापूर्ण तर्क कभी-कभी ईर्ष्यालु धूर्तों द्वारा उठाये जाते हैं, किन्तु कृष्णभावनाभावित भक्त इनकी थोड़ी-सी भी परवाह नहीं करते। हम तो पंचतत्त्वों द्वारा नियत सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करते हैं।

लूटिया, खाइया, दिया, भाण्डार उजाड़े ।
आश्चर्य भाण्डार, प्रेम शत-गुण बाड़े ॥ २४॥

लुटिया, खाइया, दिया, भाण्डार उजाड़े ।
आश्चर्य्य भाण्डार, प्रेम शत-गुण बाड़े ॥ २४॥

लुटिया—लूटना, लूटकर; **खाइया**—खाते हैं; **दिया**—वितरण करते हैं; **भाण्डार**—भण्डार; **उजाड़े**—खाली कर दिया; **आश्चर्य्य**—आश्चर्यजनक; **भाण्डार**—भण्डार, गोदाम; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **शत-गुण**—सौगुना; **बाड़े**—बढ़ता है।

अनुवाद

यद्यपि पंचतत्त्व के सदस्यों ने भगवत्प्रेम के भण्डार को लूटा और इसकी सामग्री का आस्वादन किया तथा उसे बाँट दिया, फिर भी उसमें कोई कमी नहीं हुई, क्योंकि यह अद्भुत भण्डार इतना भरा-पूरा है कि ज्यों-ज्यों प्रेम का वितरण किया जाता है, त्यों-त्यों इसकी आपूर्ति सैकड़ों गुना बढ़ जाती है।

तात्पर्य

कृष्ण के एक नकली अवतार ने एक बार अपने शिष्य से कहा कि मैंने तुम्हें अपना सारा ज्ञान दे दिया है, अतएव अब मैं रिक्त हो चुका हूँ और आध्यत्मिक रूप से दिवालिया हो गया हूँ। ऐसे ठग जनता को ठगने के लिए इस प्रकार बोलते हैं, किन्तु वास्तविक आध्यात्मिक चेतना इतनी पूर्ण होती है कि ज्यों-ज्यों इसका वितरण किया जाता है, त्यों-त्यों यह बढ़ती जाती है। दिवालियापन ऐसा शब्द है, जो भौतिक जगत् में लागू होता है, किन्तु

आध्यात्मिक जगत् में भगवत्प्रेम का भण्डार कभी भी न समाप्त होने वाला है। कृष्ण करोड़ों-अरबों जीवों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं और यदि समस्त असंख्य जीव कृष्णभावनाभावित होना चाहें, तो भी न तो भगवत्प्रेम की कमी होगी, न ही उनके पालन-पोषण में कोई कमी आयेगी। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन एक व्यक्ति के द्वारा चलाया गया था और किसी ने भी हमारा भरण-पोषण नहीं किया। किन्तु इस समय हम विश्वभर में लाखों डालर खर्च कर रहे हैं और यह आन्दोलन बढ़ता ही जा रहा है। अतएव अभाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भले ही ईर्ष्यालु लोग जलते रहें, किन्तु यदि हम अपने सिद्धान्तों का पालन करें और पंचतत्त्वों के पदचिह्नों का अनुसरण करें, तो यह आन्दोलन बनावटी स्वामियों, संन्यासियों, धर्मज्ञों, दार्शनिकों या वैज्ञानिकों के रोके नहीं रुकेगा, क्योंकि यह समस्त भौतिक प्रभावों से परे है। अतएव जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, उन्हें ऐसे धूर्तों तथा मूर्खों से डरना नहीं चाहिए।

उछलिल प्रेम-वन्या चौदिके वेड़ाय ।
स्त्री, वृद्ध, बालक, युवा, सवारे डुबाय ॥२५॥
उछलिल प्रेम-वन्या चौदिके वेड़ाय ।
स्त्री, वृद्ध, बालक, युवा, सबारे डुबाय ॥ २५ ॥

उछलिल—विह्वल हो गये; **प्रेम-वन्या**—भगवत्प्रेम की बाढ़ से; **चौदिके**—सभी दिशाओं में; **वेड़ाय**—चारों ओर; **स्त्री**—महिलाएँ; **वृद्ध**—वृद्ध पुरूष; **बालक**—बालक; **युवा**—युवक; **सबारे**—सभी; **डुबाय**—डूब गये।

अनुवाद

भगवत्प्रेम की बाढ़ से सारी दिशाएँ आप्लावित होने लगीं और इस तरह से युवक, वृद्ध, स्त्रियाँ तथा बच्चे उस बाढ़ में डूबने लगे।

तात्पर्य

जब भगवत्प्रेम के भण्डार की वस्तुएँ इस प्रकार वितरित होती हैं, तब ऐसी प्रबल बाढ़ आती है कि समग्र स्थल भाग जलमग्न हो जाता है। कभी-कभी श्रीधाम मायापुर में वर्षाऋतु के बाद बहुत बाढ़ आ जाती है। यह इसका संकेत

है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि से भगवत्प्रेम की बाढ़ को सारे विश्व में फैलना चाहिए, क्योंकि इससे वृद्धों, युवकों, स्त्रियों तथा बच्चों में से हर एक को लाभ मिल सकेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु का कृष्णभावनामृत आन्दोलन इतना प्रबल है कि यह सारे विश्व को प्रेम में डुबा सकता है और सभी वर्ग के व्यक्तियों को भगवत्प्रेम की ओर उन्मुख कर सकता है।

सज्जन, दुर्जन, पङ्गु, जड़, अन्ध-गण ।
प्रेम-वन्याय डुबाइल जगतेर जन ॥२६॥

सज्जन, दुर्जन, पङ्गु, जड़, अन्ध-गण ।
प्रेम-वन्याय डुबाइल जगतेर जन ॥ २६ ॥

सत्-जन—सज्जन पुरुष; **दुर्जन**—दुर्जन; **पङ्गु**—लंगड़े; **जड़**—अक्षम, अशक्त; **अन्ध-गण**—अन्धे लोग; **प्रेम-वन्याय**—भगवत्प्रेम की बाढ में; **डुबाइल**—डूब गये; **जगतेर**—सारे जगत् में; **जन**—लोग।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व को आप्लावित कर देगा और हर एक को डुबा देगा, चाहे वह भद्र व्यक्ति हो, या धूर्त, लँगड़ा या अशक्त अथवा अंधा।

तात्पर्य

यहाँ पुनः यह बात दोहराई जा सकती है कि भले ही ईर्ष्यालु धूर्त विरोध प्रकट करें कि यूरोपियों तथा अमरीकियों को जनेऊ (यज्ञोपवीत) या संन्यास नहीं दिया जा सकता, किन्तु इस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं कि कौन भद्र है और कौन धूर्त है, क्योंकि यह एक आध्यात्मिक आन्दोलन है, जो बाहरी मांस-मज्जा पर ध्यान नहीं देता। यह पंचतत्त्व के निर्देश के अनुसार समुचित रीति से चलाया जा रहा है और इसमें विधि-विधानों का कड़ाई से पालन होता है, अतएव इसे बाह्य अवरोधों से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

जगत्डुबिल, जीवेर हैल बीज नाश ।
ताहा देखि' पाँच जनेर परम उल्लास ॥२७॥

जगत्डुबिल, जीवेर हैल बीज नाश ।
ताहा देखि' पाँच जनेर परम उल्लास ॥ २७॥

जगत्—सारा संसार; **डुबिल**—डूब गया; **जीवेर**—जीवों का; **हैल**—हो गया; **बीज**—बीज; **नाश**—पूर्णतः नष्ट; **ताहा**—तब; **देखि'**—देखकर; **पाञ्च**—पाँच; **जनेर**—लोगों का; **परम**—परम; **उल्लास**—उल्लास, हर्ष।

अनुवाद

जब पंचतत्त्व के पाँच सदस्यों ने देखा कि सारा संसार भगवत्प्रेम में डूब चुका है और जीवों में भौतिक भोग का बीज पूरी तरह नष्ट हो चुका है, तो वे सभी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने *अनुभाष्य* में लिखा है कि चूँकि सारे जीव भगवान् की तटस्था शक्ति से सम्बन्धित हैं, अतएव प्रत्येक जीव में कृष्णभावनाभावित होने की सहज प्रवृत्ति रहती है, भले ही उसी के साथ भौतिक भोग का बीज भी उसके भीतर क्यों न रहता हो। भौतिक भोग का बीज भौतिक प्रकृति द्वारा सिंचित होकर भवबन्धन रूपी वृक्ष बन जाता है और फल प्रदान करता है, जिससे जीवों को सभी प्रकार के भौतिक भोग प्राप्त होते हैं। ऐसी भौतिक सुविधाओं को भोगने का अर्थ है, तीन प्रकार के भौतिक दुःखों से पीड़ित होना। किन्तु जब प्रकृति के नियमानुसार बाढ़ आती है, तब पृथ्वी के भीतर के बीज निष्क्रिय हो जाते हैं। इसी प्रकार जब भगवत्प्रेम की बाढ़ सारे विश्व में परिव्याप्त हो जाती है, तो भौतिक भोग के बीज शक्तिहीन हो जाते हैं। इस प्रकार कृष्णभावनामृत आन्दोलन जितना अधिक फैलता है, भौतिक भोग की इच्छा उतनी ही घटती जाती है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन की वृद्धि के साथ ही भौतिक भोग का बीज स्वतः शक्तिहीन होता जाता है।

जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन को भगवान् चैतन्य की कृपा से विश्वभर में फैलता देखकर ईर्ष्या करते हैं, उन्हें चाहिए कि वे प्रसन्न हों, जैसाकि यहाँ पर *परम उल्लास* शब्दों द्वारा सूचित होता है। किन्तु *कनिष्ठ-अधिकारी* या *प्राकृत भक्त* (ऐसे भौतिकतावादी भक्त जो आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत नहीं हैं)

होने के कारण ही वे प्रसन्न होने के स्थान पर ईर्ष्या करते हैं और इसीलिए वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में दोष निकालते रहते हैं। फिर भी श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती अपने ग्रंथ *चैतन्य चन्द्रामृत* में लिखते हैं कि भगवान् चैतन्य श्रीकृष्ण के कृष्णभावनामृत आन्दोलन से प्रभावित होने पर भौतिकतावादी लोग अपनी पत्नी तथा बच्चों के बारे में बोलना त्याग देते हैं, तथाकथित विद्वान वैदिक साहित्य का उबाऊ अध्ययन त्याग देते हैं, योगी अपना अव्यावहारिक योगाभ्यास त्याग देते हैं, तपस्वी अपनी कठोर तपस्या त्याग देते हैं और संन्यासी सांख्य दर्शन का अध्ययन करना त्याग देते हैं। इस तरह वे सभी भगवान् चैतन्य की भक्ति योग की विधियों के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं और कृष्णभावनामृत से बढ़कर अन्य किसी रस का आस्वादन नहीं कर सकते।

यत यत प्रेम-वृष्टि करे पञ्च-जने ।
तत तत वाढ़े जल, व्यापे त्रि-भुवने ॥ २८॥

यत यत प्रेम-वृष्टि करे पञ्च-जने ।
तत तत बाढ़े जल, व्यापे त्रि-भुवने ॥ २८ ॥

यत—जितने अधिक; **यत**—इतने अधिक; **प्रेम-वृष्टि**—भगवत्प्रेम की वर्षा; **करे**—करते हैं; **पञ्च-जने**—पंचतत्तव के पाँच सदस्य; **तत तत**—इतना जितना; **बाढ़े**—बढ़ता है; **जल**—जल; **व्यापे**—फैलता है; **त्रि-भुवने**—तीनों भुवनों में।

अनुवाद

पंचतत्त्व के पाँचों सदस्य भगवत्प्रेम की जितनी अधिक वृष्टि कराते हैं, उतनी ही अधिक बाढ़ बढ़ती जाती है और वह सारे विश्व में परिव्याप्त हो जाती है।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत आन्दोलन न तो रूढ़िवादी है, न निष्क्रिय। मूर्खों तथा धूर्तों द्वारा उठाये गये इन आक्षेपों के बावजूद कि यूरोपीय तथा अमरीकी म्लेच्छों को ब्राह्मण या संन्यासी के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती, यह आन्दोलन सारे विश्व में परिव्याप्त होगा। यहाँ पर यह इंगित हुआ है कि यह विधि परिव्याप्त होगी और कृष्णभावनामृत से सारे जगत् को आप्लावित कर देगी।

मायावादी, कर्म-निष्ठ कुतार्किक-गण ।
निन्दक, पाषण्डी यत पड़ुया अधम ॥२९॥
सेई सब महादक्ष धाञा पलाइल ।
सेई वन्या ता-सवारे छुँइते नारिल ॥३०॥

मायावादी, कर्म-निष्ठ कुतार्किक-गण ।
निन्दक, पाषण्डी यत पड़ुया अधम ॥ २९ ॥
सेइ सब महादक्ष धाञा पलाइल ।
सेइ वन्या ता-सबारे छुडिते नारिल ॥ ३० ॥

मायावादी—मायावादी दार्शनिक; **कर्म-निष्ठ**—सकाम कर्मी; **कुतार्किक-गण**—कुतर्की-गण; **निन्दक**—निन्दक; **पाषण्डी**—पाखण्डी, अभक्त; **यत**—सब; **पड़ुया**—विद्यार्थी; **अधम**—अधम वर्ग; **सेइ सब**—वे सब; **महा-दक्ष**—अत्यन्त दक्ष (चालाक); **धाञा**—दौड़ना; **पलाइल**—चले गये; **सेइ वन्या**—वह बाढ़; **ता-सबारे**—वे सब; **छुडिते**—स्पर्श करना; **नारिल**—न कर सके।

अनुवाद

मायावादी, सकाम कर्मी, छद्म तार्किक, निन्दा करने वाले, अभक्त तथा निम्न श्रेणी के विद्यार्थी कृष्णभावनामृत आन्दोलन से दूर रहने में बड़े दक्ष होते हैं, अतएव कृष्णभावनामृत की बाढ़ उनका स्पर्श नहीं कर पाती।

तात्पर्य

बनारस के प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे भूतकाल के मायावादी दार्शनिक की ही तरह आधुनिक मायावादी चैतन्य महाप्रभु के कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि नहीं रखते। वे इस भौतिक जगत् के महत्त्व को नहीं जानते; वे इसे मिथ्या मानते हैं और यह नहीं समझ पाते कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसका किस तरह उपयोग कर सकता है। वे निर्विशेष विचारों में इतने मग्न रहते हैं कि समस्त आध्यात्मिक विविधता को वे भौतिक मान बैठते हैं। क्योंकि वे ब्रह्मज्योति जैसी भ्रान्त धारणा के आगे कुछ भी नहीं जानते, अतः वे यह नहीं समझ सकते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण आध्यात्मिक हैं, अतएव भौतिक माया की धारणा से परे हैं। जब कभी कृष्ण स्वयं या भक्त रूप में अवतरित होते हैं, तब ये मायावादी दार्शनिक उन्हें सामान्य व्यक्ति मान लेते हैं। *भगवद्गीता* (९.११) में इसकी भर्त्सना की गई है :

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूत-महेश्वरम्॥

"जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ, तो मूर्ख लोग मेरा उपहास करते हैं। वे सबके परमेश्वर के रूप में मेरे दिव्य स्वभाव को नहीं जानते।"

ऐसे अन्य ठग व्यक्ति भी होते हैं, जो अपने आपको भगवान् का अवतार बतलाकर भगवान् के अवतरित होने की घटना का दुरुपयोग करते हैं और इस तरह अबोध जनता को ठगते हैं। ईश्वर के अवतार को शास्त्रों में दिए गये कथनों की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए और उसे असाधारण कार्य करने चाहिए। हमें चाहिए कि किसी धूर्त को ईश्वर का अवतार न मानें, अपितु भगवान् की तरह कार्य करने की उसकी क्षमता की परीक्षा लें। उदाहरणार्थ, कृष्ण ने अर्जुन को *भगवद्गीता* का उपदेश दिया और अर्जुन ने भी कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मानकर हमारे समझने के लिए भगवान् से प्रार्थना की कि वे अपना विराट् रूप प्रकट करें। इस तरह उन्होंने कृष्ण की परीक्षा ली कि वे सचमुच भगवान् हैं या नहीं। इसी प्रकार हमें चाहिए कि ईश्वर के तथाकथित अवतार की परीक्षा हम आदर्श मापदण्ड के अनुसार करें। हमें चाहिए कि हम उसकी योगशक्तियों के प्रदर्शन से भ्रमित न होकर शास्त्रों के कथनानुसार ईश्वर के तथाकथित अवतार की परीक्षा लें। चैतन्य महाप्रभु को शास्त्रों में कृष्ण का अवतार कहा गया है, अतएव यदि कोई चैतन्य महाप्रभु की नकल करना चाहता है और अपने आपको अवतार घोषित करता है, तो उसे अपना अधिकार प्रमाणित करने के लिए शास्त्रों से प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए।

তাহা দেখি' মহাপ্রভু করেন চিন্তন ।
জগড্ডুবাইতে আমি করিলুঁ যতন ॥৩১॥
কেহ কেহ এড়াইল, প্রতিজ্ঞা হইল ভঙ্গ ।
তা-সবা ডুবৈতে পাতিব কিছু রঙ্গ ॥৩২॥

তাহা দেখি' মহাপ্রভু করেন চিন্তন ।
জগত্ডুবাইতে আমি করিলুঁ য়তন ॥ ৩১ ॥
কেহ কেহ এড়াইল, প্রতিজ্ঞা হইল ভঙ্গ ।
তা-সবা ডুবৈতে পাতিব কিছু রঙ্গ ॥ ৩২ ॥

ताहा देखि'—यह प्रगति देखकर; **महाप्रभु**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **करेन**—करते हैं; **चिन्तन**—चिन्तन, सोच; **जगत्**—सारा संसार; **डुबाइते**—डूबाने का; **आमि**—मैंने; **करिलुँ**—प्रयास किया; **यतन**—प्रयास; **केह केह**—उनमें से कुछ; **एड़ाइल**—बच निकले; **प्रतिज्ञा**—प्रतिज्ञा; **हइल**—हो गये; **भङ्ग**—टूट गई; **ता-सबा**—वे सब; **डुबाइते**—उनको डुबाने की; **पातिब**—सोच निकालुँगा; **किछु**—कुछ; **रङ्ग**—तरकीब।

अनुवाद

यह देखकर कि मायावादी तथा अन्य लोग पलायन कर रहे हैं, चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, "मेरी इच्छा थी कि प्रत्येक व्यक्ति भगवत्प्रेम की इस बाढ़ में डूब जाए, किन्तु उनमें से कुछ लोग भाग निकले हैं। अतएव मैं उन्हें भी डुबाने का कोई उपाय निकालूँगा।"

तात्पर्य

यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसा मार्ग निकालना चाहते थे, जिससे वे मायावादियों तथा कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि न रखने वाले ऐसे ही अन्य लोगों को पकड़ सकें। यह *आचार्य* का लक्षण है। एक आचार्य, जो भगवान् की सेवा करने के लिए आता है, उससे यह उम्मीद नहीं की जाती कि वह घिसे-पिटे मार्ग पर चलेगा, क्योंकि उसे ऐसे मार्ग और साधन ढूँढने होंगे, जिनसे कृष्णभावनामृत का प्रसार हो सके। कभी-कभी ईर्ष्यालु लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन की इसलिए आलोचना करते हैं, क्योंकि इसमें भगवत्प्रेम वितरण हेतु लड़कों तथा लड़कियों को समान रूप से लगाया जाता है। वे यह नहीं जानते कि यूरोप तथा अमरीका जैसे देशों में लड़के तथा लड़कियाँ दोनों मुक्त रूप से परस्पर मिलते हैं, ये धूर्त तथा मूर्ख कृष्णभावनामृत में लगे लड़के-लड़कियों के परस्पर मिलने की आलोचना करते हैं। किन्तु इन धूर्तों को यह सोचना चाहिए कि किसी समाज की प्रथाएँ सहसा नहीं बदली जा सकतीं। फिर भी लड़कों तथा लड़कियों दोनों को प्रचारक बनने की शिक्षा दी जाती है, इसलिए ये लड़कियाँ सामान्य लड़कियाँ नहीं रह जातीं, अपितु कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले अपने भाइयों के समकक्ष ही होती हैं। इसलिए आध्यात्मिक कार्यों में लड़कों तथा लड़कियों दोनों को लगाना कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार की दृष्टि से एक

नीति है। जो ईर्ष्यालु मूर्ख लोग लड़कों तथा लड़कियों के परस्पर मिलने की आलोचना करते हैं, उन्हें अपनी मूर्खता से ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा, क्योंकि वे सोच ही नहीं सकते कि कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए किस तरह से इस कार्य के लिए उपयुक्त साधनों का उपयोग किया जाए। उनकी घिसी-पिटी विधियों से कृष्णभावनामृत का प्रसार नहीं हो सकेगा। इसीलिए हम जो कुछ कर रहे हैं, वह चैतन्य महाप्रभु की कृपा से पूर्ण है, क्योंकि उन्होंने ही कृष्णभावनामृत से दूर रहने वालों को पकड़ने के लिए एक मार्ग का आविष्कार करने के लिए अनुमोदन किया था।

এত বলি' মনে কিছু করিয়া বিচার ।
সন্ন্যাস-আশ্রম প্রভু কৈলা অঙ্গীকার ॥ ৩৩ ॥

এত বলি' মনে কিছু করিয়া বিচার ।
সন্ন্যাস-আশ্রম প্রভু কৈলা অঙ্গীকার ॥ ३३ ॥

এত বলি'—यह कहकर; **মনে**—मन में; **কিছু**—कुछ; **করিয়া**—किया; **বিচার**—विचार; **সন্ন্যাস-আশ্রম**—संन्यास आश्रम; **প্রভু**—प्रभु; **কৈলা**—किया; **অঙ্গীকার**—स्वीकार।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु ने पूरी तरह विचार करने के बाद संन्यास आश्रम ग्रहण किया।

तात्पर्य

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यास ग्रहण करने की आवश्यकता न थी, क्योंकि वे साक्षात् भगवान् हैं। अतएव उन्हें जीवन के देहात्म बोध से कोई प्रयोजन नहीं था। श्री चैतन्य महाप्रभु आठों वर्णों तथा आश्रमों—अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—में से किसी के साथ सम्बन्धित नहीं हैं। उन्होंने अपने आपको सर्वोपरि आत्मा के रूप में माना था। श्री चैतन्य महाप्रभु या इस मामले में कोई भी शुद्ध भक्त कभी भी अपने आपको जीवन के इन सामाजिक तथा आध्यात्मिक विभागों से नहीं जोड़ता, क्योंकि भक्त सदैव समाज की इन विविध श्रेणियों से परे होता है। तो भी भगवान् श्री चैतन्य ने इस आधार पर संन्यास ग्रहण करना स्वीकार किया

कि जब वे संन्यासी बन जायेंगे, तो हर व्यक्ति उनका सम्मान करेगा और इससे हर व्यक्ति का मंगल होगा। यद्यपि उन्हें संन्यास ग्रहण करने की कोई आवश्यकता न थी, किन्तु उन्होंने उन लोगों के मंगल हेतु ऐसा किया जो उन्हें सामान्य मनुष्य मानते थे। उनके संन्यास ग्रहण करने का प्रमुख कारण मायावादी संन्यासियों का उद्धार करना था। यह इसी अध्याय में आगे स्पष्ट हो जायेगा।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने "मायावादी" शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है : "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जीवन की भौतिक अवधारणा से परे हैं। मायावादी वह है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के शरीर को माया से बना हुआ मानता है और जो भगवान् के धाम को तथा उन तक पहुँचने की विधि, भक्ति को भी माया ही मानता है। मायावादी भक्ति के सारे साधनों को माया मानता है।" *माया* इस भौतिक स्थिति की सूचक है, जिसका विशेष लक्षण सकाम कर्मों की प्रतिक्रिया भुगतना है। मायावादी लोग भक्ति को ऐसा ही सकाम कर्म मानते हैं। उनके अनुसार जब *भागवत्* अर्थात् भक्तगण दार्शनिक चिन्तन से शुद्ध हो जायेंगे, तभी उनकी मुक्ति हो सकेगी। भक्ति के विषय में ऐसा तर्कवितर्क करने वाले लोग *कुतार्किक* (झूठे तार्किक) कहलाते हैं और जो लोग भक्ति को सकाम कर्म मानते हैं, वे *कर्मनिष्ठ* कहलाते हैं। जो लोग भक्ति की आलोचना करते हैं, वे *निन्दक* कहलाते हैं। इसी प्रकार वे अभक्त, जो भक्ति-कार्यों को भौतिक मानते हैं, *पाषण्डी* कहलाते हैं और इसी प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले विद्वान *अधम पड़ुया* कहलाते हैं।

कुतार्किक, निन्दक, पाषण्डी तथा *अधम पड़ुया*—इन सबने श्री चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम-विकास के आन्दोलन के लाभ से अपने आपको दूर रखा। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु को इन पर दया आई, जिसके कारण ही उन्होंने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया, क्योंकि ये सब उन्हें संन्यासी के रूप में देखकर उनका सम्मान करेंगे। आज भी भारत में संन्यास आश्रम का आदर किया जाता है। यहाँ तक कि संन्यासी की वेशभूषा से ही भारतीय जनता में आदर भाव जगता है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्ति सम्प्रदाय के प्रचार की सुविधा के लिए संन्यास स्वीकार किया, यद्यपि उन्हें आध्यात्मिक जीवन के इस चतुर्थ आश्रम में प्रवेश करने की कोई आवश्यकता न थी।

চব্বিশ বত্সর ছিলা গৃহস্থ-আশ্রমে ।
পঞ্চ-বিংশতি বর্ষে কৈল যতি-ধর্মে ॥ ৩৪ ॥

চব্বিশ বত্সর ছিলা গৃহস্থ-আশ্রমে ।
পঞ্চ-বিংশতি বর্ষে কৈল য়তি-ধর্মে ॥ ३४ ॥

चब्बिश—चौबीस; **वत्सर**—वर्ष; **छिला**—वे रहे; **गृहस्थ**—गृहस्थ; **आश्रमे**—आश्रम में; **पञ्च**—पाँच; **विंशति**—बीस; **वर्षे**—वर्ष में; **कैल**—किया; **य़ति-धर्मे**—संन्यास आश्रम स्वीकार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक गृहस्थ जीवन में रहे और पच्चीसवें वर्ष के आरम्भ में उन्होंने संन्यास आश्रम स्वीकार कर लिया।

तात्पर्य

आध्यात्मिक जीवन के चार आश्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास और प्रत्येक आश्रम के चार विभाग हैं। ब्रह्मचारी आश्रम के विभाग हैं, *सावित्र्य, प्राजापत्य, ब्राह्म* तथा *बृहत्*। गृहस्थाश्रम के विभाग हैं, *वार्ता* (वृत्ति वाले), *सञ्चय* (एकत्र करने वाले), *शालीन* (जो किसी से कुछ भी नहीं माँगते) तथा *शिलोञ्छन* (जो धान के खेतों से अन्न बटोरते हैं)। इसी तरह वानप्रस्थाश्रम के विभाग हैं, *वैखानस, वालखिल्य, औडुम्बर* तथा *फेणप* और संन्यासाश्रम के विभाग हैं, *कुटीचक, बहूदक, हंस* तथा *निष्क्रिय*। संन्यासियों के जिन दो प्रकारों का वर्णन *श्रीमद्भागवत* (१.१३.२६-२७) में हुआ है, वे हैं *धीर* तथा *नरोत्तम*। शकाब्द १४३२ (१५१० ई.) के जनवरी मास के अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने शंकर सम्प्रदाय के श्री केशव भारती से संन्यास आश्रम ग्रहण किया।

সন্ন্যাস করিয়া প্রভু কৈলা আকর্ষণ ।
যতেক পালাঞাছিল তার্কিকাদিগণ ॥ ৩৫ ॥

সন্ন্যাস করিয়া প্রভু কৈলা আকর্ষণ ।
য়তেক পালাঞাছিল তার্কিকাদিগণ ॥ ३५ ॥

सन्न्यास—संन्यास आश्रम; **करिया**—स्वीकार करके; **प्रभु**—प्रभु; **कैला**—किया;

आकर्षण—आकर्षण; **ग्रतेक**—सब; **पालाञ्छिल**—भाग गये; **तार्किक-आदि-गण**—तर्कवादी लोग एवं ऐसे अन्य सभी।

अनुवाद

संन्यास आश्रम स्वीकार कर लेने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबका ध्यान आकृष्ट किया, जो उनसे बचते फिरते थे, जिनमें से तार्किक लोग प्रमुख थे।

पड़ुया, पाषण्डी, कर्मी, निन्दकादि यत ।
तारा आसि' प्रभु-पाय हय अवनत ॥ ३६॥

पड़ुया, पाषण्डी, कर्मी, निन्दकादि ग्रत ।
तारा आसि' प्रभु-पाय हय अवनत ॥ ३६॥

पड़ुया—विद्यार्थी; **पाषण्डी**—पाखण्डी; **कर्मी**—सकाम कर्मी; **निन्दक-आदि**—निन्दक आदि; **ग्रत**—सब; **तारा**—वे; **आसि'**—आकर; **प्रभु**—प्रभु के; **पाय**—चरणकमल; **हय**—हो गये; **अवनत**—शरण में आ गये।

अनुवाद

इस प्रकार विद्यार्थी, पाखण्डी, सकाम कर्मी तथा आलोचक—ये सभी भगवान् के चरणकमलों में आ-आकर आत्मसमर्पण करने लगे।

अपराध क्षमाइल, डुबिल प्रेम-जले ।
केवा एड़ाइबे प्रभुर प्रेम-महाजाले ॥ ३७॥

अपराध क्षमाइल, डुबिल प्रेम-जले ।
केबा एड़ाइबे प्रभुर प्रेम-महाजाले ॥ ३७॥

अपराध—अपराध; **क्षमाइल**—क्षमा किया; **डुबिल**—लीन हो गये; **प्रेम-जले**—भगवत् प्रेम के सागर में; **केबा**—दूसरा कौन; **एड़ाइबे**—चला जायेगा; **प्रभुर**—प्रभु का; **प्रेम**—प्रिय; **महा-जाले**—महाजाल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबको क्षमा प्रदान की और वे सभी भक्ति के सागर में निमग्न हो गये, क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं था, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के अद्वितीय प्रेम रूपी जाल से बच सके।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु आदर्श आचार्य थे। आचार्य एक आदर्श शिक्षक होता है, जो प्रामाणिक शास्त्रों के प्रयोजन को जानता है, उनके आदर्शों के अनुसार ठीक आचरण करता है और अपने शिष्यों को इन्हीं सिद्धान्तों को ग्रहण करने की शिक्षा भी देता है। आदर्श आचार्य के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु सभी तरह के नास्तिकों तथा भौतिकतावादियों को वशीभूत करने के लिए उपाय निकालते रहते थे। प्रत्येक आचार्य के पास अपने आध्यात्मिक आन्दोलन के प्रचारार्थ विशेष साधन होते हैं, जिससे लोग कृष्णभावनामृत में सम्मिलित हों। अतएव किसी एक आचार्य की विधि दूसरे आचार्य से भिन्न हो सकती है, किन्तु उनका चरम लक्ष्य एक ही रहता है। श्रील रूप गोस्वामी की संस्तुति है :

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।
सर्वे विधि-निषेधा स्युरेतयोरेव किङ्कराः।

एक आचार्य को ऐसा उपाय निकालना चाहिए, जिससे लोग किसी न किसी प्रकार से कृष्णभावना की ओर उन्मुख हों। सबसे पहले उन्हें कृष्णभावनाभावित बनना चाहिए और तब उन्हें सारे विधि-विधानों से धीरे-धीरे परिचित कराया जाना चाहिए। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में श्री चैतन्य महाप्रभु की इसी नीति का अनुसरण करते हैं। उदाहरणार्थ, पाश्चात्य देशों में लड़के तथा लड़कियाँ मुक्त रूप से परस्पर मिलते-जुलते हैं, अतएव उन्हें कृष्णभावनामृत के प्रति आकर्षित करने के लिए उनकी आदतों तथा प्रथाओं के विषय में विशेष छूट देने की आवश्यकता है। आचार्य को ऐसा उपाय निकालना चाहिए कि जिससे सभी लोग भक्ति में दीक्षित हों। अतएव, मैं संन्यासी होते हुए भी कभी-कभी इन लड़कों तथा लड़कियों के विवाह कराने के कार्य में सम्मिलित होता हूँ, यद्यपि संन्यास के इतिहास में आज तक किसी भी संन्यासी ने अपने शिष्यों के विवाह में स्वयं भाग नहीं लिया है।

সবা নিস্তারিতে প্রভু কৃপা-অবতার ।
সবা নিস্তারিতে করে চাতুরী অপার ॥৩৮॥

सबा निस्तारिते प्रभु कृपा-अवतार ।
सबा निस्तारिते करे चातुरी अपार ॥ ३८ ॥

सबा—सब; **निस्तारिते**—उद्धार करने के लिए; **प्रभु**—भगवान्, प्रभु; **कृपा**—कृपा; **अवतार**—अवतार; **सबा**—सब; **निस्तारिते**—उद्धार करने हेतु; **करे**—किया; **चातुरी**—योजनाएँ; **अपार**—अपार, असीम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए। अतएव उन्होंने उन्हें माया के प्रभाव से मुक्त कराने के लिए अनेक उपाय ढूँढ निकाले।

तात्पर्य

पतितात्माओं पर दया दिखाना आचार्य का कार्य है। इस सन्दर्भ में *देश-काल-पात्र* (स्थान, समय तथा व्यक्ति) पर विचार करना होता है। चूँकि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में यूरोपीय तथा अमरीकी लड़के तथा लड़कियाँ साथ-साथ प्रचार करते हैं, अतएव अल्पज्ञ लोग आलोचना करते हैं कि वे बिना रोक-टोक के परस्पर मिलते हैं। यूरोप तथा अमरीका में लड़के तथा लड़कियाँ बिना रोक-टोक के मिलते-जुलते हैं और उन्हें समान अधिकार प्राप्त होते हैं; अतएव पुरुषों को स्त्रियों से बिल्कुल अलग रखना सम्भव नहीं है। फिर भी हम पुरुषों तथा स्त्रियों को भलीभाँति शिक्षा देते हैं कि किस तरह प्रचार-कार्य किया जाए और वे बहुत ही अच्छी तरह यह कार्य सम्पन्न करते हैं। हाँ, हम अवैध यौन सम्बन्ध का कड़ाई से निषेध करते हैं। जो लड़के तथा लड़कियाँ विवाहित नहीं हैं, उन्हें न तो एकसाथ सोने दिया जाता है, न साथ-साथ रहने दिया जाता है। हर मन्दिर में उनके रहने की पृथक्-पृथक् व्यवस्था है। गृहस्थ मन्दिर के बाहर रहते हैं, क्योंकि पति तथा पत्नी तक को मन्दिर में एकसाथ रहने की अनुमति नहीं दी जाती। इसके परिणाम बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही श्री चैतन्य महाप्रभु एवं भगवान् कृष्ण के उपदेशों का प्रचार दुगने उत्साह के साथ करते हैं। इस श्लोक में *सबा निस्तारिते करे चातुरी अपार* से यह इंगित होता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु हर एक का उद्धार करना चाहते थे। इसलिए यह सिद्धान्त बना है कि प्रचारक को शास्त्रों द्वारा अनुमोदित विधि-

विधानों का कड़ाई से पालन करना चाहिए, किन्तु साथ ही ऐसा उपाय निकालना चाहिए, जिससे पतितों के उद्धार के लिए प्रचार-कार्य पूरे जोर-शोर के साथ चलता रहे।

তবে নিজ ভক্ত কৈল যত ম্লেচ্ছ আদি ।
সবে এড়াইল মাত্র কাশীর মায়াবাদী ॥৩৯॥

तबे निज भक्त कैल यत म्लेच्छ आदि ।
सबे एड़ाइल मात्र काशीर मायावादी ॥ ३९ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **निज**—अपना; **भक्त**—भक्त; **कैल**—परिवर्तित किया; **यत**—सब; **म्लेच्छ**—म्लेच्छ, जो वैदिक सिद्धान्तों का पालन नहीं करता; **आदि**—सूची में सबसे ऊपर; **सबे**—वे सब; **एड़ाइल**—बच गये; **मात्र**—मात्र; **काशीर**—वाराणसी; **मायावादी**—मायावादी।

अनुवाद

सभी लोग, यहाँ तक कि म्लेच्छ तथा यवन भी श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त बना लिए गये। केवल शंकराचार्य के निर्विशेषवादी अनुयायी (मायावादी) ही उनसे बचते रहे।

तात्पर्य

इस श्लोक में यह स्पष्ट इंगित हुआ है कि यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुसलमानों तथा अन्य म्लेच्छों को अपना भक्त बना लिया था, किन्तु शंकराचार्य के निर्विशेषवादी अनुयायी नहीं बदले जा सके। चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम ग्रहण करने के बाद अनेक कर्मनिष्ठों, अर्थात् सकाम कर्म में लिप्त रहने वालों, सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे महान् तार्किकों, प्रकाशानन्द सरस्वती जैसे निन्दकों, जगाई तथा माधाई जैसे पाषण्डियों (अभक्तों) और मुकुन्द तथा उसके मित्रों जैसे अधम पडुयाओं (अधम विद्यार्थियों) को अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित किया। ये सभी धीरे-धीरे भगवान् के भक्त बन गये, यहाँ तक कि पठान (मुसलमान) भी, किन्तु निर्विशेषवादियों को बदल पाना कठिन था, जो कि सबसे बुरे अपराधी थे, क्योंकि वे बड़ी ही कुशलता से चैतन्य महाप्रभु के उपायों से बच निकलते थे।

काशीर मायावादियों का वर्णन करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने बतलाया है कि जो लोग अनुभववादी ज्ञान से या प्रत्यक्ष इन्द्रियानुभूति से मोहग्रस्त हैं और इस तरह इस सीमित भौतिक जगत् को भी अपने भौतिक अनुमानों से मापने के लिए विचार करते हैं, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्यक्ष इन्द्रिय बोध से जानी जाने वाली प्रत्येक वस्तु *माया* या भ्रम है। वे यह मत बनाये रखते हैं कि यद्यपि परम सत्य इन्द्रिय बोध की परिधि से बाहर है, किन्तु उसमें कोई आध्यात्मिक विविधता या भोग नहीं रहता। काशीर मायावादियों के अनुसार आध्यात्मिक जगत् केवल शून्य है। वे न तो परम सत्य के पुरुष (व्यक्ति) रूप में विश्वास करते हैं, न ही आध्यात्मिक जगत् में उनके नाना प्रकार के कार्यों में विश्वास करते हैं। यद्यपि उनके पास उनके अपने ही तर्क होते हैं, जो बहुत सशक्त नहीं होते, किन्तु उन्हें परम सत्य के नाना प्रकार के कार्यों का कोई बोध नहीं होता। ये निर्विशेषवादी, जो शंकराचार्य के अनुयायी हैं, वे सामान्यतया काशीर मायावादी (वाराणसी में निवास करने वाले निर्विशेषवादी) कहलाते हैं।

वाराणसी के निकट निर्विशेषवादियों का एक अन्य समुदाय है, जो सारनाथ मायावादियों के नाम से जाना जाता है। वाराणसी शहर के बाहर सारनाथ नामक एक स्थान है, जहाँ एक विशाल बौद्ध स्तूप है। वहाँ बौद्धदर्शन के अनेक अनुयायी रहते हैं और वे सारनाथ मायावादी कहलाते हैं। सारनाथ के मायावादी वाराणसी के मायावादियों से भिन्न हैं, क्योंकि वाराणसी के मायावादी यह प्रचार करते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म सत्य है, परन्तु भौतिक विविधता मिथ्या है; किन्तु सारनाथ के मायावादी इस बात पर भी नहीं विश्वास करते कि परम सत्य या ब्रह्म माया के विपरित है। उनके अनुसार भौतिकतावाद ही परम सत्य की एकमात्र अभिव्यक्ति है।

वास्तव में काशीर तथा सारनाथ मायावादी दोनों एवं साथ ही अन्य दार्शनिक, जिन्हें आत्मा विषयक ज्ञान नहीं होता, निपट भौतिकतावाद के पक्षधर हैं। इनमें से किसी को भी परम सत्य या वैकुण्ठ के विषय में कोई ज्ञान नहीं होता। सारनाथ के मायावादी जैसे दार्शनिक, जो परम सत्य के आध्यात्मिक अस्तित्व के बारे में विश्वास नहीं करते, किन्तु भौतिक वैचित्र्य को ही सब कुछ

मानते हैं, यह विश्वास नहीं करते कि प्रकृति दो प्रकार की है—अपरा (भौतिक) तथा परा (आध्यात्मिक)—जिनका वर्णन *भगवद्गीता* में मिलता है। वास्तव में न तो वाराणसी के, न ही सारनाथ के मायावादी अपने अल्पज्ञान के कारण *भगवद्गीता* के सिद्धान्तों को स्वीकारते हैं।

चूँकि ये मायावादी, जिन्हें पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, भक्तियोग के सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते, अतएव इन्हें उन अभक्तों की श्रेणी में रखना चाहिए, जो कृष्णभावनामृत आन्दोलन के विरोधी हैं। कभी-कभी इन मायावादियों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले अवरोधों के कारण हमें बड़ी असुविधा होती है, किन्तु हम उनके तथाकथित दर्शन की परवाह नहीं करते, क्योंकि हम *भगवद्गीता* यथारूप में प्रतिपादित अपने दर्शन का प्रचार करते हैं और इससे हमें सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं। ये दोनों प्रकार के मायावादी ऐसा सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, मानो भक्ति उनके मानसिक चिन्तन का विषय हो और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि *भक्तियोग* की विषयवस्तु माया की सृष्टि है और कृष्ण, भक्ति तथा भक्त भी *माया* हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने ठीक कहा है—*मायावादी कृष्णे अपराधी*—"सारे मायावादी भगवान् कृष्ण के अपराधी हैं।" (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* १७.१२९) कृष्णभावनामृत आन्दोलन को समझ पाना उनके लिए सम्भव नहीं है; अतएव हम उनके दार्शनिक निष्कर्षों की परवाह नहीं करते। ऐसे झगड़ालू मायावादी अपने तथाकथित तर्क को प्रस्तुत करने में कितने ही दक्ष क्यों न हों, हम उन्हें हर तरह से परास्त करके अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन को आगे बढ़ाते जाते हैं। उनकी मानसिक कल्पना की उड़ान हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन की प्रगति को रोक नहीं सकती, क्योंकि यह पूर्णतया आध्यात्मिक है और ऐसे मायावादियों के नियंत्रण में नहीं है।

বৃন্দাবন যাইতে প্রভু রহিলা কাশীতে ।
মায়াবাদি-গণ তাঁরে লাগিল নিন্দিতে ॥ ৪০ ॥

বৃন্দাবন য়াইতে প্রভু রহিলা কাশীতে ।
মায়াবাদি-গণ তাঁরে লাগিল নিন্দিতে ॥ ৪০ ॥

वृन्दावन—पवित्र स्थान वृन्दावन; **याइते**—वहाँ जाते समय; **प्रभु**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **रहिला**—रहे; **काशीते**—वाराणसी में; **मायावादि-गण**—मायावादी दार्शनिक; **तौरे**—उनको; **लगिल**—आरम्भ किया; **निन्दिते**—उनकी निन्दा करना।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते समय वाराणसी से होकर गुजर रहे थे, तो मायावादी संन्यासी दार्शनिकों ने अनेक प्रकार से उनकी निन्दा की।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण शक्ति के साथ कृष्णभावना का प्रचार करते समय अनेक मायावादी दार्शनिकों का सामना करना पड़ा। इसी प्रकार हमें भी विरोध करने वाले स्वामियों, योगियों, मायावादियों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा अन्य मानसिक तर्कवादियों का सामना करना पड़ता है और भगवान् कृष्ण की कृपा से हम उन सबको बिना कठिनाई के परास्त करते जाते हैं।

सन्न्यासी हञा करे गायन, नाचन ।
ना करे वेदान्त-पाठ, करे सङ्कीर्तन ॥ ४१ ॥

सन्न्यासी हइया करे गायन, नाचन ।
ना करे वेदान्त-पाठ, करे सङ्कीर्तन ॥ ४१ ॥

सन्न्यासी—संन्यासी; **हइया**—ऐसी स्थिति स्वीकार करके; **करे**—करता है; **गायन**—गायन; **नाचन**—नृत्य; **ना करे**—नहीं करता; **वेदान्त-पाठ**—वेदान्त दर्शन का अध्ययन; **करे सङ्कीर्तन**—मात्र संकीर्तन करता है।

अनुवाद

(निंदकों ने कहा :) "संन्यासी होकर भी वह वेदान्त के अध्ययन में रुचि नहीं लेता, किन्तु इसके बदले नाचने और संकीर्तन करने में सदैव लगा रहता है।

तात्पर्य

इसे सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य, हमें भी ऐसे मायावादी मिलते रहते हैं, जो हमारी कीर्तन-विधि की आलोचना करते हैं और हम पर अध्ययन में रुचि न

रखने का दोष लगाते हैं। वे यह नहीं जानते कि हमने कितने ही ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है और हमारे मन्दिरों के अनुयायी इन्हें नियमित रूप से प्रातः, दोपहर और संध्या समय पढ़ते हैं। हम पुस्तकें लिखते और छापते रहते हैं और हमारे अनुयायी उन्हें पढ़ते हैं तथा विश्वभर में वितरित भी करते हैं। कोई भी मायावादी संप्रदाय इतनी पुस्तकें प्रस्तुत नहीं कर सकता, जितनी हमने की हैं; फिर भी वे हम पर दोषारोपण करते रहते हैं कि हम अध्ययन में रुचि नहीं रखते। ऐसे दोषारोपण पूर्ण रूप से गलत हैं। यद्यपि हम अध्ययन करते हैं, किन्तु मायावादियों की व्यर्थ की बातों का अध्ययन नहीं करते।

मायावादी संन्यासी न तो कीर्तन करते हैं, न ही नृत्य करते हैं। उनकी मुख्य शास्त्रीय आपत्ति यह है कि यह कीर्तन तथा नृत्य की विधि *तौर्यत्रिक* है, जिससे यह सूचित होता है कि संन्यासी को ऐसे कार्यों से पूरी तरह बचना चाहिए और अपना समय वेदान्त अध्ययन में लगाना चाहिए। वास्तव में ऐसे व्यक्ति यह समझते ही नहीं कि वेदान्त का तात्पर्य क्या है। *भगवद्गीता* (१५.१५) में कृष्ण कहते हैं—*वेदैश्च सर्वैर् अहम् एव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविद एव चाहम्*—"सभी वेदों के द्वारा मुझे जाना जाता है। निस्सन्देह मैं वेदान्त का संग्रह करने वाला हूँ और मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।" भगवान् कृष्ण ही वेदान्त के वास्तविक संग्रहकर्ता हैं और वे जो कुछ भी कहते हैं, वह वेदान्त दर्शन है। यद्यपि मायावादी लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा प्रस्तुत किये गये उस वेदान्त के ज्ञान से विहीन होते हैं, जो *श्रीमद्भागवत* के दिव्य रूप में है, फिर भी उन्हें अपने अध्ययन पर बड़ा गर्व रहता है। उनके द्वारा वेदान्त दर्शन को विकृत रूप में प्रस्तुत किये जाने के बुरे प्रभावों का पूर्वानुमान करके ही श्रील व्यासदेव ने *वेदान्त-सूत्र* के भाष्य के रूप में *श्रीमद्भागवत* का संकलन किया। *श्रीमद्भागवत, भाष्योऽयं ब्रह्मसूत्राणाम्* है; दूसरे शब्दों में, *ब्रह्मसूत्र* के सूत्रों में निहित समस्त वेदान्त दर्शन का वर्णन *श्रीमद्भागवत* के पृष्ठों में विस्तारपूर्वक हुआ है। इस तरह वेदान्त दर्शन का सच्चा प्रतिपादक वह कृष्णभावनाभावित व्यक्ति है, जो सदैव *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे ग्रंथों का अध्ययन करता है और उन्हें समझता है तथा इन ग्रंथों के तात्पर्यों की शिक्षा सारे विश्व को देता है। मायावादी लोगों को वेदान्त दर्शन पर एकाधिकार रखने का अत्यधिक गर्व है, किन्तु

भक्तों के पास वेदान्त पर उनके स्वाभाविक भाष्य यथा *श्रीमद्भागवत* तथा आचार्यों द्वारा लिखित अन्य भाष्य हैं। गौड़ीय वैष्णवों की टीका *गोविन्द-भाष्य* कहलाती है।

मायावादियों का यह आरोप कि भक्तगण वेदान्त का अध्ययन नहीं करते, पूर्ण रूप से गलत है। मायावादी लोगों को यह पता नहीं कि कीर्तन करना, नृत्य करना तथा *श्रीमद्भागवत* के सिद्धान्तों का प्रचार करना, जिसे *भागवत् धर्म* कहते हैं, वेदान्त के अध्ययन के समकक्ष ही है। चूँकि वे सोचते हैं कि वेदान्त दर्शन का पठन संन्यासियों का एकमात्र कार्य है और चूँकि उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को ऐसा प्रत्यक्ष अध्ययन करते नहीं पाया, इसलिए वे उनकी आलोचना करने लगे। श्रीपाद शंकराचार्य ने वेदान्त दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। *वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः*—"केवल कौपीन बाँधने वाले पक्के संन्यासी को चाहिए कि वह *वेदान्त-सूत्र* के दार्शनिक कथनों का सदा आनन्द ले। ऐसे संन्यासी को अत्यन्त भाग्यशाली समझना चाहिए।" मायावादियों ने वाराणसी में श्री चैतन्य महाप्रभु की इसलिए निन्दा की, क्योंकि उनका आचरण इन सिद्धान्तों के अनुसार नहीं था। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन मायावादी संन्यासियों पर विशेष अनुग्रह किया और प्रकाशानन्द सरस्वती तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ वेदान्त शास्त्रार्थ द्वारा उनका उद्धार किया।

मूर्ख सन्न्यासी निज-धर्म नाहि जने ।
भावुक हइया फेरे भावुकेर सने ॥ ४२॥

मूर्ख सन्यासी निज-धर्म नाहि जने ।
भावुक हइया फेरे भावुकेर सने ॥ ४२॥

मूर्ख—मूर्ख, अशिक्षित; **सन्यासी**—संन्यासी; **निज-धर्म**—निजी कर्तव्य; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानता; **भावुक**—भावुक; **हइया**—होकर; **फेरे**—घूमता फिरता है; **भावुकेर**—दूसरे भावुक व्यक्तियों के साथ; **सने**—साथ।

अनुवाद

"यह चैतन्य महाप्रभु तो अनपढ़ संन्यासी है, अतएव वह अपने

वास्तविक कर्म को नहीं जानता। वह मात्र भावों में बहकर अन्य भावुकों के साथ इधर-उधर घूमता रहता है।"

तात्पर्य

मूर्ख मायावादी यह नहीं जानते कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन दिव्य विज्ञान के ठोस दर्शन पर आधारित है। इसलिए वे इस गलत निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो नाचते तथा कीर्तन करते हैं, उनमें दार्शनिक ज्ञान नहीं होता है। किन्तु जो वास्तव में कृष्णभावनाभावित हैं, उन्हें वेदान्त दर्शन के सार का पूर्ण ज्ञान होता है, क्योंकि वे वेदान्त दर्शन के वास्तविक भाष्य *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन करते हैं और *भगवद्गीता यथारूप* में प्राप्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वास्तविक वचनों का पालन करते हैं। भागवत्दर्शन या भागवत् धर्म को समझने के बाद वे आध्यात्मिक रूप से पूर्णतया सचेत या कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं, अतएव उनका नाचना और कीर्तन करना भौतिक धरातल पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक धरातल पर होता है। यद्यपि सारे लोग साधारण रूप से 'हरे कृष्ण वालों' के नाम से लोकप्रिय इन भक्तों के भावपूर्ण कीर्तन और नृत्य की प्रशंसा करते हैं, किन्तु मायावादी इन कार्यों को अपने अल्पज्ञान के कारण समझ नहीं पाते।

এ সব শুনিয়া প্রভু হাসে মনে মনে ।
উপেক্ষা করিয়া কারো না কৈল সম্ভাষণে ॥ ৪৩ ॥

ए सब शुनिया प्रभु हासे मने मने ।
उपेक्षा करिया कारो ना कैल सम्भाषणे ॥ ४३ ॥

ए सब—ये सब; **शुनिया**—सुनकर; **प्रभु**—प्रभु; **हासे**—हँस पड़े; **मने मने**—अपने मन में; **उपेक्षा**—उपेक्षा; **करिया**—करके; **कारो**—किसी के साथ; **न**—नहीं; **कैल**—किया; **सम्भाषणे**—बातचीत, वार्तालाप।

अनुवाद

ये सारी निन्दा सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु मन में हँसने लगे। इन सारे दोषारोपणों को अस्वीकार करते हुए उन्होंने मायावादियों से बात नहीं की।

तात्पर्य

कृष्णभावनाभावित भक्त के रूप में हम मायावादी दार्शनिकों से बातें करके

अपना मूल्यवान समय व्यर्थ नष्ट करना नहीं चाहते, किन्तु जब भी ऐसा अवसर आता है, हम बड़े ही उत्साह और सफलता के साथ उन्हें अपना दर्शन बतलाकर शान्त करते हैं।

उपेक्षा करिया कैल मथुरा गमन ।
मथुरा देखिया पुनः कैल आगमन ॥ ४४ ॥

उपेक्षा करिया कैल मथुरा गमन ।
मथुरा देखिया पुनः कैल आगमन ॥ ४४ ॥

उपेक्षा—उपेक्षा करके; **करिया**—ऐसा करने से; **कैल**—किया; **मथुरा**—मथुरा नगरी; **गमन**—यात्रा करके; **मथुरा**—मथुरा; **देखिया**—दर्शन करने के बाद; **पुनः**—फिर; **कैल आगमन**—वापस आये।

अनुवाद

इस प्रकार वाराणसी-मायावादियों की निन्दा की उपेक्षा करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा की ओर आगे बढ़े और मथुरा जानें के बाद वे पुनः उस स्थिति का सामना करने के लिए लौट आये।

तात्पर्य

भगवान् चैतन्य महाप्रभु जब पहली बार वाराणसी आये, तो उन्होंने मायावादी दार्शनिकों से बात नहीं की, किन्तु उन सबको वेदान्त के वास्तविक प्रयोजन के प्रति आश्वस्त करने के उद्देश्य से वे मथुरा से फिर वाराणसी लौट आये।

काशीते लेखक शूद्र-श्रीचन्द्रशेखर ।
তাঁর घरে रहिला प्रभु स्वतन्त्र ईश्वर ॥ ४५ ॥

काशीते लेखक शूद्र-श्रीचन्द्रशेखर ।
ताँर घरे रहिला प्रभु स्वतन्त्र ईश्वर ॥ ४५ ॥

काशीते—वाराणसी में; **लेखक**—लेखक; **शूद्र**—शूद्र कुल में उत्पन्न; **श्री-चन्द्रशेखर**—चन्द्रशेखर; **ताँर घरे**—उसके घर में; **रहिला**—रहे; **प्रभु**—महाप्रभु; **स्वतन्त्र**—स्वतन्त्र; **ईश्वर**—परम नियन्ता।

अनुवाद

इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर नामक शूद्र या कायस्थ के घर पर रुके, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में वे पूर्णतया स्वतन्त्र हैं।

तात्पर्य

इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु चन्द्रशेखर नामक एक कर्मचारी के घर रुके, यद्यपि संन्यासी से यह आशा नहीं की जाती कि वह किसी शूद्र के घर पर निवास करेगा। पाँच सौ वर्ष पूर्व, विशेषतया बंगाल में, यह प्रथा थी कि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति ही ब्राह्मण माना जाता था और शेष सारे लोग, जो अन्य कुलों में—यहाँ तक कि क्षत्रिय तथा वैश्य जैसी उच्च जातियों में भी—जन्म लेते थे, वे शूद्र अब्राह्मण कहलाते थे। इसलिए यद्यपि चन्द्रशेखर उत्तरी भारत के एक कायस्थ परिवार का एक क्लर्क था, किन्तु वह शूद्र माना जाता था। इसी प्रकार *सुवर्ण वणिक* जाति के वैश्य बंगाल में शूद्र माने जाते थे। यहाँ तक कि वैद्य, जो सामान्यतया चिकित्सक होते थे, वे भी शूद्र माने जाते थे। किन्तु चैतन्य महाप्रभु को यह बनावटी सिद्धान्त मान्य न था, जिसे कुछ स्वार्थी लोगों ने समाज में चालू कर दिया था। बाद में कायस्थ, वैद्य और वणिक सभी लोग तथाकथित ब्राह्मणों के विरोध के बावजूद भी जनेऊ धारण करने लगे।

चैतन्य महाप्रभु के समय से पहले, बंगाल का राजा बल्लाल सेन निजी ईर्ष्या के कारण, सुवर्ण वणिक जाति की भर्त्सना करता था। यह जाति बंगाल की अत्यन्त धनवान जाति है, क्योंकि ये साहूकार हैं और सोने-चांदी का व्यापार करते हैं। इसलिए बल्लाल सेन सुवर्णवणिक साहूकारों से धन उधार लेता था। किन्तु जब वह दीवालिया हो गया, तो सुवर्णवणिक साहूकारों ने उसे धन देना बन्द कर दिया। फलतः वह नाराज हो गया और उसने समूचे सुवर्णवणिक समाज की शूद्र जाति कहकर भर्त्सना की। उसने ब्राह्मणों को भी प्रेरित किया कि वे सुवर्णवणिकों को वेदानुयायी न मानें, किन्तु कुछ ब्राह्मणों ने उसका कहना माना और कुछ ब्राह्मणों ने नहीं माना। ब्राह्मणों में भी मतभेद हो गया, अतएव जिन लोगों ने सुवर्णवणिक जाति का समर्थन किया उन्हें भी

ब्राह्मण जाति से निकाल दिया गया। आज भी वही पक्षपात चल रहा है।

आज भी बंगाल में ऐसे बहुत से वैष्णव परिवार हैं, जो जन्मजात ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु वैष्णव तन्त्रों के अनुसार शिष्यों को दीक्षा देने और यज्ञोपवतीत प्रदान करने का कार्य आचार्यों की भाँति करते हैं। उदाहरणार्थ, ठाकुर रघुनन्दन आचार्य, ठाकुर कृष्णदास, नवनी होडा तथा रसिकानन्द देव (श्यामानन्द प्रभु के शिष्य) के परिवारों में यज्ञोपवीत संस्कार होता है, जैसाकि कट्टर जाति-गोस्वामियों में होता है और यह प्रथा विगत तीन या चार सौ वर्षों से चली आ रही है। वे ब्राह्मण परिवारों में उत्पन्न लोगों को अपना शिष्य बनाते हैं और वे प्रामाणिक गुरु हैं और विग्रह के साथ शालग्राम शिला की पूजा करते हैं। अभी तक यह शालग्राम-शिला की पूजा हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शुरू नहीं की गई है, किन्तु शीघ्र ही यह हमारे मन्दिरों में *अर्चना-मार्ग* (अर्चाविग्रह पूजा) के अभिन्न अंग के रूप में शुरू की जायेगी।

तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा-निर्वाहण ।
सन्न्यासीर सङ्गे नाहि माने निमन्त्रण ॥ ४६ ॥

तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा-निर्वाहण ।
सन्न्यासीर सङ्गे नाहि माने निमन्त्रण ॥ ४६ ॥

तपन-मिश्रेर—तपन मिश्र के; **घरे**—घर में; **भिक्षा**—भिक्षा लेकर; **निर्वाहण**—निर्वाह किया; **सन्न्यासीर**—अन्य मायावादी संन्यासियों के साथ; **सङ्गे**—उसकी संगति में; **नाहि**—कभी नहीं; **माने**—स्वीकार किया; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण।

अनुवाद

सैद्धान्तिक तौर पर श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र के घर पर भोजन करते थे। वे न तो अन्य संन्यासियों से मिलते-जुलते थे, न ही उनका निमंत्रण स्वीकार करते थे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का यह आदर्श आचरण सिद्ध करता है कि वैष्णव संन्यासी न तो मायावादी संन्यासियों का निमंत्रण स्वीकार कर सकता है, न उनसे घुलमिल सकता है।

सनातन गोसाञि आसि' ताँहाइ मिलिला ।
ताँर शिक्षा लागि' प्रभु दु-मास रहिला ॥ ४७ ॥

सनातन गोसाञि आसि' ताँहाइ मिलिला ।
ताँर शिक्षा लागि' प्रभु दु-मास रहिला ॥ ४७ ॥

सनातन—सनातन; **गोसाञि**—एक महान् भक्त; **आसि'**—वहाँ आकर; **ताँहै**—वहाँ वाराणसी में; **मिलिल**—उनसे मिले; **ताँर**—उनकी; **शिक्षा**—शिक्षा; **लागि'**—के कारण; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **दु-मास**—दो मास; **रहिला**—वहाँ रहे।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी बंगाल से आये, तो वे श्री चैतन्य महाप्रभु से तपन मिश्र के ही घर पर मिले थे, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें भक्ति की शिक्षा देने के लिए लगातार दो मास तक रहे थे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को गुरु-शिष्य परम्परा में शिक्षा प्रदान की। सनातन गोस्वामी संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे, किन्तु जब तक उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से उपदेश प्राप्त नहीं किया, तब तक उन्होंने वैष्णव आचरण के विषय में कुछ भी नहीं लिखा। उनकी अत्यन्त सुप्रसिद्ध पुस्तक *हरिभक्ति विलास* श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के अनुसार लिखी गई, जिसमें वैष्णवों के लिए निर्देश दिये गये हैं। इस पुस्तक में सनातन गोस्वामी ने निश्चित निर्देश दिया है कि प्रामाणिक गुरु द्वारा समुचित दीक्षा प्राप्त करने से मनुष्य तुरन्त ब्राह्मण बन सकता है। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं:

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रस-विधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

"जिस प्रकार रासायनिक प्रक्रिया द्वारा पारा मिलाने से काँसा सोने में बदल जाता है, उसी प्रकार प्रामाणिक गुरु से भलीभाँति शिक्षा प्राप्त करके तथा दीक्षा लेकर व्यक्ति तुरन्त ब्राह्मण बन सकता है।" कभी-कभी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति इसका विरोध करते हैं, किन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध उनके पास कोई प्रबल तर्क नहीं है। कृष्ण तथा उनके भक्त की कृपा से मनुष्य के जीवन में परिवर्तन हो सकता है। *श्रीमद्भागवत* में *जहाति बन्धम्* तथा *शुद्ध्यन्ति* जैसे शब्दों से

इसकी पुष्टि होती है। *जहाति बन्धम्* बतलाता है कि जीव विशेष प्रकार के शरीर के कारण बद्ध होता है। शरीर निश्चय ही एक बाधा है, किन्तु शुद्ध भक्त की संगति करके तथा उसके उपदेशों पर चलकर इस अवरोध से बचा जा सकता है। मनुष्य भक्त के कड़े मार्गदर्शन में दीक्षित होकर नियमित ब्राह्मण बन सकता है। श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि किस तरह शुद्ध भक्त की संगति से एक अ-ब्राह्मण ब्राह्मण में बदल सकता है। *प्रभविष्णवे नमः*—भगवान् विष्णु इतने शक्तिमान हैं कि वे जो चाहें कर सकते हैं। अतएव भगवान् के शुद्ध भक्त के मार्गदर्शन में रहने वाले भक्त के शरीर को बदलना विष्णु के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है।

তাঁরে শিখাইলা সব বৈষ্ণবের ধর্ম ।
ভাগবত-আদি শাস্ত্রের যত গূঢ় মর্ম ॥ ৪৮॥

তাঁরে শিখাইলা সব বৈষ্ণবের ধর্ম ।
ভাগবত-আদি শাস্ত্রের যত গূঢ় মর্ম ॥ ৪৮॥

তাঁরে—उनको (सनातन गोस्वामी को); **শিখাইলা**—भगवान् ने सिखाया; **সব**—सब; **বৈষ্ণবের**—वैष्णवों का; **ধর্ম**—धर्म; **ভাগবত**—*श्रीमद्भागवत*; **আদি**—शुरू करके; **শাস্ত্রের**—प्रामाणिक शास्त्रों का; **যত**—सब; **গূঢ়**—गूढ़; **মর্ম**—मर्म, रहस्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गूढ़ निर्देशों को प्रकट करने वाले *श्रीमद्भागवत* जैसे शास्त्रों के आधार पर सनातन गोस्वामी को भक्त के सभी नियमित कार्यों के विषय में शिक्षा दी।

तात्पर्य

परम्परा पद्धति में प्रामाणिक गुरु से प्राप्त उपदेशों को प्रामाणिक वैदिक शास्त्रों पर भी आधारित होना चाहिए। जो व्यक्ति परम्परा में आता है, वह मनमाना आचरण नहीं कर सकता। चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव सम्प्रदाय में आने वाले ऐसे अनेक तथाकथित अनुयायी, जो शास्त्रों के प्रमाणों का पालन नहीं करते, वे *अपसम्प्रदाय* माने जाते हैं, जिसका अर्थ है *"सम्प्रदाय से विलग।"* इनमें से कुछ समूह *आउल, बाउल, कर्ताभजा, नेडा, दरवेश, सांइ, सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त, जातगोसांइ, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी* तथा *गौरांग-नागरी*

कहलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा का दृढ़ता से पालन करने वालों को इन अपसम्प्रदायों की संगति नहीं करनी चाहिए।

जिसने प्रामाणिक गुरु से शिक्षा प्राप्त नहीं की, वह वैदिक साहित्य को समझ नहीं सकता। इस बात पर बल देने के लिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते समय स्पष्ट कहा था कि तुम मेरे भक्त तथा अन्तरंग सखा हो, इसीलिए तुम *भगवद्गीता* के रहस्य को समझ सकते हो। अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि जो व्यक्ति प्रामाणिक शास्त्रों के रहस्य को जानना चाहता है, उसे प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए, उससे विनीत भाव से सुनना चाहिए तथा उसकी सेवा करनी चाहिए। तभी शास्त्रों का तात्पर्य समझ में आ सकेगा। वेदों में कहा गया है (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.२३) :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"शास्त्रों का वास्तविक तात्पर्य उसे प्रकट हो पाता है, जो परमात्मा तथा गुरु दोनों में अविचल श्रद्धा रखता है।" श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का उपदेश है—*साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, हृदये करिया ऐक्य*—अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए साधु, शास्त्र तथा गुरु के उपदेशों को माने। न तो साधु (या वैष्णव) न ही प्रामाणिक गुरु ऐसी कोई बात कहता है, जो प्रामाणिक शास्त्रों की परिधि में न हो। इस तरह प्रामाणिक शास्त्रों के वचन प्रामाणिक गुरु तथा साधुओं के वचनों के ही अनुरूप होते हैं। अतएव ज्ञान के इन तीन महत्त्वपूर्ण स्रोतों के अनुसार ही आचरण करना चाहिए।

ইতিমধ্যে চন্দ্রশেখর, মিশ্র-তপন ।
দুঃখী হঞা প্রভু-পায় কৈল নিবেদন ॥৪৯॥

इतिमध्ये चन्द्रशेखर, मिश्र-तपन ।
दुःखी हञा प्रभु-पाय कैल निवेदन ॥४९॥

इति-मध्ये—इस दौरान; **चन्द्रशेखर**—चन्द्रशेखर नामक क्लर्क; **मिश्र-तपन**—और तपन मिश्र; **दुःखी हञा**—अत्यन्त दुःखी होकर; **प्रभु-पाय**—भगवान् के चरणकमलों में; **कैल**—किया; **निवेदन**—एक अनुरोध।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को उपदेश दे रहे थे, तो चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र दोनों ही अत्यन्त दुःखी हुए। अतएव उन्होंने भगवान् के चरणों में एक निवेदन किया।

कतेक शुनिब प्रभु तोमार निन्दन ।
ना पारि सहिते, एबे छाड़िब जीवन ॥५०॥

कतेक शुनिब प्रभु तोमार निन्दन ।
ना पारि सहिते, एबे छाड़िब जीवन ॥५०॥

कतेक—कितना; **शुनिब**—हम सुनेंगे; **प्रभु**—हे प्रभु; **तोमार**—आपकी; **निन्दन**—निन्दा; **ना पारि**—हम समर्थ नहीं हैं; **सहिते**—सहन करने के; **एबे**—अब; **छाड़िब**—त्याग देंगे; **जीवन**—जीवन।

अनुवाद

"हम लोग कब तक आपके आचरण का विरोध करने वाले इन आलोचकों द्वारा की जा रही निन्दा को सहन करें? ऐसी निन्दा सुनने से तो यही अच्छा होगा कि हम अपने प्राण त्याग दें।

तात्पर्य

नियमित वैष्णव आचरण के सम्बन्ध में श्री चैतन्य महाप्रभु का सबसे महत्त्वपूर्ण आदेश यह है कि वैष्णव को वृक्ष के समान सहिष्णु तथा तृण के समान विनीत होना चाहिए।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

"मनुष्य को चाहिए कि अपने आपको रास्ते में पड़ी हुई घास से भी तुच्छ मानकर विनीत भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करे। उसे वृक्ष से भी अधिक सहनशील तथा मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना से रहित होना चाहिए और अन्यों को सम्मान देने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में वह भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।" इतने पर भी, इन आदेशों को देने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगाई तथा माधाई के दुर्व्यवहार

को सहन नहीं किया। जब उन दोनों ने नित्यानन्द प्रभु पर आघात किया, तो वे तुरन्त ही क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने उन दोनों को मार डालना चाहा। केवल नित्यानन्द प्रभु की कृपा के कारण ही वे दोनों बच सके। मनुष्य को अपने निजी आचरण में अत्यन्त विनीत होना चाहिए। वैष्णव को अपमानित होने पर भी सहिष्णु बना रहना चाहिए और क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। किन्तु यदि किसी के गुरु या अन्य वैष्णव की निन्दा हो रही हो, तो उसे क्रोध से आग-बबूला हो जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आचरण द्वारा यह करके दिखलाया था। मनुष्य को किसी वैष्णव की निन्दा के प्रति सहिष्णु नहीं होना चाहिए और इन तीनों में से एक कार्य तुरन्त करना चाहिए। यदि कोई किसी वैष्णव की निन्दा कर रहा है, तो उसे तर्कों से तथा उच्चतर प्रमाण से रोक देना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता, तो उसे वहीं पर अपने प्राण दे देने चाहिए। किन्तु यदि वह ऐसा भी नहीं कर सकता, तो उसे वहाँ से चले जाना चाहिए। जब श्री चैतन्य महाप्रभु बनारस अर्थात् काशी में थे, तो मायावादी संन्यासी यह कहकर अनेक प्रकार से उनकी निन्दा करते थे कि संन्यासी होकर भी वे कीर्तन तथा नृत्य में लगे रहते हैं। तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर ने यह आलोचना सुनी, तो उनके लिए यह असह्य हो गया, क्योंकि वे चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। किन्तु वे इसे रोक नहीं पाये, अतएव उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से निवेदन किया कि अब उनसे यह निन्दा सही नहीं जाती, अतएव उन्होंने अपने प्राण छोड़ने का निश्चय किया है।

তোমারে নিন্দয়ে যত সন্ন্যাসীর গণ ।
শুনিতে না পারি, ফাটে হৃদয়-শ্রবণ ॥৫১॥

তোমারে নিন্দয়ে যত সন্ন্যাসীর গণ ।
শুনিতে না পারি, ফাটে হৃদয়-শ্রবণ ॥৫১॥

তোমারে—आपकी; **নিন্দয়ে**—निन्दाएँ; **যত**—सब; **সন্ন্যাসীর গণ**—मायावादी संन्यासी गण; **শুনিতে**—सुनने के लिए; **না**—नहीं; **পারি**—सहन करना; **ফাটে**—फट जाते हैं; **হৃদয়**—हमारे हृदय; **শ্রবণ**—इस निन्दा को सुनते सुनते।

अनुवाद

"सारे मायावादी संन्यासी आपकी आलोचना कर रहे हैं। हम ऐसी

आलोचना सहन नहीं कर सकते, क्योंकि यह निन्दा हमारे हृदयों को विदीर्ण कर रही है।"

तात्पर्य

यह कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति वास्तविक प्रेम की अभिव्यक्ति है। वैष्णवों की तीन कोटियाँ हैं—*कनिष्ठ अधिकारी, मध्यम अधिकारी* तथा *उत्तम अधिकारी*। कनिष्ठ अधिकारी अर्थात् वैष्णव जीवन की निम्नतम अवस्था में रहने वाले वैष्णव को शास्त्रों में दृढ़ विश्वास होता है, किन्तु वह उनके निष्कर्षों से परिचित नहीं रहता। दूसरे स्तर का भक्त अर्थात् मध्यम अधिकारी शास्त्रों के निष्कर्षों से पूर्णतया परिचित होता है और उसे अपने गुरु तथा भगवान् में अचल श्रद्धा होती है। अतएव वह अभक्तों से बचता है और सरल व्यक्तियों को उपदेश देता है। किन्तु महाभागवत् या उत्तम अधिकारी जो कि भक्ति की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होता है, वह किसी को भी वैष्णव नियमों के विरुद्ध नहीं पाता, क्योंकि वह अपने अतिरिक्त हर एक को वैष्णव मानता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश का सार यही है कि मनुष्य अपने आपको एक वृक्ष से अधिक सहिष्णु समझे और अपने आपको मार्ग में पड़े हुए तिनके से भी तुच्छ माने (*तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना*)। किन्तु भले ही कोई भक्त *उत्तम भावगत* पद को प्राप्त हो, उसे प्रचारक बनने के लिए *मध्यम अधिकारी* के पद तक नीचे उतरना होगा, क्योंकि प्रचारक को अन्य वैष्णव की निन्दा सहन नहीं करनी चाहिए। यद्यपि कनिष्ठ अधिकारी भी ऐसी निन्दा सहन नहीं कर सकता, किन्तु वह ऐसी निन्दा को शास्त्रीय प्रमाणों का उद्धरण देकर रोक पाने में समर्थ नहीं होता। इसीलिए चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र को कनिष्ठ अधिकारी समझना होगा, क्योंकि वे बनारस के संन्यासियों के तर्कों का खण्डन नहीं कर पाये। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से कार्यवाही करने के लिए निवेदन किया, क्योंकि उन्हें लगा कि वे ऐसी आलोचना सहन नहीं कर सकते, भले ही वे इसे रोक नहीं सकते थे।

ইহা শুনি রহে প্রভু ঈষৎ হাসিয়া ।
সেই কালে এক বিপ্র মিলিল আসিয়া ॥৫২॥

इहा शुनि रहे प्रभु ईषत् हासिया ।
सेइ काले एक विप्र मिलिल आसिया ॥५२॥

इहा—यह; **शुनि**—सुनकर; **रहे**—रहे; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **ईषत्**—थोड़ा सा; **हासिया**—हँसकर; **सेइ काले**—उस समय; **एक**—एक; **विप्र**—ब्राह्मण; **मिलिल**—मिला; **आसिया**—वहाँ आकर।

अनुवाद

जब तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें कर रहे थे, तो वे थोड़ा मुसकाये और मौन रहे। उसी समय एक ब्राह्मण उनसे मिलने आया।

तात्पर्य

क्योंकि स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की निन्दा की गई थी, अतएव उन्हें खेद नहीं हुआ और वे हँस रहे थे। यह आदर्श वैष्णव आचरण है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आलोचना सुनकर क्रुद्ध न हो, किन्तु यदि अन्य वैष्णवों की आलोचना हो रही हो, तो उसे पूर्वकथित विधि से कार्यवाही करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर नामक अपने शुद्ध भक्तों पर अतीव कृपालु थे, अतएव उनकी कृपा से वहाँ पर वह ब्राह्मण तुरन्त आया। भगवान् ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता से अपने भक्तों की प्रसन्नता के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी।

আসি' নিবেদন করে চরণে ধরিয়া ।
এক বস্তু মাগোঁ, দেহ প্রসন্ন হইয়া ॥৫৩॥

আসি' নিবেদন করে চরণে ধরিয়া ।
এক বস্তু মাগোঁ, দেহ প্রসন্ন হইয়া ॥৫३॥

আসি'—वहाँ आकर; **निवेदन**—निवेदन; **करे**—किया; **चरणे**—चरणकमलों को; **धरिया**—पकड़कर; **एक**—एक; **वस्तु**—वस्तु; **मागों**—आपसे माँगता हूँ; **देह**—कृपया मुझे दो; **प्रसन्न**—प्रसन्न होकर; **हइया**—होकर।

अनुवाद

वह ब्राह्मण तुरन्त ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर

पड़ा और प्रार्थना करने लगा कि वे प्रसन्न होकर उसके प्रस्ताव को स्वीकार करें।

तात्पर्य

वैदिक आदेश है—*तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेनसेवया*—मनुष्य को अपने गुरुजन के पास विनीत भाव से जाना चाहिए (*भगवद्गीता* ४.३४)। अपने से बड़े गुरुजन को ललकारा नहीं जा सकता, प्रत्युत अत्यन्त विनीत होकर गुरु अथवा वरिष्ठ जनों के समक्ष अपना सुझाव रखा जा सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी आचरण से आदर्श शिक्षक हैं और उन्हीं की तरह उनके सारे शिष्य भी हैं। इस तरह इस ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति से शुद्ध होकर इन सिद्धान्तों का पालन करते हुए उनके समक्ष अपना प्रस्ताव रखा। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और इस तरह बोला।

सकल सन्न्यासी मुञि कैनु निमन्त्रण ।
तुमि यदि आइस, पूर्ण हय मोर मन ॥५४॥

सकल सन्न्यासी मुञि कैनु निमन्त्रण ।
तुमि यदि आइस, पूर्ण हय मोर मन ॥५४॥

सकल—सब; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **मुञि**—मैं; **कैनु**—किया; **निमन्त्रण**—निमंत्रण दिया; **तुमि**—आप; **यदि**—यदि; **आइस**—आयें; **पूर्ण**—पूर्ण; **हय**—हो; **मोर**—मेरा; **मन**—मन।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैंने बनारस के सारे संन्यासियों को अपने घर पर आमन्त्रित किया है। यदि आप मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लें, तो मेरी इच्छा पूर्ण हो जायेगी।

तात्पर्य

यह ब्राह्मण जानता था कि उस समय बनारस में श्री चैतन्य महाप्रभु ही एकमात्र वैष्णव संन्यासी थे और अन्य सभी मायावादी थे। गृहस्थ का यह धर्म है कि वह कभी-कभी संन्यासियों को घर पर भोजन के लिए आमन्त्रित करे।

यह *गृहस्थ-ब्राह्मण* सारे संन्यासियों को अपने घर पर बुलाना चाह रहा था, किन्तु उसे यह भी पता था कि श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए राजी कर पाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वहाँ पर मायावादी संन्यासी भी उपस्थित होंगे। अतएव उसने उनके चरणों पर गिरकर निवेदन किया कि वे दया करके उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लें। इस तरह विनीत होकर उसने अपनी इच्छा प्रकट की।

ना याह सन्न्यासि-गोष्ठी, इहा आमि जानि ।
मोरे अनुग्रह कर निमन्त्रण मानि' ॥५५॥

ना याह सन्न्यासि-गोष्ठी, इहा आमि जानि ।
मोरे अनुग्रह कर निमन्त्रण मानि' ॥५५॥

ना—नहीं; **याह**—आप जाते हो; **सन्न्यासि-गोष्ठी**—मायावादी संन्यासियों की संगति; **इहा**—यह; **आमि**—मैं; **जानि**—जानता हूँ; **मोरे**—मुझे; **अनुग्रह**—कृपा; **कर**—करनी होगी; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण; **मानि'**—स्वीकार करके।

अनुवाद

"हे प्रभु, मैं जानता हूँ कि आप अन्य संन्यासियों से कभी मिलते-जुलते नहीं हैं, किन्तु आप कृपया मुझ पर दयालु हों और मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।"

तात्पर्य

आचार्य अर्थात् वैष्णव मत का महापुरुष सिद्धान्तों का पक्का होता है, किन्तु वह वज्र के समान कठोर होते हुए भी कभी-कभी गुलाब के फूल जैसा कोमल हो जाता है। इस तरह वह वास्तव में स्वतन्त्र होता है। वह समस्त विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करता है, किन्तु कभी-कभी इस नीति में शिथिलता का प्रदर्शन भी करता है। यह सर्वविदित था कि श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी मायावादी संन्यासियों से मिलते नहीं हैं, फिर भी उन्होंने उस ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार कर ली, जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है।

प्रभु हासि' निमन्त्रण कैल अङ्गीकार ।
सन्न्यासीरे कृपा लागि' ए भङ्गी ताँहार ॥५६॥

प्रभु हासि' निमन्त्रण कैल अङ्गीकार ।
सन्न्यासीरे कृपा लागि' ए भङ्गी ताँहार ॥५६॥

प्रभु—प्रभु; **हासि'**—मुस्कराकर; **निमन्त्रण**—निमंत्रण; **कैल**—किया; **अङ्गीकार**—स्वीकार; **सन्न्यासीरे**—मायावादी संन्यासियों को; **कृपा**—उन पर कृपा दिखाने के लिए; **लागि'**—विषय में; **ए**—यह; **भङ्गी**—भाव; **ताँहार**—उनके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसते हुए उस ब्राह्मण का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्होंने मायावादी संन्यासियों पर कृपा प्रदर्शित करने के लिए ही ऐसी चेष्टा की।

तात्पर्य

तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर निवेदन किया कि वे दोनों किस तरह बनारस के संन्यासियों द्वारा महाप्रभु की आलोचना से दुःखी हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँस भर दिया। फिर भी वे अपने भक्तों की इच्छा पूरी करना चाह रहे थे और ऐसा अवसर आ ही गया, जब उस ब्राह्मण ने आकर प्रार्थना की कि वे अन्य संन्यासियों के बीच में उपस्थित होने का उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लें। ऐसा सुयोग भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता द्वारा ही सम्भव हो सका।

সে বিপ্র জানেন প্রভু না যা'ন কা'র ঘরে ।
তাঁহার প্রেরণায় তাঁরে অত্যাগ্রহ করে ॥৫৭॥

से विप्र जानेन प्रभु ना या'न का'र घरे ।
ताँहार प्रेरणाय ताँरे अत्याग्रह करे ॥५७॥

से—वह; **विप्र**—ब्राह्मण; **जानेन**—इसे जानता था; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **ना**—कभी नहीं; **या'न**—जाते हैं; **का'र**—किसी के; **घरे**—घर में; **ताँहार**—उनकी; **प्रेरणाय**—प्रेरणा से; **ताँरे**—उनको; **अत्याग्रह करे**—निमंत्रण स्वीकार करने के लिए बहुत जोर दिया।

अनुवाद

वह ब्राह्मण जानता था कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु कभी किसी अन्य के घर नहीं गये, फिर भी भगवान् से प्रेरित होकर उसने उनसे सच्चे हृदय से प्रार्थना की कि वे उसके इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लें।

আর দিনে গেলা প্রভু সে বিপ্র-ভবনে ।
দেখিলেন, বসিয়াছেন সন্ন্যাসীর গণে ॥৫৮॥

আর দিনে গেলা প্রভু সে বিপ্র-ভবনে ।
দেখিলেন, বসিয়াছেন সন্ন্যাসীর গণে ॥৫৮॥

আর—अगले; **दिने**—दिन; **गेला**—गये; **प्रभु**—महाप्रभु; **से**—वह; **विप्र**—ब्राह्मण; **भवने**—के घर में; **देखिलेन**—उन्होंने देखा; **वसियाछेन**—वहाँ बैठे हुए; **सन्न्यासीर**—सभी संन्यासियों को; **गणे**—समूह में।

अनुवाद

अगले दिन जब भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण के घर गये, तो उन्होंने वहाँ पर बनारस के सारे संन्यासियों को बैठे देखा।

सबा नमस्करि' गेला पाद-प्रक्षालने ।
पाद प्रक्षालन करि बसिला सेई स्थाने ॥५९॥

सबा नमस्करि' गेला पाद-प्रक्षालने ।
पाद प्रक्षालन करि बसिला सेइ स्थाने ॥५९॥

सबा—सबको; **नमस्करि'**—नमस्कार करके; **गेला**—गये; **पाद**—पाँव; **प्रक्षालने**—धोने के लिए; **पाद**—पाँव; **प्रक्षालन**—धोकर; **करि**—करके; **वसिला**—बैठ गये; **सेइ**—उसी; **स्थाने**—स्थान पर।

अनुवाद

ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे संन्यासियों को देखा, त्योंही उन्होंने सबको नमस्कार किया और तब वे अपने पाँव धोने चले गये। पाँव धोने के बाद वे उसी स्थान पर बैठ गये।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों को नमस्कार करके सबके प्रति बड़ी स्पष्टता से अपनी विनयशीलता का परिचय दिया। वैष्णवों को किसी के प्रति अनादर प्रकट नहीं करना चाहिए और संन्यासी के प्रति तो कभी भी नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है—*अमानिना मानदेन*—मनुष्य को चाहिए कि अन्यों का सम्मान करे, किन्तु अन्यों से अपने सम्मान की आशा न करे। संन्यासी को हमेशा नंगे पाँव चलना चाहिए, अतएव जब भी वह किसी मन्दिर या

भक्तों की सभा में प्रवेश करे, तो सर्वप्रथम उसे अपने पाँव धोने चाहिए और फिर समुचित स्थान पर बैठना चाहिए। भारत में अब भी यह प्रथा है कि लोग अपने जूतों को एक नियत स्थान पर रखकर पाँव धोकर नंगे पाँव मन्दिर में प्रवेश करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु आदर्श आचार्य हैं और जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, उन्हें चाहिए कि उनके द्वारा सिखायी भक्ति की विधियों का अभ्यास करें।

বসিয়া করিলা কিছু ঐশ্বর্য প্রকাশ ।
মহাতেজোময় বপু কোটি-সূর্যাভাস ॥৬০॥

वसिया करिला किछु ऐश्वर्य्य प्रकाश ।
महातेजोमय वपु कोटि-सूर्य्याभास ॥६०॥

वसिया—बैठने के पश्चात्; **करिला**—दिखलाई; **किछु**—कुछ; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य, योग शक्ति; **प्रकाश**—प्रकट की; **महा-तेजो-मय**—बहुत तेजमयी; **वपु**—शरीर; **कोटि**—करोड़ों; **सूर्य्य**—सूर्य; **आभास**—चमक।

अनुवाद

भूमि पर बैठने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान तेज प्रकट करके अपनी योग-शक्ति का प्रदर्शन किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के रूप में समस्त शक्तियों से ओतप्रोत हैं। अतएव उनके लिए करोड़ों सूर्यों का प्रकाश प्रकट करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर के रूप में अर्थात् समस्त योगशक्तियों के स्वामी के रूप में जाने जाते हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, अतएव वे कोई भी योगशक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं।

প্রভাবে আকর্ষিল সব সন্ন্যাসীর মন ।
উঠিল সন্ন্যাসী সব ছাড়িয়া আসন ॥৬১॥

प्रभावे आकर्षिल सब सन्न्यासीर मन ।
उठिल सन्न्यासी सब छाड़िया आसन ॥६१॥

प्रभावे—इस ज्योति से; **आकर्षिल**—उन्होंने आकर्षित किया; **सब**—सब; **सन्न्यासीर**—मायावादी संन्यासियों के; **मन**—मन को; **उठिल**—खड़े हो गये; **सन्न्यासी**—सभी मायावादी संन्यासी; **सब**—सब; **छाड़िया**—छोड़कर; **आसन**—आसन।

अनुवाद

जब सारे संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर का तेजोमय प्रकाश देखा, तो उनके चित्त आकृष्ट हो गये। वे सभी तुरन्त अपना आसन छोड़कर सम्मान में खड़े हो गये।

तात्पर्य

सामान्य व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कभी-कभी साधु पुरुष, आचार्य तथा शिक्षक असामान्य ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हैं। मूर्खों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक होता है, किन्तु साधु पुरुष को ऐसी शक्ति का दुरुपयोग निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करना चाहिए, जैसाकि अपने आपको ईश्वर घोषित करने वाले बनावटी साधु करते हैं। एक जादूगर भी ऐसी अद्भुत कुशलता दिखा सकता है, जिन्हें सामान्य लोग न समझ पायें, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि जादूगर ईश्वर है। अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन करके लोगों का ध्यान आकृष्ट करना और फिर इस अवसर का लाभ उठाकर अपने आपको ईश्वर घोषित करना घोर पाप है। एक सच्चा साधु पुरुष कभी भी अपने आपको ईश्वर घोषित नहीं करता, अपितु अपने आपको सदा ईश्वर के दास के रूप में प्रस्तुत करता है। ईश्वर के दास को योगशक्ति प्रदर्शित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न वह ऐसा करना ही चाहता है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का विनीत दास उनकी ओर से अपने कार्य ऐसे अद्भुत ढंग से करता है कि सामान्य व्यक्ति उसकी तरह कार्य करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। फिर भी साधु पुरुष कभी ऐसे कार्यों का श्रेय खुद नहीं लेता, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि जब वह भगवत्कृपा से कोई अद्भुत कार्य करता है, तो उसका श्रेय स्वामी को जाता है, न कि दास को।

प्रकाशानन्द-नामे सर्व सन्न्यासि-प्रधान ।
प्रभुके कहिल किछु करिया सम्मान ॥ ७२॥

प्रकाशानन्द-नामे सर्व सन्न्यासि-प्रधान ।
प्रभुके कहिल किछु करिया सम्मान ॥ ६२ ॥

प्रकाशानन्द—प्रकाशानन्द; **नामे**—नामक; **सर्व**—सभी; **सन्न्यासि-प्रधान**—मायावादी संन्यासियों में मुख्य; **प्रभुके**—महाप्रभु को; **कहिल**—कहा; **किछु**—कुछ; **करिया**—उन्हें दिखाकर; **सम्मान**—सम्मान।

अनुवाद

उन सारे मायावादी संन्यासियों के मुखिया (अग्रणी) का नाम प्रकाशानन्द सरस्वती था। उसने खड़े होकर बड़े ही सम्मान के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु को इस प्रकार सम्बोधित किया।

तात्पर्य

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे मायावादी संन्यासियों को नमस्कार किया था, इसी प्रकार उनके मुखिया प्रकाशानन्द ने भी महाप्रभु के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया।

इहाँ आइस, इहाँ आइस, शुनह श्रीपाद ।
अपवित्र स्थाने वैस, किबा अवसाद ॥ ६३ ॥

इहाँ आइस, इहाँ आइस, शुनह श्रीपाद ।
अपवित्र स्थाने वैस, किबा अवसाद ॥ ६३ ॥

इहाँ आइस—यहाँ आइये; **इहाँ आइस**—यहाँ आइये; **शुनह**—कृपया सुनें; **श्रीपाद**—श्रीपाद, आप; **अपवित्र**—अपवित्र; **स्थाने**—स्थान; **वैस**—आप बैठे हैं; **किबा**—यह क्या है; **अवसाद**—शोक।

अनुवाद

"हे श्रीपाद, कृपया यहाँ आइये। कृपया यहाँ आइये। आप उस अपवित्र स्थान में क्यों बैठे हैं? आप के शोक का कारण क्या है?

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के बीच का अन्तर दिखाया गया है। भौतिक जगत् में हर व्यक्ति अपने आपको महत्त्वपूर्ण और महान् बतलाना चाहता है, किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने तो अत्यन्त विनीत होकर अपना परिचय दिया था। सारे मायावादी उच्च आसन पर बैठे थे और श्री चैतन्य

महाप्रभु ऐसे स्थान पर बैठे, जो स्वच्छ भी नहीं था। अतएव मायावादी संन्यासियों ने सोचा कि शायद वे किसी कारणवश खिन्न हैं, अतएव प्रकाशानन्द सरस्वती ने उनकी खिन्नता का कारण जानना चाहा।

प्रभु कहे,—आमि हइ हीन-सम्प्रदाय ।
तोमा-सबार सभाय वसिते ना युयाय ॥ ६४॥

प्रभु कहे,—आमि हइ हीन-सम्प्रदाय ।
तोमा-सबार सभाय वसिते ना युयाय ॥ ६४॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **आमि**—मैं; **हइ**—हूँ; **हीन-सम्प्रदाय**—निम्न-आध्यात्मिक श्रेणी का; **तोमा-सबार**—आप सब से; **सभाय**—सभा में; **वसिते**—बैठने के लिए; **ना**—कभी नहीं; **युयाय**—मैं हिम्मत कर सकता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं निम्न कोटि का संन्यासी हूँ। अतएव मैं आप लोगों के साथ बैठने के योग्य नहीं हूँ।"

तात्पर्य

मायावादी संन्यासियों को अपने संस्कृत के ज्ञान का और शंकर सम्प्रदाय वाला होने का सदैव बड़ा गर्व रहता है। उनकी यह मान्यता है कि जब तक कोई ब्राह्मण न हो और संस्कृत का अच्छा विद्वान न हो, विशेषतया व्याकरण में, तब तक वह न तो संन्यास आश्रम ग्रहण कर सकता है, न प्रचार-कार्य कर सकता है। मायावादी संन्यासी अपने वाग्जाल तथा व्याकरणिक रचनाओं से समस्त शास्त्रों की गलत व्याख्या करते रहते हैं, फिर भी श्रीपाद शंकराचार्य ने *प्राप्ते सन्निहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृञ करणे* श्लोक में ऐसे वाग्जाल की स्वयं भर्त्सना की है। इसमें *डुकृञ* शब्द संस्कृत के उपसर्ग और प्रत्यय प्रयोग से सम्बन्धित है। शंकराचार्य ने अपने शिष्यों को चेतावनी दी है कि यदि वे व्याकरण के नियमों में ही लगे रहेंगे और गोविन्द की पूजा नहीं करेंगे, तो वे ऐसे मूर्ख सिद्ध होंगे जिनका उद्धार नहीं किया जा सकता। किन्तु श्रीपाद शंकराचार्य के आदेशों के उपरान्त भी, मूर्ख मायावादी संन्यासी संस्कृत व्याकरण पर आधारित वाग्जाल में ही व्यस्त रहते हैं।

मायावादी संन्यासी गर्व से फूले नहीं समाते यदि उनके पास *तीर्थ, आश्रम* तथा *सरस्वती* जैसी उन्नत संन्यास-उपाधियाँ होती हैं। मायावादियों में भी, जो अन्य सम्प्रदाय के होते हैं और अन्य उपाधियाँ धारण करते हैं, जैसे वन, अरण्य या भारती, उन्हें निम्न कोटि के संन्यासी माने जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण किया था, इसलिए वे अपने आपको प्रकाशानन्द सरस्वती की तुलना में निम्न संन्यासी मानते थे। मायावादी सम्प्रदाय के संन्यासी वैष्णव संन्यासियों से अलग रहने के लिए अपने आपको सर्वदा अति उच्च आध्यात्मिक स्तर के मानते हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन्हें विनीत एवं अभिमानरहित बनने की शिक्षा देने के उद्देश्य से अपने आपको निम्न संन्यासी सम्प्रदाय का माना। इस तरह वे यह स्पष्ट रूप से बता देना चाहते थे कि संन्यासी वह है, जो आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत हो। जो आध्यात्मिक ज्ञान में आगे हो, उसे ऐसे ज्ञान से विहीन व्यक्ति की तुलना में श्रेष्ठतर पद पर आसीन मानना चाहिए।

मायावादी सम्प्रदाय के संन्यासी सामान्यतया वेदान्ती कहलाते हैं, मानो वेदान्त पर उनका एकाधिकार हो। किन्तु वस्तुत: वेदान्ती ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो कृष्ण को भलीभाँति जानता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में पुष्टि की गई है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:*—समस्त वेदों के द्वारा कृष्ण ही जानने होते हैं। ये तथाकथित मायावादी वेदान्ती यह नहीं जानते कि कृष्ण हैं कौन; अतएव उनकी यह वेदान्ती उपाधि अर्थात् "वेदान्त दर्शन का जानने वाला" मात्र दम्भ है। मायावादी संन्यासी अपने आपको हमेशा सच्चा संन्यासी मानते हैं और वैष्णव संन्यासियों को ब्रह्मचारी मानते हैं। ऐसी आशा की जाती है कि ब्रह्मचारी संन्यासी की सेवा करे और उसे अपने गुरु के रूप में स्वीकार करे। अतएव मायावादी संन्यासी अपने आपको *गुरु* ही नहीं, अपितु *जगद्गुरु* घोषित करते हैं, यद्यपि वे समस्त विश्व को देख नहीं सकते। कभी-कभी वे भव्य वेशभूषा धारण करते हैं और शोभायात्राओं में हाथी पर चढ़कर चलते हैं। इस तरह वे सदैव गर्वित रहते हैं और अपने आपको जगद्गुरु मानते हैं। किन्तु श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि वस्तुत: *जगद्गुरु* उस व्यक्ति को कहते है, जो अपनी जीभ, मन, वाणी, उदर, जननेन्द्रिय तथा क्रोध पर नियन्त्रण रखे। *पृथिवीं*

स शिष्यात्—ऐसा जगद्गुरु सारे जगत् में शिष्य बनाने के लिए पूरी तरह योग्य होता है। कभी-कभी मिथ्या प्रतिष्ठावश योग्यताओं से रहित मायावादी संन्यासी उन वैष्णव संन्यासियों को तंग करते हैं तथा उनकी निन्दा करते हैं, जो भगवान् की सेवा में विनीत भाव से लगे रहते हैं।

आपने प्रकाशानन्द हातेते धरिया ।
वसाइला सभा-मध्ये सम्मान करिया ॥ ६५ ॥

आपने हातेते धरिया ।
वसाइला सभा-मध्ये सम्मान करिया ॥ ६५ ॥

आपने—शरीर से; **प्रकाशानन्द**—प्रकाशानन्द; **हातेते**—उनके हाथ से; **धरिया**—पकड़कर; **वसाइला**—बैठाया; **सभा-मध्ये**—सबके बीच में, सबके मध्य; **सम्मान**—सम्मानपूर्वक; **करिया**—देकर।

अनुवाद

किन्तु प्रकाशानन्द सरस्वती ने स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु का हाथ पकड़कर बड़े ही सम्मान के साथ उन्हें सभा के मध्य में बैठाया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति प्रकाशानन्द सरस्वती के आदरपूर्ण आचरण की प्रशंसा की जानी चाहिए। ऐसा आचरण *अज्ञात सुकृति* कहलाने योग्य है अर्थात् ऐसा पुण्यकर्म जो अनजाने ही सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़ी ही चतुराई से प्रकाशानन्द सरस्वती को *अज्ञात सुकृति* की ओर अग्रसर होने का सुअवसर प्रदान किया, जिससे वे भविष्य में वास्तव में वैष्णव संन्यासी बन सकें।

पुछिल, तोमार नाम 'श्री-कृष्ण-चैतन्य' ।
केशव-भारतीर शिष्य, ताते तुमि धन्य ॥ ६६ ॥

पुछिल, तोमार नाम 'श्री-कृष्ण-चैतन्य' ।
केशव-भारतीर शिष्य, ताते तुमि धन्य ॥ ६६ ॥

पुछिल—पूछा; **तोमार**—आपका; **नाम**—नाम; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—श्रीकृष्ण चैतन्य;

केशव-भारतीर शिष्य—आप केशव भारती के शिष्य हैं; **ताते**—उस सम्बन्ध में; **तुमि**—आप हैं; **धन्य**—धन्य।

अनुवाद

तब प्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा, "मेरी समझ में आपका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है। आप तो श्री केशव भारती के शिष्य हैं और इसीलिए आप धन्य हैं।

साम्प्रदायिक सन्न्यासी तुमि, रह एइ ग्रामे ।
कि कारणे आमा-सवार ना कर दर्शने ॥ ६७ ॥

साम्प्रदायिक सन्न्यासी तुमि, रह एइ ग्रामे ।
कि कारणे आमा-सबार ना कर दर्शने ॥ ६७ ॥

साम्प्रदायिक—सम्प्रदाय के; **सन्न्यासी**—मायावादी संन्यासी; **तुमि**—आप हैं; **रह**—रहते हैं; **एइ**—इस; **ग्रामे**—वाराणसी में; **कि कारणे**—किस कारण; **आमा-सबार**—हमारे साथ; **ना**—नहीं; **कर**—प्रयास करते; **दर्शने**—मिलने-जुलने का।

अनुवाद

"आप तो हमारे शंकर सम्प्रदाय के हैं और हमारे गाँव वाराणसी में रहते हैं। तो फिर आप हम लोगों का संग क्यों नहीं करते? आप हमसे मिलने से भी क्यों कतराते हैं?

तात्पर्य

एक वैष्णव संन्यासी या आध्यात्मिक ज्ञान की दूसरी अवस्था को प्राप्त वैष्णव (मध्यम अधिकारी) चार सिद्धान्तों को समझ सकता है। ये हैं—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, भक्त, अबोध तथा ईर्ष्यालु और वह इनसे पृथक्-पृथक् आचरण करता है। वह ईश्वर से अपना प्रेम बढ़ाना चाहता है, भक्तों से मित्रता करना चाहता है और अबोध लोगों के बीच कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहता है। किन्तु वह उन द्वेषी एवं ईर्ष्यालुओं से दूर रहता है, जो कृष्णभावनामृत आन्दोलन से ईर्ष्या करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका दृष्टान्त स्वयं प्रस्तुत किया, इसीलिए प्रकाशानन्द सरस्वती ने पूछा कि वे उनसे मिलते-जुलते या बोलते क्यों नहीं। चैतन्य महाप्रभु ने दृष्टान्त प्रस्तुत करके इसकी पुष्टि की कि

कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारक को सामान्यतया मायावादी संन्यासियों से बातें करने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए, किन्तु जब शास्त्र पर आधारित तर्क हों, तो वैष्णव को चाहिए कि वह आगे आकर बात करे और उन्हें दर्शन में परास्त करे।

मायावादी संन्यासियों के अनुसार शंकराचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में संन्यास ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही वैदिक संन्यासी है। कभी-कभी प्रतिवाद किया जाता है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन में प्रचार करने वाले संन्यासी सच्चे संन्यासी नहीं होते, क्योंकि वे ब्राह्मण कुलों के नहीं होते। मायावादी लोग उसे संन्यास नहीं देते, जो जन्मजात ब्राह्मण नहीं होता। किन्तु दुर्भाग्यवश वे यह नहीं जानते कि इस समय हर व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है (*कलौ शूद्र सम्भवः*)। यह जान लेना चाहिए कि इस युग में कोई भी ब्राह्मण नहीं है, क्योंकि जो लोग जन्म मात्र से ब्राह्मण होने का दावा करते हैं, उनमें ब्राह्मणों की योग्यता नहीं पाई जाती। भले ही कोई अब्राह्मण कुल में जन्म क्यों न ले, यदि उसमें ब्राह्मण की योग्यता पाई जाती है, तो उसको ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए, जैसाकि श्रील नारद मुनि तथा महान् सन्त श्रीधर स्वामी ने पुष्टि की है। *श्रीमद्भागवत* में भी इसका उल्लेख हुआ है। नारद तथा श्रीधर स्वामी पूरी तरह मानते हैं कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता, किन्तु उसमें ब्राह्मण के गुण होने आवश्यक है। इस तरह हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में किसी ऐसे व्यक्ति को संन्यास नहीं देते, जिसमें ब्राह्मण के निर्धारित गुण न हों। यद्यपि यह तथ्य है कि जब तक कोई ब्राह्मण न हो, तब तक वह संन्यासी नहीं बन सकता, किन्तु यह सिद्धान्त वैध नहीं है कि ब्राह्मण कुल में जन्मा अयोग्य व्यक्ति ब्राह्मण होता है, जबकि अब्राह्मण परिवार में जन्मा ब्राह्मण गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण न माना जाए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन *श्रीमद्भागवत* के आदेशों का दृढ़ता से पालन करता है और सुने-सुनाए तथा मनगढ़न्त प्रमाणों से बचता है।

सन्न्यासी हइया कर नर्तन-गायन ।
भावुक सब सङ्गे लञा कर सङ्कीर्तन ॥ ६८॥

सन्न्यासी हइया कर नर्तन-गायन ।
भावुक सब सङ्गे लञा कर सङ्कीर्तन ॥ ६८ ॥

सन्न्यासी—संन्यास; **हइया**—स्वीकार करके; **कर**—आप करते हैं; **नर्तन-गायन**—नर्तन एवं गायन; **भावुक**—भावुक व्यक्तियों में; **सब**—सब; **सङ्गे**—आपकी संगति में; **लञा**—उन्हें स्वीकार करके; **कर**—आप करते हैं; **सङ्कीर्तन**—संकीर्तन।

अनुवाद

"आप तो संन्यासी हैं, तो फिर भावुकों के साथ अपने संकीर्तन आन्दोलन में कीर्तन करने और नाचने में क्यों लगे रहते हैं?

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए प्रकाशानन्द सरस्वती की चुनौती है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने *अनुभाष्य* में लिखते हैं कि वेदान्त दर्शन की खोज के लक्ष्य-रूप श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृपा करके यह निश्चित कर दिया है कि वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने का सुपात्र कौन है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने *शिक्षाष्टक* में ऐसे पात्र की प्रथम योग्यता का वर्णन इस प्रकार किया है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

इस कथन से इंगित होता है कि मनुष्य गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से वेदान्त-दर्शन के विषय में सुन या बोल सकता है। उसे अत्यन्त विनीत और दीन होना चाहिए—वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु तथा तिनके से भी अधिक विनीत होना चाहिए। उसे स्वयं के लिए सम्मान की कामना नहीं होनी चाहिए, किन्तु उसे दूसरों को सम्मान देने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। वैदिक ज्ञान को समझने का पात्र बनने के लिए उसमें ये योग्यताएँ होनी चाहिए।

বেদান্ত-পঠন, ধ্যান,—সন্ন্যাসীর ধর্ম ।
তাহা ছাড়ি' কর কেনে ভাবুকের কর্ম ॥ ৬৯ ॥

वेदान्त-पठन, ध्यान,—सन्न्यासीर धर्म ।
ताहा छाड़ि' कर केने भावुकेर कर्म ॥ ६९ ॥

वेदान्त-पठन—वेदान्त दर्शन का पठन; **ध्यान**—ध्यान; **सन्यासीर**—संन्यासी का; **धर्म**—धर्म; **ताहा छाड़ि'**—उन्हें छोड़कर; **कर**—आप करते हैं; **केने**—क्यों; **भावुकेर**—भावुकों के; **कर्म**—कर्म।

अनुवाद

"ध्यान तथा वेदान्त-अध्ययन—ये ही संन्यासी के एकमात्र कर्तव्य हैं। आप इन भावुकों के साथ नाचने के लिए इन कर्तव्यों का त्याग क्यों कर देते हैं?

तात्पर्य

जैसाकि श्लोक ४१ के सन्दर्भ में बतलाया जा चुका है, मायावादी संन्यासी कीर्तन तथा नृत्य करने का अनुमोदन नहीं करते। सार्वभौम भट्टाचार्य की ही भाँति प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु को एक पथभ्रष्ट तरुण संन्यासी मान रखा था, इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि वे संन्यासी का कर्तव्य न निभाकर भावुकों के साथ क्यों संग करते हैं।

प्रभावे देखिये तोमा साक्षात्नारायण ।
हीनाचार कर केने, इथे कि कारण ॥७०॥

प्रभावे देखिये तोमा साक्षात्नारायण ।
हीनाचार कर केने, इथे कि कारण ॥७०॥

प्रभावे—अपने ऐश्वर्य में; **देखिये**—मैं देखता हूँ; **तोमा**—आप; **साक्षात्**—साक्षात्; **नारायण**—भगवान् नारायण; **हीन-आचार**—निम्न कोटि का व्यवहार; **कर**—आप करते हैं; **केने**—क्यों; **इथे**—इसमें; **कि**—क्या है; **कारण**—कारण।

अनुवाद

"आप स्वयं नारायण के समान तेजवान लगते हैं। क्या आप इसका कारण बता सकते हैं कि आपने निम्न वर्ग के लोगों जैसा आचरण क्यों अपना रखा है?"

तात्पर्य

अपने वैराग्य, वेदान्त-अध्ययन, ध्यान तथा दैनिक कठोर विधि-विधान के कारण मायावादी संन्यासी निश्चित रूप से पुण्य कार्य करने में सक्षम होते

हैं। इस तरह प्रकाशानन्द सरस्वती अपनी पुण्यशीलता के कारण यह समझ सके कि चैतन्य महाप्रभु कोई सामान्य व्यक्ति नहीं अपितु साक्षात् भगवान् हैं। *साक्षात् नारायण*—वे उन्हें साक्षात् नारायण मानते थे। मायावादी संन्यासी एक-दूसरे को नारायण कहकर सम्बोधित करते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि वे सभी या तो नारायण होने जा रहे हैं या अगले जन्म में नारायण में लीन हो जायेंगे। प्रकाशानन्द सरस्वती जान गये थे कि चैतन्य महाप्रभु पहले ही नारायण बन चुके हैं और उन्हें अगले जन्म की प्रतीक्षा नहीं करनी है। वैष्णव तथा मायावादी दर्शनों में एक अन्तर यह है कि मायावादी दार्शनिक सोचते हैं कि अपने शरीरों को त्यागने के बाद वे नारायण के शरीर में लीन होकर नारायण बनेंगे, किन्तु वैष्णव दार्शनिक यह समझते हैं कि शरीर की मृत्यु के बाद उन्हें आध्यात्मिक दिव्य शरीर प्राप्त होगा, जिसमें वे नारायण का सान्निध्य प्राप्त कर सकते हैं।

प्रभु कहे—शुन, श्रीपाद, इहार कारण ।
गुरु मोरे मूर्ख देखि' करिल शासन ॥ ७१ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **शुन**—कृपया सुनो; **श्रीपाद**—श्रीपाद; **इहार**—इसका; **कारण**—कारण; **गुरु**—मेरे गुरु ने; **मोरे**—मुझे; **मूर्ख**—मूर्ख; **देखि'**—समझकर; **करिल**—उन्होंने किया; **शासन**—दण्ड दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री प्रकाशानन्द सरस्वती को उत्तर दिया, "मान्यवर, कृपया इसका कारण सुनिये। मेरे गुरुदेव ने मुझे एक मूर्ख समझकर मेरी भर्त्सना की।"

तात्पर्य

जब प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा कि उन्होंने क्यों न तो वेदान्त अध्ययन किया और न ध्यान किया, तो श्री चैतन्य ने अपने आपको पहले दर्जे के मूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया, क्योंकि वे यह सूचित करना चाहते थे कि धूर्तों तथा मूर्खों के इस वर्तमान युग, कलियुग में वेदान्त-दर्शन

का अध्ययन करने तथा ध्यान करने से पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती। शास्त्रों की दृढ़तापूर्ण संस्तुति है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

"इस कलह और दिखावे के युग में उद्धार का एकमात्र साधन है भगवन्नाम का कीर्तन। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। अन्य कोई साधन नहीं है। अन्य कोई साधन नहीं है।" कलियुग में साधारण लोग इतने पतित हो जाते हैं कि उनके लिए केवल *वेदान्त-सूत्र* का अध्ययन करके पूर्णता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए मनुष्य को सच्चे मन से निरन्तर भगवन्नाम कीर्तन करते रहना चाहिए।

मूर्ख तुमि, तोमार नाहिक वेदान्ताधिकार ।
'कृष्ण-मन्त्र' जप सदा,—एई मन्त्र-सार ॥७२॥

मूर्ख तुमि, तोमार नाहिक वेदान्ताधिकार ।
'कृष्ण-मन्त्र' जप सदा,—एइ मन्त्र-सार ॥७२॥

मूर्ख तुमि—तुम मूर्ख हो; **तोमार**—तुम्हारी; **नाहिक**—नहीं हैं; **वेदान्त**—वेदान्त दर्शन; **अधिकार**—योग्यता; **कृष्ण-मन्त्र**—कृष्ण मन्त्र (हरे कृष्ण); **जप**—जप; **सदा**—सदा; **एइ**—यह; **मन्त्र**—मंत्र; **सार**—सारे वैदिक ज्ञान का सार।

अनुवाद

"उन्होंने कहा, 'तुम मूर्ख हो। तुम वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने के योग्य नहीं हो; अतएव तुम्हें चाहिए कि तुम सदैव कृष्ण नाम का जप करो। यह समस्त मन्त्रों या वैदिक स्तोत्रों का सार है।'

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज टीका करते हैं, "यदि कोई अपने गुरु के मुख से सुने गये शब्दों के अनुसार ठीक-ठीक उसी प्रकार कर्म करता है, तो वह अपने जीवन के लक्ष्य में पूरी तरह सफल हो सकता है।" इस प्रकार गुरु के शब्दों को ग्रहण करना *श्रौतवाक्य* कहलाता है, जिससे इंगित होता है कि शिष्य को अविचलित भाव से गुरु के आदेशों का

पालन करना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के वचनों को अपना प्राणाधार माने। यहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु इसकी पुष्टि यह कहकर करते हैं कि चूँकि उनके गुरु ने उन्हें श्रीकृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन का ही आदेश दिया था, इसलिए वे उनके आदेश के अनुसार हरे कृष्ण महामन्त्र का सदैव कीर्तन करते हैं (*'कृष्णमन्त्र' जप सदा—एइ मन्त्र-सार*)।

कृष्ण प्रत्येक वस्तु के स्रोत हैं। अतएव जब कोई व्यक्ति पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होता है, तो यह समझना चाहिए कि कृष्ण के साथ उसका सम्बन्ध पूर्णतया स्वीकृत हो गया है। कृष्णभावनामृत के बिना यह सम्बन्ध अधूरा होता है; अतएव वह अपनी वैधानिक स्थिति में अवस्थित नहीं होता। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं, समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु हैं, फिर भी उन्होंने शिष्य का पद इसलिए स्वीकार किया, जिससे वे आदर्श प्रस्तुत कर सकें कि किस तरह भक्त को अपने गुरु के आदेश का पालन निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए करना चाहिए। जो लोग वेदान्त-दर्शन के अध्ययन के प्रति अत्यधिक उन्मुख हैं, उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस युग में, वास्तव में वेदान्त का अध्ययन करने के लिए कोई भी योग्य नहीं है, इसलिए अच्छा यही होगा कि भगवन्नाम का कीर्तन किया जाए, क्योंकि यही समस्त वैदिक ज्ञान का सार है, जिसकी पुष्टि स्वयं कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१५.१५) में की है :

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्

"सारे वेदों द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ। निस्सन्देह, मैं ही वेदान्त का संकलनकर्ता हूँ और मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।"

जो मूर्ख हैं, वे ही गुरु की सेवा छोड़ देते हैं और अपने आपको आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी मानते हैं। ऐसे मूर्खों को रोकने के लिए ही चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको आदर्श शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया। गुरु भलीभाँति जानता है कि प्रत्येक शिष्य को किस तरह किसी विशेष कार्य में लगाया जाए, किन्तु यदि शिष्य अपने आपको गुरु से अधिक बुद्धिमान माने और उसके

आदेश को न मानकर स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करे, तो वह अपने हाथों अपनी आध्यात्मिक प्रगति को रोक देता है। हर शिष्य को अपने आपको कृष्ण-विज्ञान में पूर्णतया अनजान मानना चाहिए और कृष्णभावनामृत में दक्ष होने के लिए गुरु के आदेशों का पालन करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। शिष्य को अपने गुरु के समक्ष मूर्ख बने रहना चाहिए। इसीलिए कभी-कभी कुछ छद्म-अध्यात्मवादी ऐसा गुरु बनाते हैं, जो शिष्य होने के भी योग्य नहीं होता, क्योंकि वे उसे अपने वश में रखना चाहते हैं। आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए यह निरर्थक है।

जो कृष्णभावनामृत को अपूर्ण रीति से जानता है, वह वेदान्त-दर्शन नहीं जान सकता। कृष्णभावनामृत के बिना वेदान्त-अध्ययन का दिखावा बहिरंगा शक्ति *माया* का लक्षण है और जब तक कोई भी व्यक्ति इस नित्य परिवर्तनशील भौतिक शक्ति की मदोन्मत्तता से आकृष्ट होता रहता है, तब तक वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति से पथभ्रष्ट होता रहता है। वेदान्त-दर्शन का वास्तविक अनुयायी समग्र ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता एवं महान् से भी महानतम भगवान् विष्णु का भक्त होता है। जब तक मनुष्य सीमित की सेवा के कार्यक्षेत्र से ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक वह असीम के पास नहीं पहुँच सकता। असीम का ज्ञान ही वास्तविक *ब्रह्मज्ञान* अर्थात् सर्वोपरि का ज्ञान है। जो लोग सकाम कर्म तथा तार्किक ज्ञान के प्रति आकृष्ट हैं, वे भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के महत्त्व को नहीं जान सकते, जो पूर्णतया शुद्ध है, नित्य मुक्त है और आनन्दमय है। जिसने भगवान् से अभिन्न भगवन्नाम की शरण ले ली है, उसे वेदान्त-दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि वह पहले ही ऐसा अध्ययन पूरा कर चुका होता है।

जो व्यक्ति कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए अयोग्य है, किन्तु जो कृष्ण के नाम को कृष्ण से भिन्न मानकर कृष्ण को समझने के लिए वेदान्त अध्ययन करता है, वह प्रथम श्रेणी का मूर्ख है, जिसकी पुष्टि चैतन्य महाप्रभु ने निजी आचरण द्वारा की है। जो दार्शनिक चिन्तक वेदान्त-दर्शन को अपनी आजीविका बनाना चाहते हैं, वे भी माया के प्रभाव के ही अन्तर्गत माने जाते हैं। जो व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन सदा करता रहता

है, वह पहले से भवसागर पार कर चुका होता है, अतएव निम्न कुल में जन्मा व्यक्ति भी यदि भगवन्नाम का कीर्तन करता है, तो उसे वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करने की आवश्यकता से परे समझा जाता है। इस सन्दर्भ में *श्रीमद्भागवत* (३.३३.७) का कथन है :

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

"यदि चंडाल कुल में जन्मा व्यक्ति कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, तो यह समझना चाहिए कि उसने अपने पूर्वजन्म में सभी तरह की तपस्याएँ सम्पन्न कर ली होंगी और सारे वैदिक यज्ञ सम्पन्न कर लिए होंगे।" एक अन्य उद्धरण है :

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

"जो व्यक्ति *ह* तथा *रि* इन दो अक्षरों का उच्चारण करता है, समझ लो कि उसने चारों वेद—साम, ऋक्, यजुः तथा अथर्व—पढ़ लिए हैं।"

इन श्लोकों का लाभ उठाने वाले कुछ *सहजिया,* जो हर बात को सस्ती समझते हैं, अपने आपको उच्च वैष्णव समझते हैं, किन्तु *वेदान्त-सूत्र* या वेदान्त-दर्शन का स्पर्श तक नहीं करते। किन्तु एक सच्चे वैष्णव को वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करना चाहिए, किन्तु यदि वेदान्त-दर्शन का अध्ययन कर लेने के बाद वह भगवन्नाम का कीर्तन नहीं करता, तो वह मायावादी से अधिक अच्छा नहीं है। अतएव किसी को मायावादी नहीं होना चाहिए, फिर भी उसे वेदान्त-दर्शन के विषय से अनजान भी नहीं रहना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रकाशानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करते समय अपने वेदान्त ज्ञान का परिचय दिया था। अतएव यह समझना होगा कि एक वैष्णव को वेदान्त-दर्शन में पूर्णतया दक्ष होना चाहिए, किन्तु उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वेदान्त अध्ययन ही सर्वस्व है, फलतः पवित्र भगवन्नाम के जप से विरत रहा जाए। भक्त को एक ही साथ *वेदान्त-दर्शन* के ज्ञान की और नाम-कीर्तन की महत्ता

जाननी चाहिए। यदि कोई वेदान्त का अध्ययन करके मायावादी बन जाता है, तो समझ लो कि उसने वेदान्त को नहीं समझा। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में की गई है। *वेदान्त* का अर्थ है, "ज्ञान का अन्त।" ज्ञान का चरम अन्त कृष्ण का ज्ञान है, जो अपने नाम से अभिन्न हैं। सस्ते वैष्णव (*सहजिया*) वेदान्त-अध्ययन की परवाह नहीं करते, जिसकी चारों आचार्यों ने टीका की है। गौड़ीय सम्प्रदाय में वेदान्त का भाष्य मिलता है, जो *गोविन्द भाष्य* कहलाता है, किन्तु सहजिये ऐसे भाष्यों को अस्पृश्य दार्शनिक चिंतन मानते हैं और आचार्यों को मिश्र भक्त मानते हैं। इस तरह वे नरक जाने के लिए अपना रास्ता साफ कर देते हैं।

কৃষ্ণ-মন্ত্র হৈতে হবে সংসার-মোচন ।
কৃষ্ণ-নাম হৈতে পাবে কৃষ্ণের চরণ ॥৭৩॥

কৃষ্ণ-মন্ত্র হৈতে হবে সংসার-মোচন ।
কৃষ্ণ-নাম হৈতে পাবে কৃষ্ণের চরণ ॥৭৩॥

कृष्ण-मन्त्र—हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन; **हैते**—से; **हबे**—यह होगा; **संसार**—भौतिक संसार; **मोचन**—मोचन, उद्धार; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण के पावन नाम; **हैते**—से; **पाबे**—मिलेंगे; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **चरण**—चरणकमल।

अनुवाद

"कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन मात्र से मनुष्य को भौतिक संसार से छुटकारा मिल सकता है। निस्सन्देह, केवल हरे-कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने से उसे भगवान् के चरणकमलों के दर्शन हो सकते हैं।

तात्पर्य

अपने *अनुभाष्य* में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी कहते हैं कि मनुष्य को दिव्य ज्ञान प्राप्त होते ही जो प्रभाव देखने को मिलता है, वह यह है कि वह माया के बन्धन से तुरन्त छूट जाता है और भगवान् की सेवा में पूर्णतया लग जाता है। जब तक मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द की सेवा नहीं करता, तब तक वह बहिरंगा शक्ति के अधीन किए जा रहे सकाम कर्मों से मुक्त नहीं हो सकता। किन्तु जब कोई निरपराध भाव से भगवन्नाम का जप करता

है, तो वह दिव्य पद प्राप्त कर सकता है, जो जीवन की भौतिक अवधारणा से सर्वथा मुक्त होता है। भगवान् की सेवा करते हुए भक्त भगवान् के साथ पाँच सम्बन्धों में से किसी एक के द्वारा सम्बन्धित होता है। ये हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य; और इस सम्बन्ध में वह दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है। ऐसा सम्बन्ध शरीर तथा मन से परे होता है। जब मनुष्य को यह अनुभूति हो जाती है कि भगवान् का पवित्र नाम भगवान् से अभिन्न है, तो वह पवित्र भगवन्नाम का जप-कीर्तन करने का पूर्ण पात्र बन जाता है। ऐसे भावमय कीर्तन करने वाले और नाचने वाले का भगवान् से सीधा सम्बन्ध है, ऐसा समझना चाहिए।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार आध्यात्मिक विकास के तीन चरण हैं—*सम्बन्ध ज्ञान, अभिधेय* तथा *प्रयोजन। सम्बन्ध ज्ञान* पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने मूल सम्बन्ध को स्थापित करने का सूचक है, *अभिधेय* उस वैधानिक सम्बन्ध के अनुसार कर्म करने का सूचक है तथा *प्रयोजन* जीवन का चरम लक्ष्य है, जिसमें भगवत्प्रेम का विकास होता है (*प्रेमा पुमर्थो महान्*)। यदि मनुष्य गुरु के आदेशानुसार विधि-विधानों पर अटल रहता है, तो उसे अपना जीवन-लक्ष्य सरलता से प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन के प्रति आसक्त है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करने का अवसर आसानी से मिल जाता है। उसे उस व्याकरण के शब्दजाल में पड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती, जिसमें मायावादी संन्यासी सामान्यतया लिप्त रहते हैं। श्री शंकराचार्य ने भी इसी बात पर बल दिया है—*न हि न हि रक्षति डुकृञ्-करणे*—"मात्र व्याकरण के प्रत्यय और उपसर्ग के जाल में पड़े रहने से मनुष्य अपने आपको मृत्यु के पाश से बचा नहीं सकता।" व्याकरण का शब्दजाल रचने वाले लोग उस भक्त को मोहग्रस्त नहीं कर सकते, जो हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में लगा रहता है। भगवान् की शक्ति को *हरे* और स्वयं भगवान् को *कृष्ण* के रूप में सम्बोधित करने से भगवान् शीघ्र ही भक्त के हृदय में स्थित हो जाते हैं। इस तरह राधा तथा कृष्ण को सम्बोधित करने से मनुष्य भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करता है। जब वह भगवान् तथा उनकी शक्ति को हरे कृष्ण मन्त्र के द्वारा सम्बोधित करता है, तो सारे प्रामाणिक शास्त्रों एवं सारे ज्ञान

का सार विद्यमान रहता है, क्योंकि यह दिव्य ध्वनि बद्धजीव को पूरी तरह मुक्त करके उसे सीधे भगवान् की सेवा में लगा देती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको महामूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया, फिर भी उनका दृढ़ विश्वास था कि उन्होंने अपने गुरु से जो कुछ भी सुना था, वह *श्रीमद्भागवत* (१.७.६) में व्यासदेव द्वारा कहे गये सिद्धान्तों के अनुसार था।

अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्ति योगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥

"जीव के वे भौतिक दु:ख जो उसके लिए आवश्यक नहीं हैं, भक्ति की विधि द्वारा दूर किये जा सकते हैं। किन्तु अधिकांश लोग इसे नहीं जानते, इसीलिए विद्वान व्यासदेव ने इस परम सत्य विषयक वैदिक साहित्य (*श्रीमद्भागवत*) का संकलन किया।" *भक्ति योग* का अभ्यास करने से मनुष्य सारी गलत धारणाओं से एवं भौतिक जगत् की उलझनों से बच सकता है, अतएव व्यासदेव ने श्री नारद के आदेशानुसार अत्यन्त कृपा का प्रदर्शन करते हुए *श्रीमद्भागवत* प्रदान किया, जिससे बद्धजीव माया के बन्धन से छुटकारा पा सकें। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ने उन्हें आदेश दिया कि मनुष्य को नियमित रूप से समीक्षा करते हुए *श्रीमद्भागवत* पढ़ना चाहिए, जिससे वह धीरे-धीरे हरे-कृष्ण-महामन्त्र के कीर्तन में अनुरक्त हो सके।

भगवान् का पवित्र नाम तथा भगवान् अभिन्न हैं। जो मनुष्य माया के बन्धन से पूर्णरूपेण मुक्त होता है, वह इस तथ्य को समझ सकता है। यह ज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त होता है और इसके कारण मनुष्य सर्वोपरि दिव्य पद को प्राप्त होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको मूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया, क्योंकि अपने गुरु की शरण में जाने के पूर्व वे यह नहीं जानते थे कि केवल कीर्तन करने से सारे भौतिक क्लेशों से छुटकारा मिल सकता है। किन्तु ज्योंही वे अपने गुरु के आज्ञाकारी दास बन गये और उनके उपदेशों का पालन करने लगे, त्योंही उन्हें तुरन्त ही मुक्ति का मार्ग दिख गया। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किया जाने वाला हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन समस्त अपराधों से रहित समझा जाना चाहिए। भगवन्नाम के प्रति दस अपराधों की सूची इस प्रकार है : (१) भगवान् के भक्त की निन्दा करना, (२) भगवान् तथा देवताओं को समान

स्तर का मानना या यह सोचना कि ईश्वर अनेक हैं, (३) गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना, (४) शास्त्रों (वेदों) के प्रमाण की उपेक्षा करना, (५) भगवान् के पवित्र नाम का मनमाना अर्थ निकालना, (६) नाम जप के बल पर पाप करना, (७) श्रद्धाविहीन को भगवन्नाम की महिमा का उपदेश देना, (८) भौतिक पुण्यकर्म से भगवन्नाम के जप की तुलना करना, (९) भगवन्नाम का जप करते समय सतर्क न रहना तथा (१०) भगवन्नाम जप करने पर भी भौतिक आसक्ति बनाए रखना।

नाम विनु कलि-काले नाहि आर धर्म ।
सर्व-मन्त्र-सार नाम, एइ शास्त्र-मर्म ॥७४॥

नाम विनु कलि-काले नाहि आर धर्म ।
सर्व-मन्त्र-सार नाम, एइ शास्त्र-मर्म ॥७४॥

नाम—पावन नाम; **विनु**—बिना; **कलि-काले**—इस कलियुग में; **नाहि**—नहीं है; **आर**—अन्य पर्याय; **धर्म**—धर्म; **सर्व**—सब; **मन्त्र**—मंत्र; **सार**—सार; **नाम**—पवित्र नाम; **एइ**—यह है; **शास्त्र**—प्रामाणिक शास्त्र का; **मर्म**—मर्म, रहस्य।

अनुवाद

'"इस कलियुग में भगवन्नाम के कीर्तन से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है, क्योंकि यह समस्त वैदिक स्तोत्रों का सार है। यही सारे शास्त्रों का तात्पर्य है।'

तात्पर्य

सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग में गुरु-शिष्य परम्परा पद्धति के नियमों का कड़ाई से सम्मान होता था, किन्तु वर्तमान युग अर्थात् कलियुग में लोग इस *श्रौत परम्परा* अर्थात् गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के महत्त्व की उपेक्षा करते हैं। इस युग में लोग यह तर्क करते हैं कि वे अपने सीमित ज्ञान तथा अनुभूति से परे जो कुछ हैं, उसे विज्ञान के तथाकथित अवलोकन तथा प्रयोगों के माध्यम से समझ सकते हैं; वे यह नहीं जानते कि वास्तविक सत्य तो मनुष्य को अधिकारी व्यक्तियों से प्राप्त होता है। यह तर्क करने की प्रवृत्ति वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है और जो ऐसा करता है, उसके लिए यह

समझ पाना अत्यन्त कठिन होता है कि कृष्ण का पवित्र नाम स्वयं कृष्ण जितना ही अच्छा है। चूँकि कृष्ण एवं उनका नाम अभिन्न हैं, अतएव पवित्र नाम शाश्वत रूप से शुद्ध तथा भौतिक कल्मष से रहित होता है। यह दिव्य ध्वनि के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही है। पवित्र नाम भौतिक ध्वनि से सर्वथा भिन्न है, जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा पुष्टि की गई है : *गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम सङ्कीर्तन*—हरिनाम संकीर्तन की दिव्य ध्वनि वैकुण्ठ से प्राप्त हुई है। इस तरह भले ही प्रायोगिक ज्ञान एवं तथाकथित "वैज्ञानिक विधि" में आसक्त रहने वाले भौतिकतावादी हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन में श्रद्धा न रखें, किन्तु सच्चाई यह है कि हरे कृष्ण महामन्त्र के अपराधरहित कीर्तन मात्र से मनुष्य सारी सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक दशाओं से मुक्त हो सकता है। दिव्य लोक वैकुण्ठ कहलाता है। *वैकुण्ठ* का अर्थ है "चिन्तामुक्त।" भौतिक जगत् में हर वस्तु चिन्ता (*कुण्ठा*) से भरी है, जबकि आध्यात्मिक जगत् (*वैकुण्ठ*) में हर वस्तु चिन्ता से मुक्त है। अतएव जो विभिन्न चिन्ताओं से ग्रस्त हैं, वे सब चिन्ताओं से मुक्त हरे कृष्ण मन्त्र को नहीं समझ सकते। वर्तमान युग में हरे कृष्ण महामन्त्र की ध्वनि ही एकमात्र विधि है, जो भौतिक कल्मष से परे दिव्य स्थिति में है। पवित्र नाम बद्धजीव का उद्धार कर सकता है, इसलिए यहाँ पर इसे *सर्व-मन्त्र-सार* अर्थात् वैदिक स्तोत्रों का सार कहा गया है।

ऐसा नाम जो इस भौतिक जगत् की किसी वस्तु का निर्देश करता है, वह तर्क तथा प्रयोगात्मक ज्ञान का विषय बन सकता है, किन्तु परम जगत् में नाम तथा नामी, यश तथा यशस्वी अभिन्न हैं। इसी तरह परम से सम्बन्धित गुण, लीलाएँ और अन्य सब कुछ भी परम होता है। यद्यपि मायावादी अद्वैतवाद को मानते हैं, किन्तु वे भगवान् के नाम तथा स्वयं भगवान् में भेद करते हैं। इस *नामापराध* के कारण वे क्रमशः ब्रह्मज्ञान के अपने उच्च पद से पतित हो जाते हैं, जिसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) में की गई है।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मद् अङ्घ्रयः

यद्यपि वे कठिन तपस्या करके *ब्रह्मज्ञान* के उच्च पद को प्राप्त करते हैं, किन्तु परम सत्य का अपूर्ण ज्ञान होने के कारण वे पतित हो जाते हैं। यद्यपि

वे *सर्वं खल्विदं ब्रह्म* (छान्दोग्य उपनिषद् ३.१४.१)—हर वस्तु ब्रह्म है—इस वैदिक मन्त्र को मानते हैं, किन्तु वे यह नहीं समझ पाते कि पवित्र नाम भी ब्रह्म है। यदि वे महामन्त्र का नियमित जप करें, तो वे इस भ्रान्ति से मुक्त हो सकते हैं। पवित्र नाम की सुयोग्य रीति से शरण लिए बिना कोई भी व्यक्ति पवित्र नाम के कीर्तन की अपराधी अवस्था से मुक्त नहीं हो सकता।

এত বলি' এক শ্লোক শিখাইল মোরে ।
কণ্ঠে করি' এই শ্লোক করিহ বিচারে ॥৭৫॥

एत बलि' एक श्लोक शिखाइल मोरे ।
कण्ठे करि' एइ श्लोक करिह विचारे ॥७५॥

एत बलि'—यह कहकर; **एक श्लोक**—एक श्लोक; **शिखाइल**—सिखाया; **मोरे**—मुझे; **कण्ठे**—कण्ठस्थ में; **करि'**—रखकर; **एइ**—यह; **श्लोक**—श्लोक; **करिह**—आप को करना चाहिए; **विचारे**—विचार।

अनुवाद

"हरे कृष्ण महामन्त्र की शक्ति का वर्णन करने के बाद मेरे गुरु ने मुझे दूसरा श्लोक सिखाया और मुझे यह उपदेश दिया कि मैं इसे सदैव अपने कण्ठ के भीतर रखूँ।

হরের্নাম হরের্নাম হরের্নামৈব কেবলম্ ।
কলৌ নাস্ত্যেব নাস্ত্যেব নাস্ত্যেব গতিরন্যথা ॥৭৬॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥७६॥

हरेः नाम—भगवान् का पावन नाम; **हरेः नाम**—भगवान् का पावन नाम; **हरेः नाम**—भगवान् का पावन नाम; **एव**—निश्चित रूप से; **केवलम्**—केवल; **कलौ**—इस कलियुग में; **न अस्ति**—नहीं है; **एव**—निश्चित रूप से; **न अस्ति**—नहीं है; **एव**—निश्चित रूप से; **न अस्ति**—नहीं है; **एव**—निश्चित रूप के; **गतिः**—गति; **अन्यथा**—इसके अलावा।

अनुवाद

"'इस कलियुग में आध्यात्मिक उन्नति के लिए हरिनाम, हरिनाम,

हरिनाम के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है, अन्य कोई विकल्प नहीं है, अन्य कोई विकल्प नहीं है।'

तात्पर्य

आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के लिए शास्त्रों की संस्तुति है कि सत्ययुग में ध्यान, त्रेतायुग में भगवान् विष्णु के लिए यज्ञ तथा द्वापर युग में मन्दिर में भगवान् की विशद पूजा की जानी चाहिए, किन्तु कलियुग में एकमात्र भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा ही आध्यात्मिक प्रगति की जा सकती है। इसकी पुष्टि अनेक शास्त्रों में की गई है। *श्रीमद्भागवत* में इस विषय में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। बारहवें स्कन्ध (३.५१) में कहा गया है कि :

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति हि एको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥

कलियुग में अनेक दोष हैं, क्योंकि लोगों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है, फिर भी इस युग को एक विशेष वर प्राप्त है—वह यह है कि हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन मात्र से मनुष्य सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो सकता है और इस तरह आध्यात्मिक जगत् को प्राप्त कर सकता है। नारद पञ्चरात्र में भी हरे कृष्ण महामन्त्र की प्रशंसा इस प्रकार की गई है :

त्रयो वेदाः षडङ्गानि छन्दांसि विविधाः सुराः
सर्वमष्टाक्षरान्तःस्थं यच्चान्यदपि वाङ्मयम्
सर्ववेदान्तसारार्थः संसारार्णवतारणः॥

"तीन प्रकार के वैदिक कृत्य (कर्म काण्ड, ज्ञान काण्ड और उपासना काण्ड), छन्द अर्थात् वैदिक स्तोत्र तथा देवताओं को प्रसन्न करने की विधियाँ—यह समस्त वैदिक ज्ञान का सार हरे कृष्ण हरे कृष्ण इन आठ अक्षरों में निहित है। यही सारे वेदान्त की वास्तविकता है। अज्ञान के सागर को पार करने का एकमात्र साधन पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन है।" इसी प्रकार *कलिसन्तरण उपनिषद्* का कथन है—"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—ये सोलह नाम जो बत्तीस अक्षरों से बने हैं, कलियुग के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए एकमात्र साधन हैं। सारे वेदों में यही देखा जाता है कि अज्ञान के सागर को पार करने के लिए पवित्र भगवन्नाम

के कीर्तन करने के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है।" इसी प्रकार *मुण्डक उपनिषद्* की टीका करते हुए श्री मध्वाचार्य ने *नारायण संहिता* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥

"द्वापर युग में कृष्ण या विष्णु केवल पञ्चरात्रिकी विधि से भव्य पूजा द्वारा प्रसन्न किये जा सकते हैं, किन्तु कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि केवल पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा पूजे जा सकते हैं और प्रसन्न किये जा सकते हैं।" श्रील जीव गोस्वामी *भक्ति-सन्दर्भ* (श्लोक २८४) में पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन के विषय में निम्न प्रकार से जोरदार संस्तुति करते हैं :

ननु भगवन्नामात्मका एव मन्त्राः, तत्र विशेषेण नमः शब्दाद्यलङ्कृताः श्रीभगवता श्रीमद्ऋषिभिश्चाहितशक्तिविशेषाः, श्रीभगवता समम् आत्मसम्बन्ध विशेषप्रतिपादकाश्च तत्र केवलानि श्री भगवन्नामान्यपि निरपेक्षाण्येव परम पुरुषार्थफलपर्यन्तदानसमर्थानि ततो मन्त्रेषु नामतोऽप्यधिकसामर्थ्ये लब्धे कथं दीक्षाद्यपेक्षा उच्यते—यद्यपि स्वरूपतो नास्ति, तथापि प्रायः स्वभावतो देहादिसम्बन्धेन कदर्यशीलानां विक्षिप्तचित्तानां जनानां तत्सङ्कोचीकरणाय श्रीमद्ऋषिप्रभृतिभिरत्रार्चनमार्गे क्वचित् क्वचित् काचित् काचिन् मर्यादा स्थापितास्ति।

श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि सारे वैदिक मन्त्रों का सार है—भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन। प्रत्येक मन्त्र *नम ॐ* उपसर्ग से प्रारम्भ होता है और अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम को सम्बोधित करता है। भगवान् की परम इच्छा से नारद तथा अन्य ऋषियों द्वारा उच्चारित प्रत्येक मन्त्र में विशेष शक्ति होती है। पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन से परमेश्वर के साथ जीव का दिव्य सम्बन्ध तुरन्त जागृत हो उठता है।

भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए किसी साज-सामग्री की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से जुड़ने के फलस्वरूप सारे वांछित फल तुरन्त प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जो पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करता है, उसे दीक्षा लेने या भक्ति के

अन्य कार्य करने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यह सच है कि पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन में सदैव लगे रहने वाले को किसी प्रकार की दीक्षा की आवश्यकता नहीं है, किन्तु सामान्यतया यह देखा जाता है कि भक्त अपने पूर्वजन्म के भौतिक कल्मष के कारण अनेक गलत भौतिक आदतों के प्रति आसक्त रहता है। इन सारे कल्मषों से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि वह मन्दिर में भगवान् की पूजा में लगे। बद्ध जीवन के कल्मष के कारण उत्पन्न चंचलता को कम करने के लिए मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा आवश्यक है। इस तरह नारद ने अपनी *पाञ्चरात्रिकी-विधि* में तथा अन्य ऋषियों ने कभी-कभी इस बात पर बल दिया है कि प्रत्येक बद्धजीव में इन्द्रिय-भोग के कारण जो देहात्म बुद्धि है, उस इन्द्रिय-भोग को नियन्त्रित करने के लिए मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा के विधि-विधान होने आवश्यक हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि मुक्तात्माओं द्वारा पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन किया जा सकता है, किन्तु जितने जीवों को हमें दीक्षा देनी पड़ती है, लगभग वे सभी बद्ध होते हैं। अत: यह सलाह दी जाती है कि अपराधरहित होकर तथा विधि-विधानों के अनुसार, पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन किया जाए; फिर भी लोग अपनी विगत बुरी आदतों के कारण इन नियमों का पालन नहीं करते। इसलिए साथ-साथ अर्चाविग्रह की पूजा के विधि-विधानों की आवश्यकता है।

এই আজ্ঞা পাঞা নাম লই অনুক্ষণ ।
নাম লৈতে লৈতে মোর ভ্রান্ত হৈল মন ॥৭৭॥

एइ आज्ञा पाञा नाम लइ अनुक्षण ।
नाम लैते लैते मोर भ्रान्त हैल मन ॥७७॥

एइ—यह; **आज्ञा**—आज्ञा; **पाञा**—पाकर; **नाम**—पवित्र नाम; **लइ**—जप करता हूँ; **अनुक्षण**—सदा; **नाम**—पावन नाम; **लैते**—स्वीकार करके; **लैते**—स्वीकार करके; **मोर**—मेरी; **भ्रान्त**—भ्रान्ति; **हैल**—हो रही; **मन**—मन में।

अनुवाद

"चूँकि मुझे अपने गुरु से यह आदेश मिला है, अतएव मैं पवित्र नाम

का सदैव जप करता हूँ। किन्तु मैं सोचता हूँ कि पवित्र नाम का बार बार जप-कीर्तन करते करते मैं मोहग्रस्त हो गया हूँ।

धैर्य धरिते नारि, हैलाम उन्मत्त ।
हासि, कान्दि, नाचि, गाइ, यैछे मदमत्त ॥७८॥
धैर्य्य धरिते नारि, हैलाम उन्मत्त ।
हासि, कान्दि, नाचि, गाइ, य्रैछे मदमत्त ॥७८॥

धैर्य्य—धैर्य; **धरिते**—धरकर; **नारि**—लेने में अक्षम; **हैलाम**—मैं हो गया हूँ; **उन्मत्त**—उन्मत्त; **हासि**—हँसता हूँ; **कान्दि**—रोता हूँ; **नाचि**—नृत्य करता हूँ; **गाइ**—गाता हूँ; **य्रैछे**—इतना जितना कि; **मदमत्त**—पागल पुरुष।

अनुवाद

"शुद्ध भावावेश में भगवन्नाम का कीर्तन करते हुए मैं अपने आपको भूल जाता हूँ। इस प्रकार मैं पागल की तरह हँसता, रोता, नाचता और गाता हूँ।

तबे धैर्य धरि' मने करिलुँ विचार ।
कृष्ण-नामे ज्ञानाच्छन्न हइल आमार ॥७९॥
तबे धैर्य्य धरि' मने करिलुँ विचार ।
कृष्ण-नामे ज्ञानाच्छन्न हइल आमार ॥७९॥

तबे—उसके पश्चात्; **धैर्य्य**—धैर्य; **धरि'**—धरकर; **मने**—मन में; **करिलुँ**—मैंने किया; **विचार**—विचार; **कृष्ण-नामे**—कृष्ण के पावन नाम का; **ज्ञान आच्छन्न**—अपने ज्ञान को ढक लिया; **हइल**—हो गया है; **आमार**—मेरा।

अनुवाद

"इसलिए धैर्य धारण करके मैं सोचने लगा कि कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन ने मेरे समस्त आध्यात्मिक ज्ञान को आच्छादित कर लिया है।

तात्पर्य

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु यह इंगित करते हैं कि कृष्ण के पवित्र नाम-कीर्तन के लिए मनुष्य को भगवत्-ज्ञान के दार्शनिक पक्षों के विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह स्वतः भावाविष्ट हो

उठता है और बिना सोचे-विचारे तुरन्त ही पागल मनुष्य की तरह कीर्तन करने, नाचने, हँसने, रोने तथा गाने लगता है।

পাগল হইলাঁ আমি, ধৈর্য নাহি মনে ।
এত চিন্তি' নিবেদিলুঁ গুরুর চরণে ॥৮০॥

पागल हइलाँ आमि, धैर्य्य नाहि मने ।
एत चिन्ति' निवेदिलुँ गुरुर चरणे ॥८०॥

पागल—पागल व्यक्ति; **हइलाँ**—मैं हो गया हूँ; **आमि**—मैं; **धैर्य्य**—धैर्य; **नाहि**—नहीं; **मने**—मन में; **एत**—इस प्रकार; **चिन्ति'**—सोचकर; **निवेदिलुँ**—सौंप दिया; **गुरुर**—गुरु के; **चरणे**—चरणकमलों में।

अनुवाद

"मैंने देखा कि पवित्र नाम का कीर्तन करने से मैं पागल हो गया हूँ, तो मैंने तुरन्त ही अपने गुरु के चरणकमलों में निवेदन किया।

तात्पर्य

आदर्श शिक्षक के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु हमें रास्ता दिखलाते हैं कि शिष्य को अपने गुरु के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए। जब भी उसे किसी बात में सन्देह हो, उसे स्पष्टीकरण के लिए अपने गुरु के पास जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने बतलाया कि कीर्तन करते और नाचते हुए उन्हें भावोन्माद सा सवार हो गया, जो केवल मुक्तात्मा के लिए ही सम्भव है। वे मुक्तावस्था में भी सन्देह उठने पर अपने गुरु के पास जाते और उन्हें हर बात बताते थे। इसलिए किसी भी अवस्था में, यहाँ तक कि मुक्त होने पर भी, हमें चाहिए कि अपने आपको गुरु से स्वतन्त्र न मानें, अपितु ज्योंही आध्यात्मिक जीवन की प्रगति विषयक कोई सन्देह उठे, हमें तुरन्त गुरु को बतलाना चाहिए।

কিবা মন্ত্র দিলা, গোসাঞি, কিবা তার বল ।
জপিতে জপিতে মন্ত্র করিল পাগল ॥৮১॥

किबा मन्त्र दिला, गोसाञि, किबा तार बल ।
जपिते जपिते मन्त्र करिल पागल ॥८१॥

किबा—किस प्रकार का; **मन्त्र**—मंत्र; **दिला**—आपने दिया है; **गोसाञि**—मेरे स्वामी; **किबा**—क्या है; **तार**—इसकी; **बल**—शक्ति; **जपिते**—जपने से; **जपिते**—जपने से; **मन्त्र**—मंत्र; **करिल**—मुझे किया है; **पागल**—पागल।

अनुवाद

"हे प्रभु, आपने मुझे कैसा मन्त्र दिया है? मैं तो इस महामन्त्र का कीर्तन करने मात्र से पागल हो गया हूँ!

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने *शिक्षाष्टक* में प्रार्थना करते हैं :

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे॥

"हे गोविन्द! आपके विरह की अनुभूति करते हुए मुझे एक क्षण भी बारह वर्ष या उससे अधिक लगता है। मेरी आँखों से आँसुओं की धारा अविरत वर्षाधारा के समान प्रवाहित होती है और आपकी अनुपस्थिति में मैं इस जगत् में शून्य ही शून्य अनुभव करता हूँ।" भक्त की यही आकांक्षा होती है कि जब वह हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करे, तो उसके नेत्र सजल हों, उसकी वाणी रुद्ध हो जाए और उसका हृदय धड़कने लगे। भगवन्नाम का कीर्तन करने के ये शुभ लक्षण हैं। भाव-दशा में मनुष्य को गोविन्द की उपस्थिति के बिना सारा जगत् शून्य लगना चाहिए। यह गोविन्द के विरह का लक्षण है। भौतिक जीवन में हम सभी गोविन्द से विलग रहकर भौतिक इन्द्रियतृप्ति में मग्न रहते हैं। इसलिए आध्यात्मिक स्तर पर जब मनुष्य को होश आता है, तो वह गोविन्द से मिलने के लिए इतना आतुर हो उठता है कि उसे गोविन्द के बिना सारा जगत् शून्य लगने लगता है।

हासाय, नाचाय, मोरे कराय क्रन्दन ।
एत शुनि' गुरु हासि बलिला वचन ॥ ८२॥

हासाय, नाचाय, मोरे कराय क्रन्दन ।
एत शुनि' गुरु हासि बलिला वचन ॥ ८२॥

हासाय—मुझे हँसाता है; **नाचाय**—मुझे नचाता है; **मोरे**—मुझे; **कराय**—यह कराता है;

क्रन्दन—रुलाता; **एत**—इस प्रकार; **शुनि'**—सुनकर; **गुरु**—मेरे गुरु; **हासि**—हँसते हुए; **बलिला**—बोले; **वचन**—शब्द।

अनुवाद

"'भाववश पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करने से मैं नाचने, हँसने और रोने लगता हूँ।' जब मेरे गुरु ने यह सब सुना, तो वे हँसने लगे और मुझसे बोले।

तात्पर्य

जब शिष्य आध्यात्मिक जीवन में ठीक से प्रगति करता है, तो इससे गुरु को प्रसन्नता होती है और वह भी यह सोचकर भाववश हँसता है कि "मेरा शिष्य कितना सफल हो चुका है!" वह इतना प्रसन्न होता है कि वह अपने शिष्य की उन्नति से आनन्द अनुभव करके हँसने लगता है, जिस प्रकार कि मुस्कराते हुए माता-पिता अपने छोटे से बालक के खड़े होने या घुटने के बल चलने के प्रयास को देखकर आनन्दित होते हैं।

कृष्ण-नाम-महा-मन्त्रेर एइ त' स्वभाव ।
येइ जपे, तार कृष्णे उपजये भाव ॥ ८३॥

कृष्ण-नाम-महा-मन्त्रेर एइ त' स्वभाव ।
येइ जपे, तार कृष्णे उपजये भाव ॥ ८३॥

कृष्ण-नाम—कृष्ण का पावन नाम; **महा-मन्त्रेर**—महामंत्र का; **एइ त'**—यह है इसका; **स्वभाव**—स्वभाव; **येइ**—कोई; **जपे**—जपता है; **तार**—उसका; **कृष्णे**—कृष्ण में; **उपजये**—विकसित होता है; **भाव**—भाव।

अनुवाद

"'यह हरे कृष्ण महामन्त्र का स्वभाव है कि जो भी इसका कीर्तन करता है, उसमें तुरन्त ही कृष्ण के लिए प्रेमपूर्ण भाव उत्पन्न हो जाता है।

तात्पर्य

इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि जो कोई हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करता है, उसमें 'भाव' विकसित हो जाता है, जो ऐसा बिन्दु है जहाँ से अनुभूति प्रारम्भ होने लगती है। यह भगवान् के लिए मौलिक प्रेम विकसित करने की

प्रारम्भिक अवस्था है। भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* (१०.८) में इस भाव अवस्था के बारे में कहते हैं :

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

"मैं समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ। सभी वस्तुएँ मुझ से ही प्रकट होती हैं। बुद्धिमान लोग इसे भलीभाँति जानकर मेरी भक्ति में लगते हैं और पूरे मनोयोग से मेरी पूजा करते हैं।" नवशिक्षित शिष्य श्रवण, कीर्तन, भक्तों की संगति तथा विधि-विधानों के अभ्यास से शुभारम्भ करता है और इस तरह अपनी सारी अनावश्यक बुरी आदतों को नष्ट कर देता है। इस प्रकार वह कृष्ण के प्रति अनुरक्ति का विकास कर लेता है और वह कृष्ण को क्षण-भर के लिए भी नहीं भुला पाता। *भाव* को एक तरह से आध्यात्मिक जीवन की सफल अवस्था मानना चाहिए।

निष्ठावान जिज्ञासु अपने गुरु से भगवन्नाम को श्रवण द्वारा प्राप्त करता है और दीक्षा प्राप्त कर लेने के बाद वह गुरु द्वारा बताये गये नियमों का पालन करता है। इस प्रकार जब भगवन्नाम की समुचित सेवा की जाती है, तो फिर भगवन्नाम की आध्यात्मिक प्रकृति स्वतः विस्तारित होती है। दूसरे शब्दों में, भक्त पवित्र नाम का अपराधरहित जप करने की योग्यता प्राप्त करता है। जब इस तरह वह भगवन्नाम का जप करने का पूर्ण रूप से पात्र बन जाता है, तो वह संसार-भर में शिष्य बनाने के लिए योग्य बनता है और सचमुच *जगद्गुरु* बन जाता है। तब उसके प्रभाव में आकर सारा विश्व हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लग जाता है। इस तरह ऐसे गुरु के सारे शिष्यों में कृष्ण के प्रति अनुरक्ति बढ़ जाती है, फलतः वह कभी रोता है, तो कभी हँसता है, कभी नाचता है, तो कभी कीर्तन करता है। ये लक्षण शुद्ध भक्त के शरीर में बहुत ही स्पष्ट दिखते हैं। कभी-कभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन के हमारे अनुयायी जब कीर्तन करते और नाचते हैं, तो भारत में भी लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि इन विदेशियों ने किस तरह इस भाव दशा में कीर्तन करना और नाचना सीख लिया है। किन्तु जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने बतलाया है, यह अभ्यास से नहीं होता, क्योंकि जो भी हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन निष्ठा से

करता है, उस में ये लक्षण बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के प्रकट होते हैं।

हरे कृष्ण महामन्त्र की दिव्य प्रकृति को न जानने वाले अनेक मूर्ख लोग कभी-कभी हमें इस मन्त्र का ऊँचे स्वर से कीर्तन करने से रोकते हैं, किन्तु जो हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन सम्पन्न करने में वास्तव में उन्नत है, वह दूसरों को भी कीर्तन करने के लिए प्रेरित करता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी बतलाते हैं—*कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन*—भगवान् कृष्ण से विशेष शक्ति पाये बिना कोई हरे कृष्ण महामन्त्र की महिमा का प्रचार नहीं कर सकता। जैसे जैसे भक्त हरे कृष्ण मन्त्र का प्रचार करते हैं, वैसे वैसे सारे विश्व की जनता पवित्र नाम की महिमा को समझने का अवसर प्राप्त करती है। कीर्तन करते, नाचते अथवा भगवन्नाम का श्रवण करते समय मनुष्य को स्वतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण होता है और चूँकि पवित्र नाम तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है, अतएव कीर्तन करने वाला तुरन्त ही कृष्ण से जुड़ जाता है। इस प्रकार जुड़ने पर भक्त भगवान् के प्रति सेवा की अपनी मूल प्रवृत्ति को विकसित कर लेता है। निरन्तर कृष्ण की सेवा करने की इस प्रवृत्ति में, जिसे *भाव* कहते हैं, वह अनेक प्रकार से सदैव कृष्ण के विषय में सोचता है। जो इस *भाव* दशा को प्राप्त कर लेता है, वह माया के बन्धन में नहीं रहता। जब भक्त में इस भाव-अवस्था के साथ कम्पन, स्वेद, अश्रु आदि जुड़ जाते हैं, तब भक्त को क्रमशः कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो जाता है।

कृष्ण का पवित्र नाम *महामन्त्र* कहलाता है। नारद पञ्चरात्र में वर्णित अन्य मन्त्र केवल *मन्त्र* हैं, किन्तु भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन *महामन्त्र* कहलाता है।

कृष्ण-विषयक प्रेमा—परम पुरुषार्थ ।
यार आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ ॥ ८४॥

कृष्ण-विषयक प्रेमा—परम पुरुषार्थ ।
यार आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ ॥ ८४॥

कृष्ण-विषयक—कृष्ण के विषय में; **प्रेमा**—प्रेम; **परम**—परम; **पुरुष-अर्थ**—जीवन के ध्येय को पाना; **यार**—जिनका; **आगे**—सामने; **तृण-तुल्य**—सड़क पर तृण के समान; **चारि**—चार; **पुरुष-अर्थ**—पुरुषार्थ।

अनुवाद

"'धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये जीवन के चार पुरुषार्थ के रूप में जाने जाते हैं, किन्तु भगवत्प्रेम के समक्ष, जो कि पाँचवाँ तथा सर्वोच्च पुरुषार्थ है, ये चारों पुरुषार्थ मार्ग में पड़े तृण के समान तुच्छ प्रतीत होते हैं।

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जैसी भौतिक प्रगतियों की कामना नहीं करनी चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि जीवन की सर्वोच्च सिद्धि कृष्ण-प्रेम विकसित करना है (*प्रेमा पुमार्थो महान् श्रीचैतन्यमहाप्रभोर् मतम् इदम्*)। जब हम भगवत्प्रेम की तुलना धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से करते हैं, तो हम यह समझ सकते हैं कि ये उपलब्धियाँ *बुभुक्षुओं* अर्थात् भौतिक जगत् का भोग करने के इच्छुकों या *मुमुक्षुओं* अर्थात् भौतिक जगत् से मोक्ष पाने के इच्छुकों के लिए अति वांछनीय उपलब्धियाँ हो सकती हैं, किन्तु ये उस शुद्ध भक्त के लिए अति नगण्य हैं, जिसने भगवत्प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था *भाव* विकसित कर ली है।

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये भौतिक जगत् के धर्म के चार सिद्धान्त हैं। अतएव *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में घोषणा की गई है—*धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र*—इन चारों भौतिक सिद्धान्तों के रूप में ठगने वाली धार्मिक प्रणालियों का *श्रीमद्भागवत* में पूर्णतया बहिष्कार किया गया है, क्योंकि *श्रीमद्भागवत* केवल यही सिखाता है कि सुप्त भगवत्प्रेम को किस प्रकार विकसित किया जाए। *भगवद्गीता श्रीमद्भागवत* का प्रारम्भिक अध्ययन है; इसीलिए उसका अन्त इन शब्दों के साथ होता है—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—"समस्त प्रकार के धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ।" (*भगवद्गीता* १८.६६) इस साधन को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के सारे विचारों का परित्याग कर देना चाहिए और जो इन चारों से परे है, ऐसे भगवान् की सेवा में पूरी तरह लग जाना चाहिए। भगवत्प्रेम आत्मा का मूल कार्य है और यह आत्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ही तरह शाश्वत होता है। यह शाश्वतता *सनातन* कहलाती है। जब भक्त पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपनी प्रेममयी सेवा को पुनरुज्जीवित कर लेता है, तो यह समझना चाहिए कि उसे वांछित जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता मिल चुकी है। उस समय हर काम पवित्र नाम की कृपा से स्वत: सम्पन्न हो जाता है और भक्त की आध्यात्मिक उन्नति स्वत: होने लगती है।

पञ्चम पुरुषार्थ—प्रेमानन्दामृत-सिन्धु ।
मोक्षादि आनन्द यार नहे एक बिन्दु ॥ ८५ ॥

पञ्चम—पाँचवाँ; **पुरुष-अर्थ**—पुरुषार्थ, जीवन का ध्येय; **प्रेम-आनन्द**—भगवत् प्रेम का दिव्य आनन्द; **अमृत**—शाश्वत; **सिन्धु**—सागर; **मोक्ष-आदि**—मोक्ष आदि धर्म के सिद्धान्त; **आनन्द**—उनसे प्राप्त आनन्द; **यार**—जिनका; **नहे**—कभी नहीं तुलनीय; **एक**—एक; **बिन्दु**—बिन्दु।

अनुवाद

"'जिस भक्त में भाव का सचमुच विकास हो चुका होता है, उसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से प्राप्त होने वाला आनन्द समुद्र की तुलना में एक बूँद जैसा लगता है।

कृष्ण-नामेर फल—'प्रेमा', सर्व-शास्त्रे कय ।
भाग्ये सेइ प्रेमा तोमाय करिल उदय ॥ ८६ ॥

कृष्ण-नामेर—भगवान् के पावन नाम का; **फल**—फल, परिणाम; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **सर्व**—सब; **शास्त्रे**—शास्त्र; **कय**—वर्णन करते हैं; **भाग्ये**—सौभाग्यवश; **सेइ**—वह; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **तोमाय**—तुमने; **करिल**—किया है; **उदय**—उदय हुआ।

अनुवाद

"'सभी प्रामाणिक शास्त्रों का यह निर्णय है कि मनुष्य को अपना सुप्त भगवत्प्रेम जागृत करना चाहिए। तुमने पहले से ऐसा कर लिया है, इसलिए तुम अतीव भाग्यशाली हो।

প্রেমার স্বভাবে করে চিত্ত-তনু ক্ষোভ ।
কৃষ্ণের চরণ-প্রাপ্ত্যে উপজায় লোভ ॥ ৮৭ ॥

प्रेमार स्वभावे करे चित्त-तनु क्षोभ ।
कृष्णेर चरण-प्राप्त्ये उपजाय लोभ ॥ ८७ ॥

प्रेमार—भगवत् प्रेम से; **स्वभावे**—स्वभाव से; **करे**—यह उत्पन्न करता है; **चित्त**—चेतना; **तनु**—शरीर; **क्षोभ**—उत्तेजित; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **चरण**—चरणकमल; **प्राप्त्ये**—प्राप्त करने के लिए; **उपजाय**—हो जाता है; **लोभ**—लोभ।

अनुवाद

"'भगवत्प्रेम की यह विशेषता है कि स्वभाववश यह मनुष्य के शरीर में दिव्य लक्षण उत्पन्न करता है और उसे भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक लोभी बना देता है।

প্রেমার স্বভাবে ভক্ত হাসে, কান্দে, গায় ।
উন্মত্ত হইয়া নাচে, ইতি-উতি ধায় ॥ ৮৮ ॥

प्रेमार स्वभावे भक्त हासे, कान्दे, गाय ।
उन्मत्त हइया नाचे, इति-उति धाय ॥ ८८ ॥

प्रेमार—ऐसे भगवत्प्रेम से; **स्वभावे**—स्वभाव से; **भक्त**—भक्त; **हासे**—हँसता है; **कान्दे**—रोता है; **गाय**—गाता है; **उन्मत्त**—उन्मत्त; **हइया**—होकर; **नाचे**—नाचता है; **इति**—यहाँ; **उति**—वहाँ; **धाय**—दौड़ता है।

अनुवाद

"'जब मनुष्य में सचमुच भगवत्प्रेम उत्पन्न हो जाता है, तो वह स्वभावतः कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी गाता है और कभी पागल की तरह इधर-उधर दौड़ता फिरता है।

तात्पर्य

इसके सम्बन्ध में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी कहते हैं कि कभी-कभी ऐसे लोग भावपूर्ण शारीरिक लक्षण प्रदर्शित करते हैं, जिनमें भगवत्प्रेम लेशमात्र भी नहीं होता। वे कभी-कभी बनावटी ढंग से पागलों की तरह हँसते, रोते तथा नाचते हैं, किन्तु इससे कृष्णभावनामृत में उन्नति करने में कोई सहायता नहीं मिलती। बल्कि मनुष्य को चाहिए कि जब स्वाभाविक रूप से आवश्यक

शारीरिक लक्षण उत्पन्न होने लगें, तो इस प्रकार के शरीर के बनावटी लक्षणों को बन्द कर दे। वास्तविक आध्यात्मिक हँसी, रोदन तथा नृत्य द्वारा प्रकट होने वाला वास्तविक आनन्दमय जीवन कृष्णभावनामृत में वास्तविक प्रगति के लक्षण हैं। ये लक्षण उस व्यक्ति को प्राप्त हो सकते हैं, जो भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में स्वत: लगा रहता है। यदि कोई विकसित हुए बिना कृत्रिम ढंग से ऐसे लक्षणों की नकल करता है, तो वह मानव-जीवन के आध्यात्मिक जीवन में उत्पात खड़ा कर देता है।

स्वेद, कम्प, रोमाञ्चाश्रु, गदगद, वैवर्ण्य ।
उन्माद, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष, दैन्य ॥८९॥
एत भावे प्रेमा भक्तगणेरे नाचाय ।
कृष्णेर आनन्दामृत-सागरे भासाय ॥९०॥

स्वेद, कम्प, रोमाञ्चाश्रु, गद्‌गद, वैवर्ण्य ।
उन्माद, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष, दैन्य ॥८९॥
एत भावे प्रेमा भक्तगणेरे नाचाय ।
कृष्णेर आनन्दामृत-सागरे भासाय ॥९०॥

स्वेद—पसीना; **कम्प**—कंपन; **रोमाञ्च**—रोमांच; **अश्रु**—अश्रु; **गद्‌गद**—गद्‌गद् होना; **वैवर्ण्य**—शरीर का रंग बदलना; **उन्माद**—उन्माद; **विषाद**—विषाद; **धैर्य**—धैर्य; **गर्व**—अभिमान, गर्व; **हर्ष**—हर्ष; **दैन्य**—विनम्रता; **एत**—बहुत प्रकार से; **भावे**—भाव में; **प्रेमा**—ईश-प्रेम; **भक्त-गणेरे**—भक्तों को; **नाचाय**—नचाता है; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **आनन्द**—दिव्य आनन्द; **अमृत**—अमृत; **सागरे**—सागर में; **भासाय**—तैरता है।

अनुवाद

"'पसीना, कँपकँपी, रोओं का खड़ा होना, आँसू, वाणी का अवरोध, पीला पड़ना, पागलपन, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष तथा दीनता—ये भगवत्प्रेम के विविध प्राकृतिक लक्षण हैं, जो भक्त को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन करते समय दिव्य आनन्द के सागर में नचाते और तैराते हैं।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी अपने ग्रंथ *प्रीतिसन्दर्भ* (श्लोक ६६) में भगवत्प्रेम की इस अवस्था का वर्णन करते हैं—*भगवत्प्रीति रूपा वृत्तिर्मायादिमयी न*

भवति, किम् तर्हि, स्वरूपशक्त्यानन्दरूपा, यदानन्दपराधीनः श्रीभगवान् अपीति। इसी प्रकार ६९वें श्लोक में वे और आगे व्याख्या करते हैं— *तदेवं प्रीतेर्लक्षणं चित्तद्रवस्तस्य च रोमहर्षादिकम्। कथञ्चिज्जातेऽपि चित्तद्रवे रोमहर्षादिके वा न चेदाशयशुद्धिस्तदापि न भक्तेः सम्यग् आविर्भाव इति ज्ञापितम्। आशयशुद्धिर्नाम चान्यतात्पर्य परित्यागः प्रीतितात्पर्यं च। अतएवानिमित्ता स्वाभाविकी चेति तद्विशेषणम्।* दिव्य भगवत्प्रेम भौतिक शक्ति के अन्तर्गत नहीं आता, क्योंकि यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य आनन्द और ह्लादिनी शक्ति है। चूँकि भगवान् दिव्य आनन्द के वशीभूत हैं, अतएव जब किसी को ऐसे भगवत्प्रेम के आनन्द का स्पर्श होता है, तो उसका हृदय द्रवित हो उठता है और शरीर में रोमांच आदि लक्षण प्रकट हो आते हैं। कभी-कभी व्यक्ति में हृदय द्रवित होने तथा रोमांच आदि दिव्य लक्षण तो देखे जाते हैं, किन्तु उसका आचरण आदर्श नहीं होता। इससे पता चलता है कि उसे अभी भक्तिमय जीवन की पूर्णता प्राप्त नहीं हो पाई। दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति भाववश नाचता है, किन्तु नाचने और रोने के बाद भौतिक व्यापारों के प्रति आकृष्ट होता दिखता है, उसे भक्ति की वह पूर्णता नहीं प्राप्त हुई है, जिसे *आशय-शुद्धि* कहते हैं। जिसे आशय-शुद्धि प्राप्त हो जाती है, वह भौतिक भोग से पूर्णतया विरक्त हो जाता है और दिव्य भगवत्प्रेम में डूब जाता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि *आशय-शुद्धि* के लक्षण तभी प्रकट होते हैं, जब भक्त की सेवा का कोई भौतिक कारण नहीं होता और वह नितान्त आध्यात्मिक होती है। *श्रीमद्भागवत* (१.२.६) में भगवत्प्रेम के यही लक्षण बतलाये गये हैं :

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

"वह धर्म सर्वश्रेष्ठ है, जो अपने अनुयायियों को भगवत्प्रेम में भावमय बना देता है और जो निष्काम तथा भौतिक बाधाओं से मुक्त होता है, क्योंकि केवल इसीसे आत्मा पूरी तरह प्रसन्न हो सकता है।"

भाल हैल, पाइले तुमि परम-पुरुषार्थ ।
तोमार प्रेमेते आमि हैलाँ कृतार्थ ॥९१॥

भाल हैल, पाइले तुमि परम-पुरुषार्थ ।
तोमार प्रेमेते आमि हैलाँ कृतार्थ ॥ ९१ ॥

भाल हैल—अच्छा हो; **पाइले**—पाया है; **तुमि**—तुमने; **परम-पुरुषार्थ**—जीवन का सर्वोत्तम ध्येय; **तोमार**—तुम्हारे; **प्रेमेते**—भगवत्प्रेम के विकास से; **आमि**—मैं; **हैलाँ**—होता हूँ; **कृत-अर्थ**—कृतार्थ।

अनुवाद

"'हे पुत्र, यह तो अच्छा हुआ कि तुमने भगवत्प्रेम विकसित करके जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। इस तरह तुमने मुझे अत्यधिक प्रसन्न कर लिया है और मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

तात्पर्य

प्रामाणिक शास्त्रों के अनुसार यदि कोई गुरु किसी एक व्यक्ति को भी शुद्ध भक्त बना लेता है, तो उसका जीवन-उद्देश्य पूरा हो जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर सर्वदा कहा करते थे, "मेरे पास जितनी सम्पत्ति, मन्दिर तथा मठ हैं, यदि उन्हें देकर मैं एक भी व्यक्ति को शुद्ध भक्त बना सकूँ, तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा।" किन्तु कृष्ण-विज्ञान को समझना बहुत कठिन है और भगवत्प्रेम विकसित करना तो और भी कठिन है। अत: यदि श्री चैतन्य महाप्रभु एवं गुरु की कृपा से किसी शिष्य को शुद्ध भक्ति का पद प्राप्त हो सके, तो गुरु अत्यधिक प्रसन्न होता है। यदि शिष्य गुरु के लिए धन लाता है, तो वह उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना यह देखकर कि उसका शिष्य नियमों का पालन कर रहा है और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर रहा है। गुरु ऐसे उन्नत शिष्य से अत्यन्त प्रसन्न होता है और उससे कृतार्थता का अनुभव करता है।

নাচ, গাও, ভক্ত-সঙ্গে কর সঙ্কীর্তন ।
কৃষ্ণ-নাম উপদেশি' তার' সর্ব-জন ॥৯২॥

নাচ, গাও, ভক্ত-সঙ্গে কর সঙ্কীর্তন ।
কৃষ্ণ-নাম উপদেশি' তার' সর্ব-জন ॥ ৯২ ॥

নাচ—नाचते रहो; **গাও**—गाते रहो; **ভক্ত-সঙ্গে**—भक्तों के संग; **কর**—जारी रखो; **সঙ্কীর্তন**—पावन नाम का संकीर्तन करते रहो; **কৃষ্ণ-নাম**—कृष्ण का पावन नाम; **উপদেশি'**—उपदेश देते हुए; **তার'**—उद्धार करो; **সর্ব-জন**—सभी पतित आत्माओं का।

अनुवाद

"'हे पुत्र, भक्तों के साथ तुम नृत्य और कीर्तन करना चालू रखो। बाहर जाकर कृष्ण नाम-कीर्तन के महत्त्व का प्रचार करो, क्योंकि इस विधि से तुम सारे पतितात्माओं का उद्धार कर सकोगे।'

तात्पर्य

गुरु की दूसरी अभिलाषा यह होती है कि उसके शिष्य न केवल कीर्तन, नृत्य तथा नियमों का पालन करें, अपितु दूसरों का उद्धार करने के लिए संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार भी करें। क्योंकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिष्य न केवल भक्ति में यथासम्भव पक्का बने, अपितु दूसरों के लाभ हेतु उसका प्रचार भी करे। अनन्य भक्तों की दो श्रेणियाँ हैं— *गोष्ठ्यानन्दी* तथा *भजनानन्दी*। *भजनानन्दी* वह है, जो स्वयं भक्ति का अनुशीलन करने से सन्तुष्ट होता है, जबकि *गोष्ठ्यानन्दी* केवल स्वयं पूर्ण बनने से सन्तुष्ट नहीं होता, किन्तु दूसरों को भी भगवन्नाम का लाभ उठाते और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते देखना चाहता है। इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रह्लाद महाराज हैं। जब नृसिंहदेव ने उन्हें वर माँगने को कहा, तो प्रह्लाद महाराज ने कहा :

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-
स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-
माया सुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्॥

"हे प्रभु, न तो मुझे कोई कष्ट है और न ही आपसे मुझे कोई वर चाहिए, क्योंकि मैं आपके पवित्र नाम का कीर्तन करके परम सन्तुष्ट हूँ। यही मेरे लिए पर्याप्त है, क्योंकि जब भी मैं कीर्तन करता हूँ, मैं तुरन्त दिव्य आनन्द के सागर में मग्न हो जाता हूँ। बस आपके प्रेम से विहीन अन्यों को देखकर ही मुझे कष्ट होता है। वे क्षणभंगुर भौतिक सुख के लिए भौतिक कार्यकलापों में सड़ रहे हैं और मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए दिन-रात श्रम करते हुए भगवत्प्रेम में अनुरक्ति न होने से अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। मैं केवल उन्हीं के लिए शोकमग्न हूँ और माया के बन्धन से उनका उद्धार करने के लिए तरह तरह की योजनाएँ बना रहा हूँ।" (*भागवत* ७.९.४३)

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने *अनुभाष्य* में बतलाते हैं, "जो व्यक्ति अपनी निष्ठापूर्ण सेवा से अपने गुरु का ध्यान आकर्षित कर लेता है, वह अपने ही समान कृष्णभावनाभावित भक्तों के साथ नृत्य और कीर्तन करना चाहता है। गुरु ऐसे शिष्य को अधिकार देता है कि वह विश्वभर में पतितात्माओं का उद्धार करे। जो उन्नत भक्त नहीं हैं, वे एकान्त में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना पसन्द करते हैं।" भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार ऐसे कार्य एक प्रकार की ठग-विद्या के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि वे हरिदास ठाकुर जैसे महापुरुषों के कार्यकलापों का नकल करते हैं। मनुष्य को चाहिए कि ऐसे महापुरुषों की नकल करने का प्रयास न करे। बल्कि हर व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में करने का प्रयास करना चाहिए और इस तरह आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाना चाहिए। जो व्यक्ति प्रचार-कार्य में निपुण नहीं है, वह बुरी संगति से बचते हुए एकान्त में कीर्तन कर सकता है, किन्तु जो सचमुच उन्नत है, उसके लिए प्रचार करना तथा भक्ति से विरक्त लोगों से मिलना हानिप्रद नहीं होगा। भक्त अभक्तों को अपनी संगति का अवसर देता है, किन्तु उनके दुराचरण से प्रभावित नहीं होता। इस तरह शुद्ध भक्त के कार्यों से भगवत्प्रेम से विहीन लोग भी एक न एक दिन भगवान् के भक्त बनने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। इसके सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का उपदेश है कि *श्रीमद्भागवत* के *नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः* (१०.३३.३०) श्लोक तथा *भक्तिरसामृत सिन्धु* के निम्नलिखित श्लोक (१.२.२५५) की चर्चा करें :

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

मनुष्य को चाहिए कि वह महापुरुषों के कार्यों की नकल न करे। उसे भौतिक भोग से विरक्त रहकर कृष्ण की सेवा से सम्बन्धित हर वस्तु को स्वीकार करना चाहिए।

এত বলি' এক শ্লোক শিখাইল মোরে ।
ভাগবতের সার এই——বলে বারে বারে ॥৯৩॥

एत बलि' एक श्लोक शिखाइल मोरे ।
भागवतेर सार एइ—बले वारे वारे ॥ ९३ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **एक**—एक; **श्लोक**—श्लोक; **शिखाइल**—सिखाया है; **मोरे**—मुझे; **भागवतेर**—*श्रीमद्भागवत* का; **सार**—सार; **एइ**—यह है; **बले**—उन्होंने वहा; **वारे वारे**—बारम्बर।

अनुवाद

"यह कहकर मेरे गुरु ने मुझे *श्रीमद्भागवत* का एक श्लोक सिखलाया। यह सम्पूर्ण भागवत की शिक्षाओं का सार है; अतएव उन्होंने मुझे इस श्लोक को बारम्बार सुनाया।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का यह श्लोक (११.२.४०) वसुदेव को भागवत धर्म सिखलाने के लिए नारद मुनि ने कहा था। वसुदेव को तो भागवत धर्म का फल पहले से मिल चुका था, क्योंकि भगवान् कृष्ण उनके घर में पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। फिर भी दूसरों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने श्री नारद मुनि से भागवत् धर्म की प्रक्रिया को समझने के लिए फिर सुनने की इच्छा प्रकट की। यह महान् भक्त की विनम्रता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्
उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ ९४ ॥

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्
उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ ९४ ॥

एवम्-व्रतः—जब व्यक्ति कीर्तन करने और नृत्य करने के व्रत में इस तरह व्यस्त हो जाता है; **स्व**—अपना; **प्रिय**—प्रिय; **नाम**—पावन नाम; **कीर्त्या**—जपने से; **जात**—इस प्रकार विकसित करता है; **अनुरागः**—अनुराग, आसक्ति; **द्रुत-चित्तः**—अत्यन्त उत्सुकता से; **उच्चैः**—ऊँची आवाज में; **हसति**—हँसता है; **अथो**—भी; **रोदिति**—रोता है; **रौति**—उत्तेजित

हो जाता है; **गायति**—कीर्तन करता है; **उन्माद-वत्**—पागल की भाँति; **नृत्यति**—नृत्य करता है; **लोक-बाह्यः**—दूसरों की परवाह न करते हुए।

अनुवाद

"'जब कोई व्यक्ति वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के नाम का कीर्तन करने में रुचि लेता है, तो वह विक्षुब्ध हो उठता है और ऊँचे स्वर से पवित्र नाम का कीर्तन करने लगता है। वह हँसता भी है और रोता भी है और पागल की तरह दूसरों की परवाह न करते हुए कीर्तन भी करता है।'

এই তাঁর বাক্যে আমি দৃঢ় বিশ্বাস ধরি' ।
নিরন্তর কৃষ্ণ-নাম সঙ্কীর্তন করি ॥৯৫॥
সেই কৃষ্ণ-নাম কভু গাওয়ায়, নাচায় ।
গাহি, নাচি নাহি আমি আপন-ইচ্ছায় ॥৯৬॥

এइ তাঁর বাক্যে আমি দৃঢ় বিশ্বাস ধরি' ।
নিরন্তর কৃষ্ণ-নাম সঙ্কীর্তন করি ॥ ৯৫ ॥
সেइ কৃষ্ণ-নাম কভু গাওোয়ায়, নাচায় ।
গাহি, নাচি নাহি আমি আপন-ইচ্ছায় ॥ ৯৬ ॥

এइ—यह; **তাঁর**—उनके (मेरे गुरु के); **বাক্যে**—शब्दों में; **আমি**—मैं; **দৃঢ়**—दृढ़; **বিশ্বাস**—विश्वास; **ধরি'**—घरकर; **নিরন্তর**—निरन्तर; **কৃষ্ণ-নাম**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **সঙ্কীর্তন**—संकीर्तन; **করি**—जारी रखता हूँ; **সেइ**—वह; **কৃষ্ণ-নাম**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **কভু**—कभी-कभी; **গাওোয়ায়**—गायन करवाता है; **নাচায়**—नृत्य करवाता है; **গাহি**—कीर्तन करने से; **নাচি**—नृत्य करना; **নাহি**—नहीं; **আমি**—मैं स्वयं; **আপন**—अपनी; **ইচ্ছায়**—इच्छा।

अनुवाद

"मुझे अपने गुरु के इन वचनों पर दृढ़ विश्वास है, अतएव मैं एकान्त में तथा भक्तों के संग में सदैव भगवन्नाम का कीर्तन करता हूँ। भगवान् कृष्ण का वही पवित्र नाम कभी-कभी मुझे नचाता है और गायन कराता है। इसीलिए मैं नाचता और गाता हूँ। कृपया ऐसा न सोचें कि मैं जान-बूझकर ऐसा करता हूँ। यह अपने आप होता है।

तात्पर्य

जो व्यक्ति अपने गुरु के वचनों में श्रद्धा नहीं रख सकता, अपितु स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है, उसे कभी भी भगवन्नाम कीर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वेदों में (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.२३ में) कहा गया है :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"जिन महात्माओं में भगवान् तथा गुरु दोनों के प्रति निर्विवाद श्रद्धा विद्यमान रहती है, उन्हें वैदिक ज्ञान का भावार्थ स्वतः प्रकट हो जाता है।" यह वैदिक आदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी पुष्टि अपने निजी आचरण द्वारा की है। उन्होंने अपने गुरु के शब्दों में विश्वास करके संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिस प्रकार कि हमने अपने गुरु के वचनों में विश्वास करके वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन चालू किया है। वे चाहते थे कि प्रचार हो और हमने उनके शब्दों पर विश्वास करके उन्हें किसी न किसी तरह पूरा करने का प्रयास किया और अब यह आन्दोलन सारे विश्व में सफल हो चुका है। अतएव गुरु के वचनों में और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में श्रद्धा रखना ही सफलता का रहस्य है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी भी अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया और संकीर्तन आन्दोलन के प्रसार को रोका नहीं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने अपना शरीर-त्यागते समय अपने सारे शिष्यों को आदेश दिया था कि वे एकसाथ मिलकर चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का विश्वभर में प्रचार करें। किन्तु बाद में कुछेक स्वार्थी मूर्ख शिष्यों ने उनके आदेश का उल्लंघन कर दिया। उनमें से हर शिष्य संगठन का अध्यक्ष बनना चाहता था; अतएव वे गुरु के आदेशों की उपेक्षा करके अदालतों में लड़ने लगे और सारा कार्य व्यर्थ गया। हमें इस पर गर्व नहीं है, किन्तु सत्य की व्याख्या होनी चाहिए। हमें अपने गुरु के वचनों पर विश्वास था, अतएव हमने अपने विनीत ढंग से—असहाय होते हुए भी—उसे चालू रखा, किन्तु उस परम अधिकारी के आदेश के आध्यात्मिक बल पर ही यह आन्दोलन सफल हुआ है।

यह समझ लेना होगा कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते थे और नाचते थे, तो वे आध्यात्मिक जगत् की ह्लादिनी शक्ति के प्रभाव से ऐसा करते थे। न तो वे पवित्र भगवन्नाम को कोई भौतिक शब्द मानते थे, न ही कोई शुद्ध भक्त भूलकर भी हरे कृष्ण मन्त्र को भौतिक संगीत की अभिव्यक्ति मानता है। भगवान् चैतन्य ने कभी भी भगवन्नाम का स्वामी (अधिकारी) बनने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उन्होंने हमें शिक्षा दी कि हमें किस तरह पवित्र भगवन्नाम का दास बनना चाहिए। यदि कोई भगवन्नाम का कीर्तन केवल दिखावा करने के लिए, सफलता का रहस्य समझे बिना करता है, तो उसके पित्त-स्राव में वृद्धि हो सकती है, किन्तु उसे कभी भी नाम-जप में पूर्णता प्राप्त नहीं होगी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको इस रूप में प्रस्तुत किया, "मैं एक महामूर्ख हूँ, और मुझे उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं है। मैंने *वेदान्त-सूत्र* का वास्तविक अर्थ समझने के लिए न तो शंकर सम्प्रदाय की, न ही मायावादी संन्यासियों की व्याख्याओं का पालन किया। मैं मायावादी दार्शनिकों के अतार्किक तर्कों से अत्यधिक भयभीत रहता हूँ। अतएव मैं सोचता हूँ कि *वेदान्त-सूत्र* की उनकी व्याख्याओं के बारे में मुझे कोई अधिकार नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पवित्र भगवन्नाम के कीर्तन मात्र से भौतिक संसार की सारी भ्रान्तियाँ दूर हो सकती हैं। मेरा विश्वास है कि पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करने से ही मनुष्य को भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो सकती है। कलह और असहमति के इस युग में भौतिक बन्धनों से मुक्ति का एकमात्र उपाय भगवन्नाम कीर्तन है।"

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा—"मैं नाम का कीर्तन करने से उन्मत्त-सा हो गया हूँ। किन्तु अपने गुरु से पूछने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की अपेक्षा श्रेयस्कर यही होगा कि किसी न किसी प्रकार दिव्य भगवत्प्रेम विकसित किया जाए। यही जीवन की सर्वोच्च सफलता है। जिसे यह भगवत्प्रेम प्राप्त हो जाता है, वह जनसमुदाय की परवाह न करते हुए स्वभाववश कीर्तन करता है और नाचता है।" जीवन की यह अवस्था *भागवत् जीवन* (भक्त का जीवन) कहलाती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे बतलाया, "मैंने कभी दिखावे के लिए कीर्तन तथा नृत्य नहीं किया। मैं तो अपने गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास रखकर नाचता तथा कीर्तन करता हूँ। यद्यपि मायावादी दर्शनिकों को मेरा यह नाचना तथा कीर्तन करना पसन्द नहीं है, किन्तु तो भी मैं गुरु वचनों के बल पर यह करता हूँ। अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि मुझे नाचने तथा कीर्तन करने के इन कार्यों का कोई श्रेय नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि ये तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा से स्वत: सम्पन्न होते हैं।"

कृष्ण-नामे यॅ आनन्द-सिन्धु-आस्वादन ।
ब्रह्मानन्द तार आगे खातोदक-सम ॥ ९७॥

कृष्ण-नामे ग्रे आनन्द-सिन्धु-आस्वादन ।
ब्रह्मानन्द तार आगे खातोदक-सम ॥ ९७॥

कृष्ण-नामे—भगवान् के पावन नाम में; **ग्रे**—जो; **आनन्द**—दिव्य आनन्द; **सिन्धु**—सागर; **आस्वादन**—आस्वादन; **ब्रह्म-आनन्द**—निराकार विचारधारा का दिव्य आनन्द; **तार**—इसके; **आगे**—आगे; **खात-उदक**—नहर में थोड़े जल के; **सम**—समान।

अनुवाद

"हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन से जिस दिव्य आनन्द सिन्धु का आस्वादन होता है, उसकी तुलना में निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त होने वाला आनन्द (ब्रह्मानन्द) नहर के अल्प छीछले जल के समान है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु (१.१.३८) में कहा गया है :

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धगुणीकृत:।
नैति भक्तिसुखाम्भोधे: परमाणुतुलामपि॥

"यदि ब्रह्मानन्द को दस लाख गुना कर दिया जाए, तो इतनी मात्रा का ब्रह्मानन्द शुद्ध भक्ति से प्राप्त होने वाले आनन्द के एक परमाणु के समान भी नहीं हो सकता।"

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगदगुरो ॥ ९८॥

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो ॥ ९८ ॥

त्वत्—आपका; **साक्षात्**—साक्षात्; **करण**—ऐसा कार्य; **आह्लाद**—आह्लाद; **विशुद्ध**—विशुद्ध; **अब्धि**—समुद्र; **स्थितस्य**—स्थिर होकर; **मे**—मुझसे; **सुखानि**—सुख; **गोष्पदायन्ते**—बछड़े के खुर से बना एक छोटा गड्ढा; **ब्राह्मणि**—शून्यवादी ब्रह्मज्ञान से उपलब्ध आनन्द; **अपि**—भी; **जगत्-गुरो**—हे जगद्गुरु।

अनुवाद

"'हे प्रभु! हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! चूँकि मैंने आपका साक्षात् दर्शन किया है, इसलिए मेरा दिव्य आनन्द सागर के समान हो गया है। अब उस सागर में स्थित मैं अन्य तथाकथित आनन्द को बछड़े के खुर की छाप में समाये जल की भाँति अनुभव करता हूँ।'"

तात्पर्य

शुद्ध भक्ति से जो दिव्य आनन्द मिलता है, वह सागर के समान होता है, जबकि भौतिक सुख तथा निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार से मिलने वाला सुख बछड़े की खुर की छाप में भरे जल के समान है। यह *हरिभक्ति सुधोदय* का श्लोक है (१४.३६)।

প্রভুর মিষ্ট-বাক্য শুনি' সন্ন্যাসীর গণ ।
চিত্ত ফিরি' গেল, কহে মধুর বচন ॥ ৯৯ ॥

প্রভুর মিষ্ট-বাক্য শুনি' সন্ন্যাসীর গণ ।
চিত্ত ফিরি' গেল, কহে মধুর বচন ॥ ৯৯ ॥

প্রভুর—প্রভু के; **মিষ্ট-বাক্য**—मधुर वाक्य (शब्द); **শুনি'**—सुनकर; **সন্ন্যাসীর গণ**—संन्यासियों के सभी दल; **চিত্ত**—चेतना; **ফিরি'**—बदल गई; **গেল**—गई; **কহে**—कहा; **মধুর**—मधुर; **বচন**—शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की मधुर वाणी सुनकर सारे मायावादी संन्यासी प्रभावित हो उठे। उनके चित्त बदल गये और उन्होंने मीठी वाणी में कहा।

तात्पर्य

मायावादी संन्यासी चैतन्य महाप्रभु से उनकी यह आलोचना करने के

लिए वाराणसी में मिले थे कि वे संकीर्तन आन्दोलन में क्यों भाग लेते हैं। उन्हें संकीर्तन आन्दोलन पसन्द नहीं था। संकीर्तन आन्दोलन के विरुद्ध यह आसुरी स्वभाव निरन्तर बना हुआ है। जिस तरह यह चैतन्य महाप्रभु के समय में था, उसी तरह उनसे पूर्व, प्रह्लाद महाराज के समय में भी था। वे अपने पिता के न चाहने पर भी संकीर्तन करते थे और पिता तथा पुत्र के बीच मतभेद का यही कारण था। *भगवद्गीता* (७.१५) में भगवान् कहते है :

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

"जो दुष्ट नितान्त मूर्ख हैं, जो मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान माया द्वारा हर लिया गया है तथा वे जो आसुरी स्वभाव के हैं—वे मेरी शरण में नहीं आते।" मायावादी संन्यासी *आसुरं भावमाश्रिताः* हैं अर्थात् उन्होंने असुरों का मार्ग अपना रखा है, जो भगवान् के रूप के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते। मायावादी कहते हैं कि हर वस्तु का आखरी उद्गम निर्विशेष है और इस तरह वे ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं। यह कहना कि ईश्वर नहीं हैं, ईश्वर का प्रत्यक्ष निषेध है। किन्तु यह कहना कि ईश्वर हैं, किन्तु उनके न तो हाथ, पाँव या सिर होते हैं और न वे बोल सकते हैं, न सुन सकते हैं, न खा सकते हैं, यह उनके अस्तित्व के निषेध करने का नकारात्मक मार्ग है। जो व्यक्ति देख नहीं सकता वह अन्धा कहलाता है, जो चल नहीं सकता वह लँगड़ा कहलाता है, जिसके हाथ नहीं है, वह असहाय होता है, जो बोल नहीं सकता वह गूँगा कहलाता है और जो सुन नहीं सकता वह बहरा कहलाता है। मायावादियों की यह कल्पना है कि ईश्वर के न हाथ हैं, न आँखें, न पाँव, न कान। वे एक तरह से ईश्वर को अन्धे, बहरे, गूँगे, लँगड़े, असहाय इत्यादि कहकर उनका अपमान करते हैं। इसलिए भले ही वे अपने आपको महान् वेदान्ती क्यों न कहते रहें, वे वास्तव में *माययापहृतज्ञाना* हैं। दूसरे शब्दों में, वे प्रकांड पंडित तो लगते हैं, किन्तु उनके ज्ञान का सार मानो निकाल लिया गया है।

निर्विशेष मायावादी सदैव वैष्णवों का विरोध करते रहते हैं, क्योंकि वैष्णवजन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को परम कारण मानकर उनकी सेवा करना चाहते हैं, उनसे बातें करना चाहते हैं और उन्हें देखना चाहते हैं, जिस प्रकार

भगवान् भी अपने भक्तों को देखने और उनसे बातें करने, उनके साथ भोजन और नृत्य करने के लिए उत्सुक रहते हैं। प्रेम के ये निजी आदान-प्रदान मायावादी संन्यासियों को नहीं भाते। इसलिए बनारस के मायावादी संन्यासियों द्वारा चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने का मूल उद्देश्य उनके ईश्वर की साकार विचारधारा को परास्त करना था। किन्तु प्रचारक के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन मायावादी संन्यासियों के मनों को बदल दिया। वे सभी महाप्रभु की मधुर वाणी से द्रवित हो उठे और उनके मित्र बनकर उनसे मधुर वाणी में बातें करने लगे। इसी तरह सभी प्रचारकों को विरोधियों का सामना करना पड़ेगा, किन्तु उन्हें और अधिक शत्रुता-पूर्ण नहीं बनाना चाहिए। वे तो पहले से ही शत्रु हैं और यदि हम उनसे रुक्ष भाव से या अशिष्टता से बातें करेंगे, तो उनकी शत्रुता केवल बढ़ेगी। अतएव जहाँ तक हो सके, हमें चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और विरोधियों को शास्त्रों के उद्धरण देकर तथा आचार्यों के प्रमाण प्रस्तुत करके प्रभावित करना चाहिए। इसी प्रकार से हमें भगवान् के सारे शत्रुओं को परास्त करने का प्रयास करना चाहिए।

যে কিছু কহিলে তুমি, সব সত্য হয় ।
কৃষ্ণ-প্রেমা সেই পায়, যার ভাগ্যোদয় ॥ ১০০ ॥
ग्रे किछु कहिले तुमि, सब सत्य हय ।
कृष्ण-प्रेमा सेइ पाय, ग्रार भाग्योदय ॥ १०० ॥

ग्रे—सब; **किछु**—वह; **कहिले**—आपने कहा; **तुमि**—आप; **सब**—प्रत्येक वस्तु; **सत्य**—सत्य; **हय**—होता है; **कृष्ण-प्रेमा**—कृष्ण-प्रेम; **सेइ**—कोई; **पाय**—पाता है; **ग्रार**—जिसका; **भाग्य-उदय**—भाग्य उदय होता है।

अनुवाद

"प्रिय चैतन्य महाप्रभु, आपने जो भी कहा है, वह सब सच है। जिसके ऊपर भाग्य की कृपा होती है, उसे ही भगवत्प्रेम प्राप्त होता है।

तात्पर्य

जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी से कहा है (*चैतन्य चरितामृत, मध्य* १९.१५१), जो व्यक्ति वास्तव में अत्यन्त भाग्यशाली होता है, वही कृष्णभावनामृत का प्रारम्भ कर सकता है :

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलताबीज॥

ऐसे करोड़ों जीव हैं, जो भौतिक प्रकृति के नियमों से बद्ध हो चुके हैं और वे विभिन्न शरीर धारण किये हुए इस ब्रह्माण्ड के ग्रह मण्डलों में विचरण कर रहे हैं। इनमें से जो भाग्यवान होता है, वही कृष्ण-कृपा से किसी प्रामाणिक गुरु से मिलता है और भक्ति के अर्थ को समझता है। वह प्रामाणिक गुरु या आचार्य के निर्देशन में भक्ति सम्पन्न करके भगवत्प्रेम विकसित करता है। इस तरह जिसमें *कृष्णप्रेम* जाग्रत हो जाता है और वह अचिन्त्य भगवान् का भक्त बन जाता है, उसे अत्यधिक भाग्यवान समझा जाता है। मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने इस तथ्य को स्वीकार किया। यद्यपि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति बनना आसान नहीं है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से यह सम्भव है, जैसाकि आगे इस कथा से स्पष्ट हो जायेगा।

कृष्णे भक्ति कर—इहाय सबार सन्तोष ।
वेदान्त ना शुन केने, तार किबा दोष ॥ १०१॥

कृष्णे भक्ति कर—इहाय सबार सन्तोष ।
वेदान्त ना शुन केने, तार किबा दोष ॥ १०१ ॥

कृष्णे—कृष्ण की; **भक्ति**—भक्ति; **कर**—करना; **इहाय**—इस विषय में; **सबार**—प्रत्येक का; **सन्तोष**—सन्तोष है; **वेदान्त**—*वेदान्त-सूत्र* का दर्शन; **ना**—नहीं; **शुन**—सुनो; **केने**—क्यों; **तार**—दर्शन का; **किबा**—क्या है; **दोष**—दोष।

अनुवाद

"हे महोदय, आपके कृष्ण के भक्त होने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। हममें से हर कोई इससे सन्तुष्ट है। किन्तु आप *वेदान्त-सूत्र* पर विचार-विमर्श करने से क्यों कतराते हैं? इसमें क्या दोष है?"

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है, "मायावादी संन्यासी यह स्वीकार करते हैं कि श्री शंकराचार्य-कृत *शारीरक भाष्य* ही *वेदान्त-सूत्र* का वास्तविक अर्थ बताने वाला है। दूसरे शब्दों में, मायावादी

संन्यासी शंकराचार्य द्वारा दी गई *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्याओं को मानते हैं, जो अद्वैतवाद पर आधारित हैं। इस तरह वे *वेदान्त-सूत्र, उपनिषदों* तथा ऐसे अन्य सारे वैदिक साहित्य की व्याख्या अपने निर्विशेषवादी ढंग से करते हैं।" महान् मायावादी संन्यासी सदानन्द योगीन्द्र ने *वेदान्त सार* नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें वे कहते हैं :

वेदान्तो नाम उपनिषत् प्रमाणम्।
तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि-च॥

सदानन्द योगीन्द्र के अनुसार श्री शंकराचार्य ने *शारीरक भाष्य* में *वेदान्त-सूत्र* तथा *उपनिषदों* को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वे ही एकमात्र वैदिक प्रमाण हैं। किन्तु वास्तव में *वेदान्त* तो वैदिक ज्ञान के सार का सूचक है और यह तथ्य नहीं है कि शंकराचार्य ने शारीरक भाष्य में जो कुछ लिख दिया है, उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। वैष्णव आचार्यों ने भी अन्य वेदान्त भाष्य लिखे हैं, जो न तो शंकराचार्य का अनुगमन करते हैं, न उनके सम्प्रदाय के कल्पनापूर्ण भाष्यों को मानते हैं। उनके भाष्य द्वैतदर्शन पर आधारित हैं। शंकराचार्य तथा उनके अनुयायी अद्वैतवादी हैं और वे यह स्थापित करना चाहते हैं कि ईश्वर तथा जीव एक हैं। परमेश्वर की पूजा करने के बदले वे स्वयं को ईश्वर के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे चाहते हैं कि लोग ईश्वर के रूप में उनकी पूजा करें। ऐसे लोग वैष्णव आचार्यों की व्याख्याओं को स्वीकार नहीं करते जो *शुद्धाद्वैत, शुद्धद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत* तथा *अचिन्त्यभेदाभेद* नाम से जाने जाते हैं। मायावादी इन दर्शनों पर विचार-विमर्श नहीं करते, क्योंकि उनको अपने *केवलाद्वैत* दर्शन पर पूरा विश्वास है। *वेदान्त-सूत्र* को समझने के लिए इसी दर्शन को मान्य बताकर वे कृष्ण के शरीर को भौतिक तत्त्वों से बना बतलाते हैं और कृष्ण की प्रेमाभक्ति को वे भावुकता मानते हैं। वे इसीलिए मायावादी कहलाते हैं, क्योंकि उनके अनुसार कृष्ण का शरीर *माया* से बना हुआ है और भक्तों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली प्रेमाभक्ति भी माया होती है। वे ऐसी भक्ति को *कर्मकाण्ड* का एक पक्ष मानते हैं। उनके मतानुसार भक्ति मानसिक चिन्तन या कभी-कभी ध्यान ही है। मायावादी तथा वैष्णव दर्शनों में यही अन्तर है।

এত শুনি' হাসি' প্রভু বলিলা বচন ।
দুঃখ না মানহ যদি, করি নিবেদন ॥ ১০২॥

एत शुनि' हासि' प्रभु बलिला वचन ।
दुःख ना मानह यदि, करि निवेदन ॥ १०२॥

एत—इस प्रकार; **शुनि'**—सुनकर; **हासि'**—मुस्कुराकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **बलिला**—बोले; **वचन**—वचन; **दुःख**—दुःखी; **ना**—नहीं; **मानह**—इसे मानो; **यदि**—यदि; **करि**—मैं कहता हूँ, करता हूँ; **निवेदन**—आपको निवेदन।

अनुवाद

मायावादी संन्यासियों को इस प्रकार बोलते हुए सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु थोड़ा मुस्काये और बोले, "हे महाशयों, यदि आप बुरा न मानें तो मैं वेदान्त दर्शन के सम्बन्ध में कुछ कहूँ।"

तात्पर्य

मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रशंसा करते हुए उनसे पूछा, कि वे वेदान्त दर्शन पर विचार-विमर्श क्यों नहीं करते? वास्तव में, वैष्णवों के सभी कार्य वेदान्त दर्शन पर ही आधारित है। वैष्णवजन वेदान्त की उपेक्षा नहीं करते, किन्तु वे *शारीरक भाष्य* के आधार पर वेदान्त को समझने का प्रयास नहीं करते। इसीलिए भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों की अनुमति लेकर स्थिति को स्पष्ट करने के लिए वेदान्त दर्शन के विषय में कुछ कहना चाहा।

वैष्णव विश्व के सबसे बड़े दार्शनिक होते हैं और इनमें से सबसे बड़े श्रील जीव गोस्वामी प्रभु थे। उनके दर्शन को चार सौ से कम वर्षों बाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर महाराज ने फिर से प्रस्तुत किया। अतएव हमें यह अच्छी तरह जान लेना होगा कि वैष्णव दार्शनिक न तो भावुक हैं, न ही सहजियों जैसे साधारण निम्न स्तर के भक्त। सारे वैष्णव आचार्य प्रकाण्ड विद्वान थे, जिन्हें वेदान्त दर्शन का पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि वेदान्त दर्शन जाने बिना कोई *आचार्य* नहीं बन सकता। वैदिक सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले भारतीय अध्यात्मवादियों में आचार्य के रूप में मान्य होने के लिए अध्ययन द्वारा या श्रवण द्वारा वेदान्त दर्शन का प्रकाण्ड विद्वान होना आवश्यक है।

वेदान्त दर्शन का अनुगमन करने से भक्ति का विकास होता है। इसका उल्लेख *श्रीमद्भागवत* (१.२.१२) में हुआ है :

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥

इस श्लोक में *भक्त्या श्रुतगृहीतया* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इससे सूचित होता है कि भक्ति को *उपनिषदों* तथा *वेदान्त-सूत्र* के दर्शन पर आधारित होना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है :

श्रुतिस्मृतिपुराणादि पञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

"वेदों, पुराणों, पञ्चरात्रों इत्यादि के प्रमाण बिना सम्पन्न की जाने वाली भक्ति को कोरी भावुकता मानना चाहिए, क्योंकि इससे समाज में केवल उत्पात मचता है।" वैष्णवों की अनेक कोटियाँ हैं (यथा कनिष्ठ अधिकारी, मध्यम अधिकारी तथा उत्तम अधिकारी); किन्तु मध्यम अधिकारी प्रचारक बनने के लिए भक्त को *वेदान्त-सूत्र* एवं अन्य वैदिक साहित्य का विद्वान होना आवश्यक है, क्योंकि जब भक्तियोग का विकास वेदान्त दर्शन के आधार पर होता है, तब वह यथार्थ एवं स्थायी होता है। इस सम्बन्ध में हम *श्रीमद्भागवत* के ऊपर दिये गये श्लोक (१.२.१२) का अनुवाद तथा तात्पर्य उद्धृत करना चाहेंगे :

अनुवाद

गम्भीर जिज्ञासु या मुनि जो ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त होता है, वह वेदान्त-श्रुति से सुनने के आधार पर सम्पन्न की जाने वाली भक्तिमय सेवा से ही परम सत्य की अनुभूति करता है।

तात्पर्य

परम सत्य का पूर्ण साक्षात्कार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव की भक्तिमय सेवा की प्रक्रिया द्वारा होता है, क्योंकि वे परिपूर्ण परम सत्य हैं। ब्रह्म उनका दिव्य शारीरिक तेज है और परमात्मा उनकी आंशिक अभिव्यक्ति है। अतएव ब्रह्म या परमात्मा की अनुभूति परम सत्य की केवल आंशिक अनुभूति होती है। मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—*कर्मी, ज्ञानी, योगी* तथा *भक्त*। कर्मी तो भौतिकतावादी होते हैं, जबकि शेष तीन अध्यात्मवादी होते हैं। प्रथम श्रेणी के

अध्यात्मवादी भक्त वे हैं, जिन्हें परम पुरुष की अनुभूति होती है। दूसरी श्रेणी के अध्यात्मवादी वे हैं, जिन्हें परम पुरुष के पूर्ण अंश का आंशिक साक्षात्कार ही हुआ है और तृतीय श्रेणी के अध्यात्मवादी वे हैं, जिन्हें परम पुरुष के आध्यात्मिक तेज की केवल झाँकी ही मिल पाती है। जैसाकि *भगवद्गीता* तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में कहा गया है, परम पुरुष का साक्षात्कार भक्ति द्वारा किया जाता है, जिसकी पृष्ठभूमि में पूर्ण ज्ञान तथा भौतिक संगति से वैराग्य रहता है। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि भक्ति से ज्ञान और भौतिक संगति से वैराग्य उत्पन्न होते हैं। चूँकि ब्रह्म और परमात्मा की अनुभूतियाँ परम सत्य की अपूर्ण अनुभूतियाँ हैं, अत: परम सत्य की अनुभूति हेतु ब्रह्म तथा परमात्मा का साक्षात्कार करने के साधन अर्थात् ज्ञान और योग-मार्ग भी अपूर्ण हैं। भक्ति ही एकमात्र पूर्ण विधि है, जिससे गम्भीर जिज्ञासु को परम सत्य की अनुभूति हो सकती है। ऐसी भक्ति की नींव पूर्ण ज्ञान तथा भौतिक संगति से वैराग्य पर आधारित होती है और यह *वेदान्त-श्रुति* के श्रवण द्वारा सुदृढ़ होती है। अत: भक्ति कम बुद्धि वाले अध्यात्मवादियों के लिए नहीं होती।

भक्तों की तीन श्रेणियाँ होती हैं—प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वर्ग। तृतीय श्रेणी के भक्त अर्थात् नौसिखिये भक्त ज्ञानविहीन होते हैं और वे भौतिक संगति से विरक्त भी नहीं होते। वे तो मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा की प्रारम्भिक प्रक्रिया के प्रति ही आकृष्ट होते हैं। ऐसे भक्त भौतिक भक्त कहलाते हैं। ऐसे भक्त आध्यात्मिक लाभ की अपेक्षा भौतिक लाभ के प्रति अधिक आसक्त रहते हैं। अत: मनुष्य को इस भौतिक भक्ति से ऊपर उठकर भक्ति की द्वितीय अवस्था की ओर प्रगति करनी चाहिए। इस द्वितीय अवस्था में भक्त को भक्ति के चार तत्त्व दिखाई पड़ते हैं—परमेश्वर, उनके भक्त, अबोध जन तथा ईर्ष्यालु। मनुष्य को कम-से-कम इस द्वितीय श्रेणी के भक्त की अवस्था तक ऊपर उठना चाहिए, जिससे वह परम सत्य को जानने का अधिकारी बन सके।

अत: तृतीय श्रेणी के भक्त को भक्ति सम्बन्धी आदेश *भागवत्* के प्रामाणिक स्रोतों से प्राप्त करने होते हैं। पहला *भागवत* सुस्थापित भक्त है। दूसरा *भागवत* ईश्वर का सन्देश है। अत: तृतीय श्रेणी के भक्त को भक्ति के उपदेश प्राप्त करने के लिए भक्त के पास जाना आवश्यक है। ऐसा भक्त कोई व्यापारी नहीं होता,

जो *भागवत* बाँचने के व्यापार द्वारा अपनी जीविका चलाता हो। ऐसे भक्त को शुकदेव गोस्वामी के प्रतिनिधि सूत गोस्वामी जैसा होना चाहिए और उसे समस्त जनता के चतुर्दिक कल्याण के लिए भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। नये भक्त को प्रामाणिक व्यक्तियों से सुनने में बहुत कम रुचि रहती है। ऐसा नया भक्त अपनी इन्द्रियतृप्ति हेतु किसी व्यावसायिक व्यक्ति से सुनने का दिखावा करता है। इस प्रकार के श्रवण तथा कीर्तन से सारा मामला बिगड़ चुका है, अत: मनुष्य को इस दोषपूर्ण विधि के प्रति अत्यन्त सतर्क रहने की आवश्यकता है। *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* में निहित भगवान् के दिव्य सन्देश निस्सन्देह दिव्य विषय हैं, किन्तु तो भी व्यावसायिक व्यक्ति से उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह उन्हें उसी प्रकार विषाक्त कर देता है, जिस प्रकार सर्प अपनी जीभ के स्पर्श मात्र से दूध को विषाक्त बना देता है।

अतएव सच्चे भक्त को *उपनिषद्, वेदान्त-सूत्र* जैसे वैदिक साहित्य को तथा पूर्ववर्ती गोस्वामियों द्वारा छोड़े गये अन्य साहित्य को अपनी उन्नति के लिए सुनना चाहिए। ऐसे साहित्य का श्रवण किये बिना उसकी वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। श्रवण तथा आदेशों का पालन किये बिना भक्ति का दिखावा व्यर्थ है और यह भक्ति के पथ में अवरोध जैसा है। अतएव जब तक भक्ति श्रुति, स्मृति, पुराण तथा पञ्चरात्र प्रमाणों जैसे सिद्धान्तों पर स्थापित न हो, तब तक ऐसे भक्ति के दिखावे का तुरन्त त्याग करना चाहिए। किसी अनधिकृत भक्त को कभी भी शुद्ध भक्त की मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। वैदिक साहित्य से ऐसे सन्देशों को आत्मसात् करने से अपने भीतर अन्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। यही *समाधि* कहलाती है।

इहा शुनि' बले सर्व सन्न्यासीर गण ।
तोमाके देखिये ग्रैछे साक्षात्नारायण ॥ १०३॥

इहा शुनि' बले सर्व सन्न्यासीर गण ।
तोमाके देखिये ग्रैछे साक्षात्नारायण ॥ १०३॥

इहा—यह; **शुनि'**—सुनकर; **बले**—बोले; **सर्व**—सभी; **सन्न्यासीर**—मायावादी संन्यासियों का; **गण**—समूह, दल; **तोमाके**—आपको; **देखिये**—हम देखते हैं; **ग्रैछे**—ठीक इस तरह; **साक्षात्**—साक्षात्; **नारायण**—नारायण।

अनुवाद

यह सुनकर मायावादी संन्यासी कुछ नम्र हुए और उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् नारायण के रूप में सम्बोधित किया और स्वीकार किया कि वे सचमुच नारायण हैं।

तात्पर्य

मायावादी संन्यासी एक दूसरे को नारायण कहकर सम्बोधित करते हैं। जब वे किसी अन्य संन्यासी को देखते हैं, तो *ॐ नमो-नारायणाय* ("नारायण, मैं आपको नमस्कार करता हूँ") कहकर सम्मान प्रदर्शित करते हैं, यद्यपि वे अच्छी तरह जानते रहते हैं कि वह किस प्रकार का नारायण है। नारायण तो चतुर्भुजी हैं, किन्तु यद्यपि वे नारायण होने के विचार से फूले रहते हैं, किन्तु उनके दो ही हाथ होते हैं। चूँकि उनका दर्शन यह बतलाता है कि नारायण तथा सामान्य व्यक्ति समान स्तर पर होते हैं, इसलिए वे कभी-कभी *दरिद्रनारायण* शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका आविष्कार ऐसे एक तथाकथित स्वामी ने किया था, जिसे वेदान्त-दर्शन का कोई ज्ञान न था। अतएव ये सारे मायावादी संन्यासी जो अपने आपको नारायण कहते थे, वे नारायण के पद से अनजान थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी तपस्या के कारण उन्हें महाप्रभु को साक्षात् नारायण के रूप में समझने के लिए समर्थ बनाया। श्री चैतन्य महाप्रभु सचमुच भगवान् नारायण हैं, जो नारायण के भक्त-रूप में प्रकट हुए हैं और इस तरह मायावादी संन्यासियों ने उन्हें साक्षात् नारायण और अपने आपको गर्वित छद्म नारायण समझकर, उनसे इस प्रकार कहा।

তোমার বচন শুনি' জুড়ায় শ্রবণ ।
তোমার মাধুরী দেখি' জুড়ায় নয়ন ॥১০৪॥

तोमार वचन शुनि' जुड़ाय श्रवण ।
तोमार माधुरी देखि' जुड़ाय नयन ॥१०४॥

तोमार—आपका; **वचन**—वचन; **शुनि'**—सुनकर; **जुड़ाय**—अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; **श्रवण**—श्रवण; **तोमार**—आपका; **माधुरी**—अमृत; **देखि'**—देखकर; **जुड़ाय**—तुष्ट होते हैं; **नयन**—हमारे नयन।

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे चैतन्य महाप्रभु, सच बात तो यह है कि हम आपके वचन सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हैं और इसके अतिरिक्त आपका शारीरिक स्वरूप इतना मोहक है कि आपको देखकर हम अत्यन्त संतोष का अनुभव कर रहे हैं।

तात्पर्य

शास्त्रों में कहा गया है :

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।

"कोई न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को, न ही उनके नाम, रूप, गुण या परिकर को भौतिकता से कलुषित अपनी इन्द्रियों द्वारा समझ सकता है, किन्तु यदि वह उनकी सेवा करता है, तो वे अपने आपको प्रकाशित करते हैं।" (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.२३४) यहाँ पर मायावादी संन्यासियों द्वारा नारायण की सेवा का प्रभाव देखा जा सकता है। चूँकि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति थोड़ा सम्मान प्रदर्शित किया और चूँकि वे धार्मिक थे तथा संन्यास के कठोर विधि-विधानों का पालन करने वाले थे, अतः उन्हें वेदान्त-दर्शन का कुछ-कुछ ज्ञान हो गया था और वे भगवान् चैतन्य महाप्रभु की कृपा से जान सके कि श्री चैतन्य महाप्रभु छः ऐश्वर्यों से युक्त स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अतिरिक्त कोई दूसरे नहीं हैं। इन ऐश्वर्यों में से एक है उनका सौन्दर्य। मायावादी संन्यासियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु के अद्वितीय शारीरिक सौन्दर्य से पहचान लिया कि वे साक्षात् नारायण हैं। वे तथाकथित संन्यासियों के मनगढ़न्त दरिद्रनारायण जैसे नारायण नहीं थे।

তোমার প্রভাবে সবার আনন্দিত মন ।
কভু অসঙ্গত নহে তোমার বচন ॥ ১০৫ ॥

tomāra prabhāve sabāra ānandita mana
kabhu asaṅgata nahe tomāra vacana ॥ 105 ॥

तोमार—आपके; **प्रभावे**—प्रभाव से; **सबार**—प्रत्येक का; **आनन्दित**—आनन्दित;

मन—मन; **कभु**—कभी भी; **असङ्गत**—असंगत, अनुचित; **नहे**—नहीं; **तोमार**—आपका; **वचन**—वचन, भाषण।

अनुवाद

"हे महोदय, आपके प्रभाव से हमारे मन अत्यधिक सन्तुष्ट हैं और हमें विश्वास है कि आपके वचन कभी अनुपयुक्त नहीं होंगे। अतएव आप *वेदान्त-सूत्र* के विषय में कहें।"

तात्पर्य

इस श्लोक में *तोमार प्रभावे* (आपके प्रभाव से) शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। जब तक कोई अध्यात्म में उन्नत नहीं होता, तब तक वह श्रोताओं को प्रभावित नहीं कर सकता। भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है,—*शुद्ध-भकत-चरण-रेणु, भजन-अनुकूल*—"जब तक व्यक्ति शुद्ध भक्त का संग नहीं करता, तब तक वह भक्ति को समझने के लिए प्रभावित नहीं हो सकता।" ये मायावादी संन्यासी भाग्यवान थे कि इनकी भक्त के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से भेंट हुई और निस्सन्देह, वे भगवान् से अत्यधिक प्रभावित भी हुए। वे जानते थे कि पूर्णतया उन्नत अध्यात्मवादी कभी कोई झूठी बात नहीं कहता, उसके सारे शब्द उपयुक्त होते हैं और वैदिक कथनों से मेल खाते हैं। अत्यधिक अनुभूति-प्राप्त व्यक्ति कभी ऐसी कोई बात नहीं कहता, जो अर्थपूर्ण न हो। मायावादी दार्शनिक अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने का दावा करते हैं, लेकिन इसका कोई अर्थ नहीं होता, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी ऐसी निरर्थक बातें नहीं कही। मायावादी संन्यासी उनके व्यक्तित्व के प्रति आश्वस्त थे, अतएव वे उनसे वेदान्त-दर्शन का तात्पर्य सुनना चाहते थे।

प्रभु कहे, वेदान्त-सूत्र ईश्वर-वचन ।
व्यास-रूपे कैल याहा श्री-नारायण ॥ १०६ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहना प्रारम्भ किया; **वेदान्त-सूत्र**—*वेदान्त-सूत्र* का दर्शन; **ईश्वर-वचन**—ईश्वर के वचन, भगवान् द्वारा कथित; **व्यास-रूपे**—व्यासदेव के रूप में; **कैल**—उन्होंने किया है; **याहा**—जो कुछ; **श्री-नारायण**—श्री नारायण।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "वेदान्त दर्शन व्यासदेव के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण द्वारा कहे गये वचन हैं।

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र जो वैदिक ज्ञान को समझने की विधियों को प्रकट करने वाले सूत्रों का संकलन है, वह वैदिक ज्ञान का संक्षिप्त रूप है। इसका शुभारम्भ *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा* शब्दों से होता है, जिसका अर्थ है—"अब परम सत्य के विषय में प्रश्न पूछने का समय है।" मनुष्य जीवन विशेषतया इसी उद्देश्य के लिए है, अतएव *वेदान्त-सूत्र* संक्षेप में मानव उद्देश्य को बताता है। इसकी पुष्टि *वायु* तथा *स्कन्द* पुराणों के वचनों से होती है, जो सूत्र की परिभाषा इस प्रकार देते हैं :

अल्पाक्षरम् असन्दिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

"सूत्र सूक्तियों का वह संकलन है, जो सारे ज्ञान के सार को कम-से-कम शब्दों में व्यक्त करता है। इसे सर्वत्र लागू होना चाहिए और भाषा की दृष्टि से त्रुटिरहित होना चाहिए।" इन सूत्रों से परिचित किसी भी व्यक्ति को *वेदान्त-सूत्र* की जानकारी भी होनी चाहिए, जो विद्वानों में निम्नलिखित अतिरिक्त नामों से भी जाना जाता है—(१) *ब्रह्मसूत्र,* (२) *शारीरक,* (३) *व्यास-सूत्र,* (४) *बादरायण-सूत्र,* (५) *उत्तर मीमांसा* तथा (६) *वेदान्त-दर्शन।*

वेदान्त-सूत्र में चार अध्याय हैं और हर अध्याय में चार पाद (विभाग) हैं। अतएव *वेदान्त-सूत्र* को *षोडश पाद* अर्थात् सोलह विभागों वाला भी कहा जा सकता है। प्रत्येक पाद की विषयवस्तु पाँच भिन्न-भिन्न विषयों (अधिकरणों) में पूर्णतः वर्णित है, जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से *प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय* तथा *निगमन* कहा जाता है। प्रत्येक विषयवस्तु की व्याख्या *प्रतिज्ञा* अथवा विषय के उद्देश्य की घोषणा के सन्दर्भ में अवश्य की जाती है। *वेदान्त-सूत्र* के प्रारम्भ में जो प्रतिज्ञा दी गई है, वह है—*अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा*—जिससे सूचित होता है कि इस ग्रंथ की रचना परम सत्य के विषय में जिज्ञासा की प्रतिज्ञा के साथ की गई थी। इसी प्रकार कारण बतलाये जाने

चाहिए (*हेतु*), तथ्यों पर आधारित उदाहरण दिये जाने चाहिए (*उदाहरण*), विषयवस्तु को क्रमशः समझने योग्य बनाना चाहिए (*उपनय*) और अन्त में वैदिक शास्त्रों से प्रमाण देकर इसका समर्थन किया जाना चाहिए (*निगमन*)।

महान् कोषकार हेमचन्द्र के अनुसार वेदान्त उपनिषदों तथा वेदों के ब्राह्मण अंश के तात्पर्य का द्योतक है। प्रोफेसर आप्टे ने अपने शब्दकोष में वेदों के ब्राह्मण अंश का वर्णन उस अंश के रूप में किया है, जो विविध यज्ञों में स्तुतियों के प्रयोग के नियमों को बतलाता है और उनकी उत्पत्ति की विस्तृत विवेचना करता है, जिसे वह कभी-कभी लम्बे-लम्बे पौराणिक कथाओं के दृष्टान्तों के रूप में प्रस्तुत करता है। यह वेदों के मंत्र विभाग से पृथक् है। हेमचन्द्र ने कहा है कि वेदों का पूरक *वेदान्त-सूत्र* कहलाता है। वेद का अर्थ है ज्ञान और *अन्त* का अर्थ है सीमा, अन्त। दूसरे शब्दों में, वेदों के चरम उद्देश्य का समुचित ज्ञान ही वेदान्त ज्ञान कहलाता है। *वेदान्त-सूत्र* के सूत्रों में दिए गये ऐसे ज्ञान की पुष्टि उपनिषदों द्वारा होनी चाहिए।

विद्वानों के अनुसार ज्ञान के तीन उद्गम हैं, जो *प्रस्थान-त्रय* कहलाते हैं। इन विद्वानों के अनुसार वेदान्त भी ऐसा एक उद्गम है, क्योंकि यह तर्क तथा युक्ति के आधार पर वैदिक ज्ञान को प्रस्तुत करता है। *भगवद्गीता* (१३.५) में भगवान् ने कहा है—*ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः*—"*ब्रह्मसूत्र* में कार्य और कारण सम्बन्धी वैध तर्क तथा युक्ति द्वारा जीवन के चरम उद्देश्य की जानकारी निश्चित की गई है।" अतएव *वेदान्त-सूत्र न्याय-प्रस्थान* कहलाता है और उपनिषदें *श्रुति*-प्रस्थान कहलाते हैं। इसी तरह गीता, महाभारत तथा पुराण *स्मृति प्रस्थान* कहलाते हैं। अध्यात्म सम्बन्धी सारे वैज्ञानिक ज्ञान की पुष्टि श्रुति, स्मृति तथा तर्कपूर्ण प्रमाण के आधार पर होनी चाहिए।

ऐसा कहा जाता है कि वैदिक ज्ञान तथा वेदों का पूरक साहित्य जो *सात्वत पञ्चरात्र* कहलाता है, दोनों पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के श्वास से प्रकट हुए हैं। *वेदान्त-सूत्र* का संकलन श्री नारायण के शक्त्यावेश अवतार श्रील व्यासदेव द्वारा किया गया, यद्यपि कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि इसका संकलन अपान्तरतमा नामक एक महर्षि ने किया। किन्तु *पञ्चरात्र* तथा *वेदान्त-सूत्र* में एक ही मत व्यक्त हुए हैं। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की है कि

इन दोनों के मत में कोई अन्तर नहीं है। महाप्रभु घोषित करते हैं कि चूँकि *वेदान्त-सूत्र* का संकलन श्रील व्यासदेव द्वारा किया गया, इसलिए वह श्री नारायण के श्वास से प्रकट हुआ समझा जा सकता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि जब व्यासदेव *वेदान्त-सूत्र* का संकलन कर रहे थे, तब उनके समकालीन सात अन्य सन्त महापुरुष भी इसी तरह के कार्य में लगे हुए थे। ये सन्त थे आत्रेय ऋषि, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि तथा बादरी। इनके अतिरिक्त यह भी बतलाया जाता है कि व्यासदेव के पूर्व पाराशरी तथा कर्मन्दी भिक्षु ने भी *वेदान्त-सूत्र* की चर्चा की थी।

जैसा ऊपर बताया जा चुका है, *वेदान्त-सूत्र* में चार अध्याय हैं। प्रथम दो अध्यायों में पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के साथ जीव के सम्बन्ध की व्याख्या की गई है। इसे *सम्बन्ध-ज्ञान* कहा जाता है। तीसरे अध्याय में यह बतलाया गया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर के सम्बन्ध में जीव किस प्रकार कर्म कर सकता है। यह *अभिधेय ज्ञान* कहलाता है। परमेश्वर के साथ जीव के सम्बन्ध का वर्णन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा इस तरह किया गया है : *जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर 'नित्य दास'*—"जीव परमेश्वर का नित्य दास है।" (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २०.१०८) इसलिए उस सम्बन्ध में कर्म करने के लिए मनुष्य को *साधन भक्ति* करनी चाहिए अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के लिए नियत कर्तव्य करने चाहिए। यह *अभिधेय-ज्ञान* कहलाता है। चौथे अध्याय में इस प्रकार की भक्ति के परिणाम (*प्रयोजन-ज्ञान*) का वर्णन हुआ है। इस प्रकार जीवन का चरम लक्ष्य भगवद्धाम वापस जाना है। *वेदान्त-सूत्र* के *अनावृत्तिः शब्दात्* शब्द इसी चरम लक्ष्य को सूचित करते हैं।

नारायण के शक्त्यावेश अवतार श्रील व्यासदेव ने *वेदान्त-सूत्र* की रचना की और इसे अप्रामाणिक भाष्यों से बचाने के लिए स्वयं ही अपने गुरु नारद के आदेश से इसका मौलिक भाष्य *श्रीमद्भागवत* के रूप में लिखा। *श्रीमद्भागवत* के अतिरिक्त प्रमुख वैष्णव आचार्यों द्वारा रची गई *वेदान्त-सूत्र* की अनेक टीकाएँ हैं और इनमें से हर एक में भगवान् की भक्ति का स्पष्ट वर्णन हुआ है। जो लोग शंकर भाष्य का अनुगमन करते हैं, केवल उन लोगों ने *वेदान्त-सूत्र*

का वर्णन निर्विशेष शैली में किया है, जिसमें *विष्णु भक्ति* का कहीं नामोल्लेख भी नहीं है। सामान्यतया लोग *वेदान्त-सूत्र* के इस निर्विशेष वर्णन अर्थात् *शारीरक भाष्य* को बहुत पसन्द करते हैं, किन्तु जिन-जिन भाष्यों में भगवान् विष्णु की भक्ति का अभाव है, उन्हें उद्देश्य की दृष्टि से मूल *वेदान्त-सूत्र* से अलग समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य महाप्रभु ने निश्चित रूप से इस बात की पुष्टि की कि विष्णुभक्ति के आधार पर वैष्णव आचार्यों द्वारा लिखे गये भाष्य ही *वेदान्त-सूत्र* की वास्तविक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, शंकराचार्य का शारीरक भाष्य नहीं।

ভ্রম, প্রমাদ, বিপ্রলিপ্সা, করণাপাটব ।
ঈশ্বরের বাক্যে নাহি দোষ এই সব ॥ ১০৭॥

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव ।
ईश्वरेर वाक्ये नाहि दोष एइ सब ॥ १०७॥

भ्रम—त्रुटि; **प्रमाद**—मोह; **विप्रलिप्सा**—धोखा देने के तरीके; **करण-अपाटव**—भौतिक इन्द्रियों की अपूर्णता; **ईश्वरेर**—भगवान् के; **वाक्ये**—भाषण में; **नाहि**—नहीं है; **दोष**—दोष; **एइ सब**—ये सब।

अनुवाद

"भगवान् के शब्दों में त्रुटि, मोह, प्रवंचना (ठगी) तथा इन्द्रिय-अपूर्णता जैसे भौतिक दोष नहीं पाये जाते।

तात्पर्य

त्रुटि का अर्थ है किसी वस्तु को यथार्थ रूप में स्वीकार करने के बदले भिन्न रूप में स्वीकार करना अथवा मिथ्या ज्ञान को स्वीकार करना। उदाहरणार्थ, अँधेरे में पड़ी रस्सी को देखकर उसे साँप समझा जा सकता है या चमकती सीपी को सोना समझा जा सकता है। ये त्रुटियाँ हैं। इसी प्रकार सुनने में असावधानी के कारण उत्पन्न गलत ज्ञान को मोह कहते है। ऐसा त्रुटिपूर्ण ज्ञान दूसरों को प्रदान करने को छल या ठगी कहते हैं। भौतिकतावादी वैज्ञानिक तथा दार्शनिक सामन्यतया "हो सकता है" अथवा "शायद" जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि उन्हें पूर्ण तथ्यों का वास्तविक ज्ञान नहीं होता। अतएव उनके

द्वारा दूसरों को शिक्षा देना ठगी का उदाहरण है। भौतिकतावादी व्यक्ति का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। उदाहरणार्थ, यद्यपि हमारी आँखों में देखने की शक्ति है, किन्तु ये आँखें दूर की वस्तुओं को नहीं देख सकतीं, न ही अपने निकट स्थित पलकों को देख पाती हैं। हमारी अपूर्ण आँखों को सूर्य एक तश्तरी जैसा लगता है और जिसे पीलिया रोग होता है, उसे सब कुछ पीला ही पीला दिखता है। अतएव ऐसी अपूर्ण आँखों द्वारा अर्जित ज्ञान पर हम विश्वास नहीं कर सकते। इसी तरह कान भी समान रूप से अपूर्ण हैं। हम बहुत दूर होने वाली ध्वनि को तब तक नहीं सुन सकते, जब तक हम कान में टेलीफोन नहीं लगा लेते। इसी प्रकार सारी इन्द्रियों का विश्लेषण करने पर हम समझ सकते हैं कि वे सभी अपूर्ण हैं। अतएव इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना व्यर्थ है। वैदिक विधि है अधिकारी विद्वान (महाजन) से सुनना। भगवान् *भगवद्गीता* (४.२) में कहते हैं—*एवं परम्परा प्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*—"यह परम विज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त किया गया और राजर्षियों ने इसे यथारूप समझा।" हमें टेलीफोन से नहीं, अपितु एक प्रामाणिक गुरू से सुनना चाहिए, क्योंकि उसी के पास वास्तविक ज्ञान रहता है।

উপনিষদ্সহিত সূত্র কহে যেই তত্ত্ব ।
মুখ্য-বৃত্ত্যে সেই অর্থ পরম মহত্ত্ব ॥১০৮॥

उपनिषत्सहित सूत्र कहे येइ तत्त्व ।
मुख्य-वृत्त्ये सेइ अर्थ परम महत्त्व ॥१०८॥

उपनिषत्—उपनिषद्; **सहित**—सहित; **सूत्र**—*वेदान्त-सूत्र*; **कहे**—कहता है; **येइ**—विषय; **तत्त्व**—तत्त्व में; **मुख्य-वृत्त्ये**—मुख्य विचार से; **सेइ**—वही सत्य; **अर्थ**—अर्थ; **परम**—परम; **महत्त्व**—महत्त्व, महिमा।

अनुवाद

"परम सत्य का वर्णन तो उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र में किया गया है, किन्तु इनके श्लोकों को उनके यथार्थ रूप में समझना आवश्यक है। समझने की यही परम महिमा है।

तात्पर्य

शंकराचार्य के समय से यह एक चलन बन चुका है कि शास्त्रों से सम्बन्धित हर वस्तु की व्याख्या अप्रत्यक्ष रूप से की जाए। विद्वान अपने-अपने ढंग से व्याख्या करने में गर्व का अनुभव करते हैं और घोषित करते हैं कि जो जिस रूप में चाहे वैदिक शास्त्रों को समझ सकता है। यह "जैसा चाहो" की विधि मूर्खता है और इससे वैदिक संस्कृति में उत्पात उठ खड़ा हुआ है। वैज्ञानिक ज्ञान को कोई मनमाने ढंग से स्वीकार नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, गणितीय विज्ञान में दो और दो मिलाकर चार ही होता है, इसे न कोई तीन बना सकता है, न पाँच। यद्यपि वास्तविक ज्ञान को बदल पाना सम्भव नहीं है, फिर भी वैदिक ज्ञान को मनमाने ढंग से समझने का चलन चल पड़ा है। इसीलिए हमने *भगवद्गीता यथारूप* प्रस्तुत की है। हमने मनगढ़ंत अर्थ नहीं निकाले हैं। कभी-कभी कुछ टीकाकार कहते हैं कि *भगवद्गीता* के पहले श्लोक में कुरुक्षेत्र शब्द शरीर के लिए आया है, किन्तु हम इसे नहीं मानते। हम समझते हैं कि कुरुक्षेत्र एक ऐसा स्थान है, जो आज भी विद्यमान है और वैदिक कथनानुसार यह *धर्मक्षेत्र* अर्थात् तीर्थस्थल है। आज भी लोग वहाँ वैदिक यज्ञ करने जाते हैं। किन्तु मूर्ख टीकाकार कहते हैं कि कुरुक्षेत्र का अर्थ शरीर है और पाँचों पाण्डव पाँच इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार वे अर्थ को विकृत करते हैं और लोगों को पथभ्रष्ट करते हैं। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु पुष्टि करते हैं कि उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र समेत अन्य वैदिक साहित्य को, चाहे वह श्रुति हो या स्मृति या न्याय, उनके मूल कथनों के अनुसार समझना चाहिए। वैदिक साहित्य के सीधे अर्थ का वर्णन करना महिमाशाली है, किन्तु उसका वर्णन अपने खुद के ढंग से अपूर्ण इन्द्रियों तथा ज्ञान के आधार पर करना भयावह त्रुटि है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वेदों की ऐसी व्याख्या के प्रयास की निन्दा की है।

उपनिषदों में से निम्नलिखित ग्यारह उपनिषद् सर्वोपरि माने जाते हैं—*ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक* तथा *श्वेताश्वतर*। किन्तु *मुक्तिकोपनिषद* के श्लोक ३०-३९ में १०८ उपनिषदों का वर्णन है। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) *ईशोपनिषद्*, (२) *केनोपनिषद्*, (३) *कठोपनिषद्*, (४) *प्रश्नोपनिषद्*, (५) *मुण्डकोपनिषद्*,

(६) *माण्डूक्योपनिषद्*, (७) *तैत्तिरीयोपनिषद्*, (८) *ऐतरेयोपनिषद्*, (९) *छान्दोग्योपनिषद्*, (१०) *बृहदारण्यकोपनिषद्*, (११) *ब्रह्मोपनिषद्*, (१२) *कैवल्योपनिषद्*, (१३) *जाबालोपनिषद्*, (१४) *श्वेताश्वतरोपनिषद्*, (१५) *हंसोपनिषद्*, (१६) *आरुणेयोपनिषद्*, (१७) *गर्भोपनिषद्*, (१८) *नारायणोपनिषद्*, (१९) *परमहंसोपनिषद्*, (२०) *अमृतबिन्दूपनिषद्*, (२१) *नाद-बिन्दूपनिषद्*, (२२) *शिरोपनिषद्*, (२३) *अथर्व-शिखोपनिषद्*, (२४) *मैत्रायण्युपनिषद्*, (२५) *कौशीतक्युपनिषद्*, (२६) *बृहज्जाबालोपनिषद्*, (२७) *नृसिंहतापनीयोपनिषद्*, (२८) *कालाग्निरुद्रोपनिषद्*, (२९) *मैत्रेय्युपनिषद्*, (३०) *सुबालोपनिषद्*, (३१) *क्षुरिकोपनिषद्*, (३२) *मन्त्रिकोपनिषद्*, (३३) *सर्वसारोपनिषद्*, (३४) *निरालम्बोपनिषद्*, (३५) *शुकरहस्योपनिषद्*, (३६) *वज्रसूचिकोपनिषद्*, (३७) *तेजोबिन्दूपनिषद्*, (३८) *नाद-बिन्दूपनिषद्*, (३९) *ध्यानबिन्दूपनिषद्*, (४०) *ब्रह्म-विद्योपनिषद्*, (४१) *योग-तत्त्वोपनिषद्*, (४२) *आत्मबोधोपनिषद्*, (४३) *नारद-परिव्राजकोपनिषद्*, (४४) *त्रिशिख्युपनिषद्*, (४५) *सीतोपनिषद्*, (४६) *योग-चूडामणि उपनिषद्*, (४७) *निर्वाणोपनिषद्*, (४८) *मण्डल-ब्राह्मणोपनिषद्*, (४९) *दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्*, (५०) *शरभोपनिषद्*, (५१) *स्कन्दोपनिषद्*, (५२) *महानारायणोपनिषद्*, (५३) *अद्वयतारकोपनिषद्*, (५४) *रामरहस्योपनिषद्*, (५५) *रामतापण्युपनिषद्*, (५६) *वासुदेवोपनिषद्*, (५७) *मुद्गलोपनिषद्*, (५८) *शाण्डिल्योपनिषद्*, (५९) *पैंगलोपनिषद्*, (६०) *भिक्षूपनिषद्*, (६१) *महदुपनिषद्*, (६२) *शारीरकोपनिषद्*, (६३) *योगशिखोपनिषद्*, (६४) *तुरीयातीतोपनिषद्*, (६५) *संन्यासोपनिषद्*, (६६) *परमहंस परिव्राजकोपनिषद्*, (६७) *मालिकोपनिषद्*, (६८) *अव्यक्तोपनिषद्*, (६९) *एकाक्षरोपनिषद्*, (७०) *पूर्णोपनिषद्*, (७१) *सूर्योपनिषद्*, (७२) *अक्ष्युपनिषद्*, (७३) *अध्यात्मोपनिषद्*, (७४) *कुण्डिकोपनिषद्*, (७५) *सावित्र्युपनिषद्*, (७६) *आत्मोपनिषद्*, (७७) *पाशुपतोपनिषद्*, (७८) *परम् ब्रह्मोपनिषद्*, (७९) *अवधूतोपनिषद्*, (८०) *त्रिपुरातपनोपनिषद्*, (८१) *देव्युपनिषद्*, (८२) *त्रिपुरोपनिषद्*, (८३) *कठरुद्रोपनिषद्*, (८४) *भावनोपनिषद्*, (८५) *हृदयोपनिषद्*,

(८६) *योगकुण्डलिन्युपनिषद्*, (८७) *भस्मोपनिषद्*, (८८) *रुद्राक्षोपनिषद्*, (८९) *गणोपनिषद्*, (९०) *दर्शनोपनिषद्*, (९१) *तारसारोपनिषद्*, (९२) *महावाक्योपनिषद्*, (९३) *पञ्चब्रह्मोपनिषद्*, (९४) *प्राणाग्निहोत्रोपनिषद्*, (९५) *गोपाल तापन्युपनिषद्*, (९६) *कृष्णोपनिषद्*, (९७) *याज्ञवल्क्योपनिषद्*, (९८) *वराहोपनिषद्*, (९९) *शात्यायनि उपनिषद्*, (१००) *हयग्रीवोपनिषद्*, (१०१) *दत्तात्रेयोपनिषद्*, (१०२) *गारुडोपनिषद्*, (१०३) *कलि उपनिषद्*, (१०४) *जाबाल्युपनिषद्*, (१०५) *सौभाग्योपनिषद्*, (१०६) *सरस्वती रहस्योपनिषद्*, (१०७) *बह्वृचोपनिषद्*, (१०८) *मुक्तिकोपनिषद्*। इस प्रकार सामान्यतया १०८ उपनिषद् माने जाते हैं, जिनमें से ग्यारह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका वर्णन पहले हो चुका है।

गौण-वृत्त्ये येबा भाष्य करिल आचार्य ।
ताहार श्रवणे नाश हय सर्व कार्य ॥ १०९ ॥

गौण-वृत्त्ये येबा भाष्य करिल आचार्य्य ।
ताहार श्रवणे नाश हय सर्व कार्य्य ॥ १०९ ॥

गौण-वृत्त्ये—अप्रत्यक्ष अर्थ से; **येबा**—जो; **भाष्य**—टीका; **करिल**—तैयार की; **आचार्य्य**—शंकराचार्य; **ताहार**—इसके; **श्रवणे**—श्रवण में; **नाश**—नाश; **हय**—होता है; **सर्व**—सब; **कार्य्य**—कार्य।

अनुवाद

"श्रीपाद शंकराचार्य ने समस्त वैदिक साहित्य की व्याख्या अप्रत्यक्ष अर्थों में की है। जो ऐसी व्याख्या सुन लेता है, वह विनष्ट हो जाता है।

तँाहार नाहिक दोष, ईश्वर-आज्ञा पाञा ।
गौणार्थ करिल मुख्य अर्थ आच्छादिया ॥ ११० ॥

तँाहार नाहिक दोष, ईश्वर-आज्ञा पाञा ।
गौणार्थ करिल मुख्य अर्थ आच्छादिया ॥ ११० ॥

तँाहार—श्री शंकराचार्य का; **नाहिक**—नहीं है; **दोष**—दोष; **ईश्वर**—ईश्वर; **आज्ञा**—आज्ञा; **पाञा**—पाकर; **गौण-अर्थ**—अप्रत्यक्ष अर्थ; **करिल**—करते हैं; **मुख्य**—मुख्य; **अर्थ**—अर्थ; **आच्छादिया**—ढककर, आच्छादित करके।

अनुवाद

"इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है, क्योंकि उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशानुसार ही वेदों के वास्तविक उद्देश्य को आच्छादित किया।

तात्पर्य

वैदिक साहित्य को वास्तविक ज्ञान का स्रोत माना जाता है, किन्तु यदि व्यक्ति उसे यथार्थ रूप में ग्रहण नहीं करेगा, तो वह पथभ्रष्ट हो जायेगा । उदाहरणार्थ, *भगवद्गीता* एक महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रंथ है, जिसकी शिक्षा अनेकानेक वर्षों से दी जाती रही है। किन्तु इसकी टीका कई धूर्त टीकाकारों ने मनमाने ढंग से की है, जिसके फलस्वरूप लोगों को इसका लाभ नहीं मिला और किसी को यह नहीं पता लगा कि कृष्णभावनामृत ही अन्तिम लक्ष्य है। किन्तु अब *भगवद्गीता* के उद्देश्य को यथारूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, अतएव चार-पाँच वर्षों के थोड़े समय में ही संसार-भर के हजारों लोग कृष्णभावनाभावित हो चुके हैं। वैदिक साहित्य की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष व्याख्या में यही अन्तर है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*मुख्य-वृत्त्ये सेइ अर्थ परम महत्त्व*—"वैदिक साहित्य के प्रत्यक्ष अर्थ की, बिना गलत टीका के, शिक्षा देना गौरवपूर्ण है।" दुर्भाग्यवश, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश से श्री शंकराचार्य ने नास्तिकों को धोखा देने के लिए, उन्हें आस्तिक बनाने के लिए नास्तिकता तथा आस्तिकता के बीच का मार्ग निकाला और ऐसा करने के लिए उन्होंने वैदिक ज्ञान की प्रत्यक्ष विधि को त्यागकर अप्रत्यक्ष विधि अपनाई। इसी उद्देश्य से उन्होंने *वेदान्त-सूत्र* पर अपना *शारीरक भाष्य* लिखा।

इसलिए *शारीरक भाष्य* को अधिक महत्त्व देना उचित नहीं है। वेदान्त दर्शन को समझने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन करे, जिसका शुभारम्भ—*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्* से होता है और जिसका अर्थ है, "मैं वसुदेव के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जो सर्वव्यापी परम पुरुष भगवान् हैं। मैं दिव्य सत्य रूपी उन भगवान् का ध्यान करता हूँ, जो समस्त कारणों के कारण

हैं, जिनसे सारे ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, जिनमें वे स्थित रहते हैं और जिनके द्वारा वे पुनः विनष्ट हो जाते हैं। मैं उन शाश्वत तेजस्वी भगवान् का ध्यान करता हूँ, जो समस्त प्राकट्य के बारे में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जानते हुए भी पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। (भागवत १.१.१) *श्रीमद्भागवत* ही *वेदान्त-सूत्र* का वास्तविक भाष्य है। दुर्भाग्यवश यदि कोई शंकराचार्य कृत *शारीरक भाष्य* के प्रति आकृष्ट होता है, तो समझ लीजिये कि उसका आध्यात्मिक जीवन विनष्ट हो गया।

कोई तर्क कर सकता है कि जब शंकराचार्य शिवजी के अवतार हैं, तो फिर उन्होंने लोगों को इस तरह क्यों ठगा? इसका उत्तर यह है कि उन्होंने अपने स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश से ऐसा किया। इसकी पुष्टि स्वयं शिवजी ने *पद्म पुराण* में की है :

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव कल्पितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥
ब्रह्मणश्चापरं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया।
सर्वस्वं जगतोऽप्यस्य मोहनार्थं कलौ युगे॥
वेदान्ते तु महाशास्त्रे मायावादमवैदिकम्।
मयैववक्ष्यते देवि जगतां नाशकारणात्॥

शिवजी ने अपनी पत्नी पार्वती को बतलाया, "मायावाद दर्शन अपवित्र (*असच्छास्त्र*) है। यह प्रच्छन्न बौद्धवाद है। हे पार्वती, मैं कलियुग में ब्राह्मण रूप में इस कल्पित मायावाद दर्शन का उपदेश देता हूँ। नास्तिकों को ठगने के लिए मैं बतलाता हूँ कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रूप और गुणों से रहित होते हैं। इसी तरह वेदान्त की व्याख्या करते समय मैं भगवान् के साकार रूप का निषेध करते हुए सारी जनता को नास्तिकता की ओर पथभ्रष्ट करने के लिए उसी मायावाद का वर्णन करता हूँ।" *शिव पुराण* में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने शिवजी से कहा :

द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु।
स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मद्विमुखान् कुरु॥

"कलियुग में वेदों के कल्पित अर्थों की व्याख्या करके लोगों को मोहित और पथभ्रष्ट करो।" ये पुराणों के वर्णन हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि *मुख्यवृत्तिः* (प्रत्यक्ष अर्थ) *अभिधावृत्ति* है अर्थात् जिसके अर्थ को लोग शब्दकोश से तुरन्त समझ लेते हैं, किन्तु *गौणवृत्ति* (अप्रत्यक्ष अर्थ) वह अर्थ है, जिसकी लोग शब्दकोश के बिना ही कल्पना कर लेते हैं। उदाहरणार्थ, एक राजनीतिज्ञ ने कहा है कि कुरुक्षेत्र शरीर का द्योतक है, किन्तु शब्दकोश में ऐसी परिभाषा कहीं भी नहीं मिलती। इसलिए यह काल्पनिक अर्थ *गौणवृत्ति* है, जबकि शब्दकोशों में पाया जाने वाला प्रत्यक्ष अर्थ *मुख्यवृत्ति* या *अभिधावृत्ति* है। यही दोनों में अन्तर है। श्री चैतन्य महाप्रभु का कहना है कि मनुष्य वैदिक साहित्य को *अभिधावृत्ति* से समझते हैं और *गौणवृत्ति* से उसका परित्याग करते हैं। कभी-कभी आवश्यकतानुसार वैदिक साहित्य का वर्णन *लक्षणावृत्ति* या *गौणवृत्ति* के सन्दर्भ में किया जाता है, किन्तु ऐसी व्याख्याओं को स्थायी सत्य नहीं मानना चाहिए।

उपनिषदों तथा *वेदान्त-सूत्र* में व्याख्याओं का उद्देश्य परम सत्य के साकार रूप को दार्शनिक विधि से प्रतिष्ठित करना है। किन्तु निर्विशेषवादी अपने दर्शन को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से *लक्षणावृत्ति* के अनुसार इन व्याख्याओं का स्वीकार करते हैं। इस तरह वे *तत्त्ववादी* अर्थात् परम सत्य की खोज में न रहकर, *मायावादी* बन जाते हैं अर्थात् भौतिक शक्ति द्वारा मोहित हो जाते हैं। जब वैष्णव सम्प्रदाय के चार आचार्यों में से एक श्री विष्णुस्वामी ने शुद्धाद्वैतवाद के विषय में अपना भाष्य प्रस्तुत किया, तो मायावादियों ने इस दर्शन का तुरन्त लाभ उठाया और अपने *अद्वैतवाद* या *केवलाद्वैतवाद* को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इस *केवलाद्वैतवाद* को पूर्णतया परास्त करने के लिए ही श्री रामानुजाचार्य ने *विशिष्टाद्वैतवाद* नामक अपना दर्शन और श्री मध्वाचार्य ने अपना *तत्त्ववाद* दर्शन प्रस्तुत किया। ये दोनों ही मायावादियों के लिए अवरोधक हैं, क्योंकि ये उनके दर्शन को पूर्णतया परास्त करने वाले हैं। वैदिक दर्शन के छात्र अच्छी तरह जानते हैं कि श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद तथा श्री मध्वाचार्य के तत्त्ववाद, निर्विशेष मायावाद दर्शन का कितना प्रबल विरोध करते हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने वेदान्त दर्शन के प्रत्यक्ष अर्थ को स्वीकार

किया और इस तरह मायावाद दर्शन को तुरन्त परास्त कर दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत व्यक्त किया कि जो भी *शारीरक भाष्य* के सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है। इसकी पुष्टि *पद्म पुराण* में की गई है, जहाँ शिवजी पार्वती से कहते हैं :

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि॥
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयाल्लोक गर्हितम्।
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वम् अत्र च प्रतिपाद्यते॥
सर्वकर्मपरिभ्रंशान् नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते।
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते॥

"प्रिये, मैंने मायावाद दर्शन के माध्यम से जिस तरह अज्ञान फैलाया है, उसकी व्याख्या सुनो। मात्र इसे सुनकर बड़े से बड़ा विद्वान भी पतित हो जायेगा। यह दर्शन निश्चय ही जनता के लिए अत्यन्त अशुभ है और इसमें मैंने वेदों के वास्तविक अर्थ की गलत व्याख्या की है और संस्तुति की है कि कर्म से मुक्ति पाने के लिए सारे कर्मों का त्याग कर दो। मैंने इस मायावाद दर्शन में जीवात्मा तथा परमात्मा को एक बतलाया है।" श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायियों ने मायावाद दर्शन की किस तरह भर्त्सना की है, इसका वर्णन *श्रीचैतन्य-चरितामृत, अन्त्यलीला* (अध्याय २ श्लोक ९४-९९) में मिलता है, जहाँ स्वरूप दामोदर गोस्वामी कहते हैं कि जो कोई मायावाद दर्शन समझने को उत्सुक हो, उसे भ्रान्त-चित्त माना जाना चाहिए। यह उस व्यक्ति पर विशेष रूप से लागू होता है, जो *शारीरक भाष्य* पढ़कर अपने आपको ईश्वर से अभिन्न मानता है। मायावादी दार्शनिकों ने अपने तर्कों को ऐसी आलंकारिक आकर्षक भाषा में प्रस्तुत किया है कि मायावादी दर्शन सुनकर एक महाभागवत का मन भी कभी-कभी बदल जाता है। एक सच्चा वैष्णव कभी ऐसा दर्शन स्वीकार नहीं कर सकता है, जो ईश्वर तथा जीव को एक मानता हो।

'ब्रह्म'-शब्दे मुख्य अर्थे कहे—'भगवान्'।
चिदैश्वर्य-परिपूर्ण, अनूर्ध्व-समान ॥१११॥

'ब्रह्म'-शब्दे मुख्य अर्थे कहे—'भगवान्' ।
चिदैश्वर्य-परिपूर्ण, अनूर्ध्व-समान ॥ १११ ॥

ब्रह्म—परम सत्य; **शब्दे**—इस शब्द से; **मुख्य**—मुख्य; **अर्थे**—अर्थ; **कहे**—कहते हैं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **चित्-ऐश्वर्य**—आध्यात्मिक ऐश्वर्य; **परिपूर्ण**—परिपूर्ण; **अनूर्ध्व**—किसी द्वारा भी न पराजित; **समान**—किसी के भी बराबर नहीं ।

अनुवाद

"प्रत्यक्ष ज्ञान के अनुसार, परम सत्य ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जिनमें सारे आध्यात्मिक ऐश्वर्य रहते हैं। कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बड़ा है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के इस कथन की पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) में हुई है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

"विद्वान अध्यात्मवादी, जो इस परम सत्य को जानते हैं, इस अद्वय तत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् कहते हैं।" परम सत्य अन्ततः भगवान् हैं, जो आंशिक रूप में परमात्मा और अस्पष्ट रूप में निर्विशेष ब्रह्म समझे जाते हैं। भगवान् अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर सभी प्रकार से ऐश्वर्यवान हैं और कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.७) में भी हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—"हे धनंजय (अर्जुन)! मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है।" ऐसे अन्य अनेक श्लोक हैं, जो सिद्ध करते हैं कि परम सत्य को अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के रूप में समझना होगा।

তাঁহার বিভূতি, দেহ,—সব চিদাকার ।
চিদ্বিভূতি আচ্ছাদি' তাঁরে কহে 'নিরাকার' ॥ ১১২ ॥

তাঁহার বিভূতি, দেহ,—সব চিদাকার ।
চিদ্বিভূতি আচ্ছাদি' তাঁরে কহে 'নিরাকার' ॥ ১১২ ॥

ताँहार—उनका (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का); **विभूति**—आध्यात्मिक शक्ति; **देह**—शरीर; **सब**—सब; **चित्-आकार**—आध्यात्मिक रूप; **चित्-विभूति**—आध्यात्मिक ऐश्वर्य; **आच्छादि'**—ढककर, आच्छादित करके; **ताँरे**—उनको; **कहे**—कहता है; **निराकार**—बिना रूप के, निराकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सम्बन्धी हर वस्तु आध्यात्मिक होती है, जिसमें उनका शरीर, ऐश्वर्य तथा साज-सामग्री सम्मिलित हैं। किन्तु मायावाद दर्शन उनके आध्यात्मिक ऐश्वर्य को छिपाकर निर्विशेषवाद का समर्थन करता है।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता में कहा गया है—*ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः*—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक है जो सनातन है एवं पूर्ण ज्ञान तथा आनन्द से युक्त है।" इस भौतिक जगत् में हर एक का शरीर इसके विपरीत—नश्वर, अज्ञानता से भरा तथा दुःखमय होता है। अतएव जब कभी भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् *निराकार* कहे जाते हैं, तब इससे यही सूचित होता है कि उनका शरीर हमारे जैसा भौतिक नहीं है।

मायावादी दार्शनिक यह नहीं जानते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किस प्रकार रूपविहीन (निराकार) हैं। भगवान् का हमारे जैसा रूप नहीं है, अपितु उनका रूप आध्यात्मिक होता है। इसे न जानते हुए मायावादी दार्शनिक केवल यही एकपक्षीय तर्क देते हैं कि भगवान् या ब्रह्म निराकार है। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर वैदिक साहित्य से अनेक उद्धरण देते हैं। यदि कोई इन वैदिक कथनों के वास्तविक या प्रत्यक्ष अर्थ को स्वीकार करता है, तो वह समझ सकता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शरीर आध्यात्मिक (*सच्चिदानन्द विग्रहः*) होता है।

बृहदारण्यक उपनिषद (५.१.१) में कहा गया है—*पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।* इससे सूचित होता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शरीर आध्यात्मिक होता है, क्योंकि भले ही वे अनेक रूपों में विस्तार करते हैं, किन्तु वे वैसे ही बने रहते हैं। *भगवद्गीता* (१०.८) में भगवान् कहते हैं—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते—"मैं सबका उद्गम हूँ। हर वस्तु मुझ से उत्पन्न है।" मायावादी दार्शनिक भौतिक दृष्टिकोण से सोचते हैं कि यदि परम सत्य अपना विस्तार हर वस्तु में करने लगें, तो उनका मूल रूप समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार वे सोचते हैं कि विराट् रूप के अतिरिक्त भगवान् का कोई अन्य रूप हो ही नहीं सकता। किन्तु *बृहदारण्यक उपनिषद्* के मन्त्र—*पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते*—से इसकी पुष्टि होती है—"यद्यपि वे अनेक प्रकार से विस्तार करते हैं, फिर भी वे अपने मूल व्यक्तित्व को बनाये रखते हैं। उनका मूल आध्यात्मिक शरीर उसी प्रकार बना रहता है।" इसी प्रकार कहीं और कहा गया है—*विचित्र शक्तिः पुरुषः पुराणः*—"आदि पुरुष, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विविध शक्तियाँ हैं।" और *श्वेताश्वतर उपनिषद* में कहा गया है—*स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयं धर्मावहं पापनुदं भगेशम्*—"वे भौतिक सृष्टि के उद्गम हैं और उन्हीं के कारण हर वस्तु बदलती है। वे धर्म के रक्षक हैं और समस्त पापकर्मों के विनाशक हैं। वे सारे ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.६) *वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्*—"अब मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को महान् से महानतम समझता हूँ। वे सूर्य के समान तेजस्वी हैं और इस भौतिक जगत् से परे हैं।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ३.८) *पतिं पतीनां परमं परस्तात्*—"वे सारे स्वामियों के स्वामी हैं, सभी श्रेष्ठों में श्रेष्ठ हैं।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.७) *महान् प्रभुर्वै पुरुषः*—"वे सर्वोपरि स्वामी तथा परम पुरुष हैं।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ३.१२) *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—"हम उनके ऐश्वर्यों को अनेक प्रकारों से समझ सकते हैं।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८) इसी प्रकार ऋग्वेद में कहा गया है—*तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः*—"विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं और जो सचमुच विद्वान हैं, वे केवल उनके ही चरणकमलों का चिन्तन करते हैं।" *प्रश्न उपनिषद* (६.३) में कहा गया है—*स ईक्षांचक्रे*—"उन्होंने भौतिक जगत् पर दृष्टिपात किया।" *ऐतरेय उपनिषद* (१.१.१-२) में कहा गया है—*स ऐक्षत*—"उन्होंने भौतिक सृष्टि पर दृष्टिपात किया।" तथा *स इमाल्लोकान् असृजत*—"उन्होंने इस सम्पूर्ण भौतिक जगत् की सृष्टि की।"

इस प्रकार उपनिषदों तथा वेदों से अनेक श्लोकों का प्रमाण दिया जा

सकता है, जो यह सिद्ध करते हैं कि परम भगवान् निराकार निर्विशेष नहीं हैं। *कठ उपनिषद* (२.२.१३) में यह भी कहा गया है—*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्*—"वे परम शाश्वत चेतन पुरुष हैं, जो अन्य सारे जीवों का पालन करते हैं।" इन सारे वैदिक सन्दर्भों से यह जाना जा सकता है कि परम सत्य एक पुरुष हैं और न तो उसके कोई तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। यद्यपि ऐसे अनेक मूर्ख मायावादी दार्शनिक हैं, जो अपने आपको कृष्ण से भी बड़ा मानते हैं, किन्तु कृष्ण *असमौर्ध्व* हैं—न तो कोई उनके तुल्य है, न उनसे बड़ा है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् (३.१९) का वाक्य है, *अपाणिपादो जवनो ग्रहीता*—यह श्लोक बताता है कि परम सत्य के न तो हाथ हैं न पाँव। यद्यपि यह निराकार वर्णन है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भगवान् का कोई रूप नहीं है। उनका एक आध्यात्मिक रूप है, जो भौतिक रूपों से भिन्न होता है। इस श्लोक में चैतन्य महाप्रभु इस अन्तर को स्पष्ट कर देते हैं।

चिदानन्द—तेँहो, ताँर स्थान, परिवार ।
ताँरे कहे—प्राकृत-सत्त्वेर विकार ॥ ११३॥

चिदानन्दे—तेंहो, ताँर स्थान, परिवार ।
ताँरे कहे—प्राकृत-सत्त्वेर विकार ॥ ११३॥

चित्-आनन्द—आध्यात्मिक आनन्द; **तेंहो**—वे हैं; **ताँर**—उनका; **स्थान**—स्थान; **परिवार**—परिवार; **ताँरे**—उनको; **कहे**—कोई कहता है; **प्राकृत**—प्राकृत, भौतिक; **सत्त्वेर**—सात्त्विक; **विकार**—विकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त हैं। अतएव उनका शरीर, नाम, यश तथा परिकर—सभी आध्यात्मिक हैं। मायावादी दार्शनिक अज्ञानतावश कहते हैं कि ये सब केवल भौतिक सत्त्वगुण के रूपान्तर मात्र हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता के सातवें अध्याय में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अपनी शक्तियों

के दो स्पष्ट विभाग बतलाये हैं—*प्राकृत* तथा *अप्राकृत* या *परा-प्रकृति* तथा *अपरा-प्रकृति। विष्णु पुराण* में भी यही अन्तर बताया गया है। मायावादी दार्शनिक इन दो *प्रकृतियों*—भौतिक एवं आध्यात्मिक—को नहीं समझ पाते, किन्तु जो वास्तव में बुद्धिमान है, वह उन्हें समझ सकता है। भौतिक प्रकृति में अनेक प्रकार की विविधता तथा कार्यकलापों को समझकर भी ये मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक जगत् के आध्यात्मिक भेदों को क्यों नकारते हैं? *भागवत* (१०.२.३२) का कथन है :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावाद् अविशुद्धबुद्धयः।

जो अपने आपको मुक्त समझते हैं, किन्तु जिन्हें अभी तक आध्यात्मिक जगत् की जानकारी नहीं है, उनकी बुद्धि स्पष्ट नहीं है। इस श्लोक में *अविशुद्धबुद्धयः* शब्द मलिन बुद्धि को सूचित करने वाला है। ये मायावादी दार्शनिक मलिन बुद्धि या अल्प ज्ञान के कारण भौतिक तथा आध्यात्मिक विविधताओं के बीच अन्तर नहीं समझ सकते; अतएव वे आध्यात्मिक विविधता के विषय में सोच नहीं पाते, क्योंकि वे यह मानकर चलते हैं कि सारी विविधताएँ भौतिक ही होती हैं।

अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु इस श्लोक में बतलाते हैं कि परम सत्य या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक होता है, जो भौतिक शरीरों से भिन्न होता है और इस तरह उनके नाम, धाम, परिकर तथा गुण—सारे के सारे आध्यात्मिक होते हैं। भौतिक प्रकृति के सत्त्वगुण को आध्यात्मिक विविधता से कुछ भी लेना-देना नहीं होता। किन्तु मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक विविधता को ठीक से समझ ही नहीं पाते; अतएव वे भौतिक जगत् के निषेध को ही आध्यात्मिक जगत् मानते हैं। आध्यात्मिक जगत् में सतो, रजो तथा तमोगुण अपना काम नहीं कर सकते, इसलिए उसे *निर्गुण* कहा गया है, जिसका निर्देश *भगवद्गीता* में स्पष्ट स्पष्ट रूप से किया गया है (*त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन*)। भौतिक जगत् भौतिक प्रकृति के तीन गुणों की अभिव्यक्ति है; किन्तु आध्यात्मिक जगत् में पहुँचने के लिए व्यक्ति को इन गुणों से मुक्त होना पड़ता है, क्योंकि वहाँ इनका प्रभाव पूर्णतया

अनुपस्थित रहता है। अगले श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु शिवजी को मायावाद दर्शन से विलग कर देंगे।

তাঁর দোষ নাহি, তেঁহো আজ্ঞা-কারী দাস ।
আর যেই শুনে তার হয় সর্ব-নাশ ॥১১৪॥

তাঁর দোষ নাহি, তেঁহো আজ্ঞা-কারী দাস ।
আর যেই শুনে তার হয় সর্ব-নাশ ॥ ১১৪॥

তাঁর—उनका, शिवजी का; **দোষ**—दोष; **নাহি**—नहीं है; **তেঁহো**—वे; **আজ্ঞা-কারী**—आज्ञाकारी; **দাস**—दास; **আর**—अन्य; **যেই**—कोई; **শুনে**—सुनता है (मायावादी दर्शन); **তার**—उसका; **হয়**—हो जाता है; **সর্ব-নাশ**—सर्वनाश।

अनुवाद

"शिवजी के अवतार श्री शंकराचार्य निर्दोष हैं, क्योंकि वे भगवान् के आज्ञाकारी दास होने के कारण उनके आदेश का पालन मात्र कर रहे हैं। लेकिन जो लोग उनके मायावादी दर्शन का पालन करते हैं, उनका विनाश अवश्यम्भावी है। उनकी सारी आध्यात्मिक प्रगति विनष्ट हो जायेगी।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक व्याकरण के इन्द्रजाल से अपना वेदान्त ज्ञान प्रदर्शित करने में बड़े गर्व का अनुभव करते हैं, किन्तु *भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण प्रमाणित करते हैं कि ये *माययापहृतज्ञान* हैं—अर्थात् माया के कारण वास्तविक ज्ञान से विहीन हैं। माया दो प्रकार की शक्तियों से अपने दो कार्य सम्पन्न करती है—*प्रक्षेपात्मिका शक्ति* अर्थात् जीव को भवसागर में डालने की शक्ति से तथा *आवरणात्मिका शक्ति* अर्थात् जीव के ज्ञान को आच्छादित करने की शक्ति से। *आवरणात्मिका शक्ति* का कार्य *माययापहृतज्ञाना:* शब्द द्वारा *भगवद्गीता* में बतलाया गया है।

कृष्ण की दैवी माया इन मायावादी दार्शनिकों का ज्ञान क्यों हर लेती है, इसकी भी व्याख्या *भगवद्गीता* में *आसुरं भावमाश्रिता:* शब्दों द्वारा की गई है। *आसुरं भावमाश्रिता:* ऐसे व्यक्ति की ओर संकेत करते हैं, जो भगवान् के

अस्तित्व को नहीं मानते। मायावादी जो भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानते, वे दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं—वाराणसी के शंकरवादी तथा सारनाथ के बौद्ध। ये दोनों ही समुदाय मायावादी हैं और उनके नास्तिक दर्शन के कारण भगवान् कृष्ण उनका ज्ञान हर लेते हैं। इनमें से कोई भी समुदाय साकार ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। बौद्ध दार्शनिक खुले रूप से आत्मा तथा ईश्वर दोनों का निषेध करते हैं और यद्यपि शंकरवादी खुलकर ईश्वर का निषेध नहीं करते, किन्तु वे कहते हैं कि परम पूर्ण *निराकार* हैं। इस तरह बौद्ध तथा शंकरवादी दोनों ही *अविशुद्धबुद्धय:* हैं अर्थात् ज्ञान तथा बुद्धि में अपूर्ण तथा अशुद्ध हैं।

सबसे विख्यात मायावादी विद्वान सदानन्द योगीन्द्र ने *वेदान्त सार* नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उसने शंकराचार्य के दर्शन की व्याख्या की है और शंकर दर्शन के सभी अनुयायी उसके कथनों को बड़ा महत्त्व देते हैं। इस *वेदान्त सार* में सदानन्द योगीन्द्र ने ब्रह्म को ज्ञान से युक्त तथा द्वैतरहित सच्चिदानन्द कहा है और वे अज्ञान (*जड़*) को *सत्* तथा *असत्* से भिन्न ज्ञान मानते हैं। यह प्राय: अचिन्त्य है, किन्तु यह तीन भौतिक गुणों का प्रतिफल है। इस तरह वे शुद्ध ज्ञान के अतिरिक्त हर वस्तु को भौतिक मानते है। अज्ञान का केन्द्र कभी-कभी सर्वव्यापी माना जाता है, तो कभी व्यक्तिगत। इस तरह उनके मतानुसार सर्वव्यापी विष्णु तथा व्यष्टि जीव दोनों अज्ञान के उत्पाद होते हैं।

सरल भाषा में सदानन्द योगीन्द्र का यह मत है कि चूँकि हर वस्तु निराकार है, अतएव विष्णु तथा व्यष्टि आत्मा दोनों की धारणाएँ अज्ञान के उत्पाद हैं। वे यह भी बतलाते हैं कि वैष्णवों की *विशुद्ध सत्त्व* धारणा *प्रधान* (सृष्टि का मुख्य सिद्धान्त) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनकी मान्यता है कि जब सर्वव्यापी ज्ञान *विशुद्ध सत्त्व* जो सत्त्वगुण का रूपान्तर है, उसके द्वारा कलुषित हो जाता है, तभी भगवान् की धारणा उत्पन्न होती है, जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ परम शासक, परमात्मा, समस्त कारणों के कारण, परमेश्वर आदि हैं। सदानन्द योगीन्द्र के अनुसार ईश्वर सारे अज्ञान के आगार हैं, अतएव भले ही वे *सर्वज्ञ* कहे जायें, किन्तु जो सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है, वह ईश्वर

से बढ़कर है। अतएव उनका निष्कर्ष यह है कि ईश्वर भौतिक अज्ञान के रूपान्तर हैं और जीव अज्ञान से आच्छादित है। इस तरह वे सामूहिक तथा व्यक्तिगत अस्तित्व को अंधकारमय बतलाते हैं। मायावादी दार्शनिकों के अनुसार, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके नित्य दास रूप जीव की वैष्णव धारणा अज्ञान की अभिव्यक्ति है। किन्तु यदि हम *भगवद्गीता* में दिये गये भगवान् कृष्ण के निर्णय को मानें, तो मायावादी *माययापहृत ज्ञान* या समस्त ज्ञान से विहीन माने जा सकते हैं, क्योंकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानते या यह बलपूर्वक कहते हैं कि उनका अस्तित्व भौतिक धारणा *माया* से उत्पन्न है। ये असुरों के लक्षण हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से वार्तालाप के अवसर पर कहा है (*चैतन्य चरितामृत, मध्य* ६.१६९) :

जीवेर निस्तार लागि 'सूत्र कैल व्यास।
मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश।

व्यासदेव ने तो इस भौतिक जगत् से बद्धजीवों का उद्धार करने के लिए *वेदान्त-सूत्र* की रचना की, किन्तु शंकराचार्य ने मनमाने ढंग से *वेदान्त-सूत्र* को प्रस्तुत करके निश्चित रूप से मानव समाज को सबसे बड़ी हानि पहुँचाई है; क्योंकि जो भी उनके मायावादी दर्शन का अनुसरण करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है। *वेदान्त-सूत्र* में भक्ति का स्पष्ट संकेत दिया गया है, किन्तु मायावादी दार्शनिक परम पुरुष के आध्यात्मिक शरीर को स्वीकार करने से मना करते हैं और न यह मानते हैं कि जीव का परमेश्वर से पृथक् व्यक्तिगत अस्तित्व है। इस तरह उन्होंने विश्वभर में नास्तिकतावादी उत्पात मचा रखा है, क्योंकि ऐसा निष्कर्ष शुद्ध भक्ति की दिव्य प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। भगवान् की सत्ता का निषेध करते हुए परमेश्वर से एकाकार होने की कभी न पूरी होने वाली मायावादियों की इच्छा आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वाधिक विपदाग्रस्त भ्रान्त विवेचना है। जो भी इस दर्शन का अनुसरण करता है, उसका इस भौतिक जगत् में स्थायी रूप में रहना एक दुर्भाग्य-पूर्ण तथ्य बन जाता है। इसीलिए वे *अविशुद्धबुद्धयः* अर्थात् अशुद्ध ज्ञान वाले कहलाते हैं। उनका ज्ञान अशुद्ध होने के कारण उनकी सारी तपस्याएँ असफल और व्यर्थ हो जाती हैं। इस तरह

भले ही उन्हें प्रथम दृष्टि में बड़े विद्वानों के रूप में सम्मानित किया जाए, किन्तु अन्ततोगत्वा वे राजनीति, सामाजिक कार्य इत्यादि भौतिक कार्यों पर उतर आते हैं। इस तरह परमेश्वर से एकाकार होने के स्थान पर वे पुन: इन भौतिक कार्यकलापों से एक हो जाते हैं। इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) में की गई है :

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत:
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रय:।

वास्तव में, मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक जीवन की तपस्याओं का कड़ाई से पालन करते हैं और इस तरह वे निर्विशेष ब्रह्म पद तक ऊपर उठ जाते हैं, किन्तु भगवान् के चरणकमलों की उपेक्षा करने के कारण वे पुन: भौतिक अस्तित्व में आ गिरते हैं।

प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर ।
विष्णु-निन्दा आर नाहि ईहार उपर ॥ ११५॥

प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर ।
विष्णु-निन्दा आर नाहि इहार उपर ॥ ११५॥

प्राकृत—प्राकृत, भौतिक; **करिया**—ऐसा मानकर; **माने**—मानता है; **विष्णु**—भगवान् विष्णु का; **कलेवर**—शरीर; **विष्णु-निन्दा**—भगवान् विष्णु की निन्दा करता; **आर**—इससे परे; **नाहि**—नहीं; **इहार**—इसके; **उपर**—ऊपर।

अनुवाद

"जो व्यक्ति भगवान् विष्णु के दिव्य शरीर को भौतिक प्रकृति से बना मानता है, वह भगवान् के चरणकमलों में सबसे बड़ा अपराधी है। इससे बढ़कर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अन्य कोई निन्दा नहीं है।

तात्पर्य

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी बतलाते हैं कि परम सत्य का विविधतापूर्ण साकार स्वरूप *विष्णुतत्त्व* है और इस ब्रह्माण्ड का सृजन करने वाली भौतिक शक्ति विष्णु की शक्ति है। सृजनात्मक शक्ति मात्र भगवान् की शक्ति है। किन्तु मूर्ख लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि भगवान् ने अपने आपको

निराकार रूप में वितरित किया है, अतएव उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। किन्तु निराकार ब्रह्म की न तो कोई शक्ति हो सकती है, न ही वैदिक साहित्य बतलाता है कि माया किसी अन्य माया द्वारा आच्छादित होती है। फिर भी *विष्णुमाया* (*परास्य शक्तिः*) के सैंकड़ों-हजारों सन्दर्भ मिलते हैं। *भगवद्गीता* (७.१४) में कृष्ण *मम माया* (मेरी शक्ति) का उल्लेख करते हैं। माया का नियन्त्रण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा होता है; ऐसा नहीं है कि वे माया द्वारा आच्छादित हों। अतएव भगवान् विष्णु भौतिक शक्ति (माया) की उपज नहीं हो सकते। *वेदान्त-सूत्र* के प्रारम्भ में ही कहा गया है *जन्माद्यस्य यतः,* जिससे यह इंगित होता है कि भौतिक शक्ति माया भी परम ब्रह्म से उद्भूत है। तो फिर वे माया से किस तरह आच्छादित हो सकते हैं? यदि ऐसा सम्भव हो सकता, तो भौतिक शक्ति माया परम ब्रह्म से भी बढ़कर होती। किन्तु ये सरल तर्क भी मायावादी दार्शनिकों की समझ में नहीं आते, अतएव *भगवद्गीता* में उनके लिए प्रयुक्त शब्द *माययापहृतज्ञान* सर्वथा उपयुक्त है। जो भी सदानन्द योगीन्द्र के तर्क अनुसार विष्णु को भौतिक शक्ति माया की उपज सोचता है, उसे तुरन्त मूढ़ मानना चाहिए, क्योंकि उसका ज्ञान माया द्वारा हर लिया गया है।

भगवान् विष्णु देवताओं की कोटि में नहीं रखे जा सकते। केवल वे ही भगवान् विष्णु को देवता मानते हैं, जो मायावाद दर्शन द्वारा वस्तुतः मोहग्रस्त हैं और अभी भी अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए हैं। यह तो ऋग्वेद के मन्त्र *ॐ तद्विष्णोः परमं पदं* ("विष्णु सदैव उच्च पद पर हैं") के सर्वथा विरुद्ध है। इस मन्त्र की पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है— *मत्तः परतरं नान्यत्*—भगवान् कृष्ण या विष्णु से श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है। अतएव जिनका ज्ञान मोहग्रस्त हो चुका है, वे ही भगवान् विष्णु को देवता मानते हैं। इसीलिए वे सुझाव देते हैं कि कोई चाहे भगवान् विष्णु की पूजा करे या देवी काली (दुर्गा) की या जिस किसी की, सभी से एक-सा फल प्राप्त होगा। यह एक मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष है, जिसे *भगवद्गीता* (९.२५) में स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि उसमें स्पष्ट कहा गया है— *यान्ति देवव्रता देवान्...यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्*—देवताओं के उपासक क्रमशः देवताओं के लोकों को जायेंगे, किन्तु परम भगवान् के भक्त वापस उनके घर, भगवान् के धाम को लौट जायेंगे। *भगवद्गीता* (७.१४) में

भगवान् कृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उनकी भौतिक शक्ति माया से पार पाना अत्यन्त दुष्कर है (*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*)। माया का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि बड़े बड़े विद्वान तथा अध्यात्मवादी भी माया से आच्छादित हो जाते हैं और अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मान बैठते हैं। किन्तु वास्तव में माया के प्रभाव से अपने आपको मुक्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में जाए, जैसाकि कृष्ण *भगवद्गीता* (७.१४) में भी कहते हैं—*मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते*। निष्कर्ष यह है कि भगवान् विष्णु इस भौतिक सृष्टि के नहीं हैं, अपितु आध्यात्मिक जगत् के हैं। भगवान् विष्णु को भौतिक शरीर से युक्त बतलाना या देवताओं से उनकी समानता करना भगवान् विष्णु की सबसे अपराधपूर्ण निन्दा है और भगवान् विष्णु के चरणकमलों पर अपराध करने वाले कभी भी आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति नहीं कर सकते। वे *मायया पहृतज्ञान* कहलाते हैं अर्थात् वे लोग जिनकी बुद्धि माया द्वारा हर ली गई है।

जो व्यक्ति यह सोचता है कि भगवान् विष्णु के शरीर एवं उनके आत्मा में अन्तर है, वह अज्ञान के गहनतम अन्धकार में रहता है। विष्णु के शरीर तथा उनके आत्मा में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वे *अद्वयज्ञान* अर्थात् एक ही ज्ञान हैं। इस जगत् में भौतिक शरीर तथा आध्यात्मिक आत्मा में भेद होता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में ऐसा अन्तर नहीं होता, क्योंकि वहाँ हर वस्तु आध्यात्मिक होती है। मायावादी दार्शनिकों का सबसे बड़ा अपराध यही है कि वे भगवान् विष्णु तथा जीवों को एक मानते हैं। इस सन्दर्भ में *पद्म पुराण* का कथन है : *अर्च्ये विष्णौ शिलाधिर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जाति बुद्धिः ... यस्य वा नारकी सः*— "जो अर्चामूर्ति अर्थात् भगवान् विष्णु की पूजनीय मूर्ति को पत्थर, गुरु को सामान्य व्यक्ति तथा वैष्णव को किसी जाति-पाति का मानता है, वह नारकीय बुद्धि वाला होता है।" जो ऐसे निष्कर्षों का अनुसरण करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है।

ঈশ্বরের তত্ত্ব—যেন জ্বলিত জ্বলন ।
জীবের স্বরূপ—যৈছে স্ফুলিঙ্গের কণ ॥ ১১৬॥

ईश्वरेर तत्त्व—ग्रेन ज्वलित ज्वलन ।
जीवेर स्वरूप—ग्रैछे स्फुलिङ्गेर कण ॥ ११६ ॥

ईश्वरेर तत्त्व—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का तत्त्व; **ग्रेन**—की भाँति है; **ज्वलित**—प्रज्ज्वलित; **ज्वलन**—अग्नि; **जीवेर**—जीवों का; **स्वरूप**—स्वरूप; **ग्रैछे**—की भाँति है; **स्फुलिङ्गेर**—चिंगारी; **कण**—अंश।

अनुवाद

"भगवान् प्रज्ज्वलित महान् अग्नि के समान हैं और सारे जीव उस अग्नि की छोटी-छोटी चिंगारियों के समान हैं।

तात्पर्य

यद्यपि चिनगारियाँ तथा अग्नि दोनों ही अग्नि हैं और दोनों में जला देने की शक्ति रहती है, किन्तु उन दोनों की जलाने की शक्तियाँ समान नहीं होतीं। जो व्यक्ति वैधानिक दृष्टि से एक छोटी चिंगारी (स्फुलिंग) के समान है, उसे भव्य विशाल अग्नि जैसा बनने का कृत्रिम प्रयास क्यों करना चाहिए? ऐसा अज्ञान के कारण होता है। अतएव मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि न तो पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर को, न ही स्फुलिंगवत् जीव को भौतिक पदार्थ से कुछ लेना-देना होता है, किन्तु जब आध्यात्मिक स्फुलिंग भौतिक जगत् के सम्पर्क में आता है, तो उसका अग्निवत् गुण समाप्त हो जाता है। बद्धजीवों की अवस्था ऐसी ही है। चूँकि वे भौतिक जगत् के सम्पर्क में हैं, अतः उनका आध्यात्मिक गुण मृतप्राय हो गया है, किन्तु ये आध्यात्मिक स्फुलिंग कृष्ण के अंश होने के कारण, जैसाकि *भगवद्गीता* में भगवान् ने कहा है (*ममैवांशः*), वे इस भौतिक संसर्ग से मुक्त होकर अपनी मूल अवस्था पुनः प्राप्त कर सकते हैं। यह शुद्ध दार्शनिक ज्ञान है। *भगवद्गीता* में आध्यात्मिक स्फुलिंगों को *सनातन* कहा गया है, अतएव भौतिक शक्ति अर्थात् *माया* उनकी वैधानिक स्थिति को प्रभावित नहीं कर सकती।

कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि, "आध्यात्मिक स्फुलिंगों को उत्पन्न करने की आवश्यकता ही क्या है?" इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है : परम भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अतएव उनके पास असीम तथा सीमित दोनों शक्तियाँ होती हैं। सर्वशक्तिमान का यही अर्थ है। सर्वशक्तिमान होने के

लिए उन्हें असीम शक्तियों की ही नहीं, वरन् सीमित शक्तियों की भी आवश्यकता रहती है। इस तरह अपनी सर्वशक्तिमत्ता प्रदर्शित करने के लिए वे दोनों का प्रदर्शन करते हैं। जीवों को सीमित शक्ति प्रदान की जाती है, यद्यपि वे भगवान् के ही अंश हैं। भगवान् अपनी असीम शक्तियों द्वारा आध्यात्मिक जगत् का और सीमित शक्तियों से भौतिक जगत् का प्रदर्शन करते हैं। *भगवद्गीता* (७.५) में भगवान् कहते हैं :

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।

"हे महाबाहु अर्जुन, इन निकृष्ट शक्तियों के अतिरिक्त मेरी एक उत्कृष्ट शक्ति भी है, जो सारे जीवों के रूप में निकृष्ट भौतिक प्रकृति के संसाधनों का दोहन कर रही है।" *जीवभूत* या जीव अपनी सीमित शक्तियों से इस भौतिक जगत् का नियन्त्रण करते हैं। सामान्यतया लोग वैज्ञानिकों तथा प्राद्योगिकी विशेषज्ञों के कार्यों से चकित हो जाते हैं। वे माया के वशीभूत होकर सोचते हैं कि ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है, वे ही सब कुछ कर सकते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। यह जगत् सीमित है, अतएव उनका अस्तित्व भी सीमित है। इस भौतिक जगत् की हर वस्तु सीमित है, इसीलिए सृजन, पालन और संहार होता है। किन्तु असीम शक्ति वाले जगत् में—आध्यात्मिक जगत् में—न तो सृजन होता है, न संहार।

यदि भगवान् के पास सीमित तथा असीम दोनों प्रकार की शक्तियाँ न होतीं, तो वे सर्वशक्तिमान न कहलाते। *अणोरणीयान् महतो महीयान्*—"वे बड़े में सबसे बड़े और छोटे में सबसे छोटे हैं।" वे जीवों के रूप में छोटे से भी छोटे हैं और कृष्ण के रूप में बड़े से भी बड़े हैं। यदि ऐसा कोई न होता जिसका नियन्त्रण करना हो, तो परम नियन्ता (*ईश्वर*) की धारणा का कुछ अर्थ न होता, जिस प्रकार कि प्रजा के बिना राजा का कोई अर्थ नहीं होता। यदि सारी प्रजा राजा बन जाए, तो फिर राजा तथा सामान्य जनता में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। अतः परम नियन्ता होने के लिए भगवान् को नियन्त्रण में रखने के लिए सृष्टि की आवश्यकता होती है। जीवों के अस्तित्व का मूल सिद्धान्त *चिद् विलास* अर्थात् आध्यात्मिक आनन्द कहलाता है। सर्वशक्तिमान भगवान्

अपनी आनन्ददायिनी शक्ति जीवों के रूप में प्रदर्शित करते हैं। *वेदान्त-सूत्र* (१.१.१२) में भगवान् को *आनन्दमयोऽभ्यासात्* कहा गया है। वे स्वभाव से समस्त आनन्दों के आगार हैं और चूँकि वे आनन्द भोगना चाहते हैं, इसलिए उन्हें आनन्द देने के लिए या आनन्द के लिए प्रेरित करने के लिए शक्तियाँ तो चाहिए ही। परम सत्य विषयक यह पूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त है।

जीव-तत्त्व——शक्ति, कृष्ण-तत्त्व——शक्तिमान् ।
गीता-विष्णुपुराणादि ताहाते प्रमाण ॥ ११७॥

जीव-तत्त्व—जीव-तत्त्व; **शक्ति**—शक्ति; **कृष्ण-तत्त्व**—कृष्ण तत्त्व; **शक्ति-मान्**—शक्तिशाली; **गीता**—*श्रीमद् भगवद्गीता;* **विष्णु-पुराण-आदि**—विष्णु पुराण तथा अन्य पुराण; **ताहाते**—उनमें; **प्रमाण**—प्रमाण है।

अनुवाद

"सारे जीव शक्तियाँ हैं, शक्तिमान नहीं। शक्तिमान तो कृष्ण हैं। इसका बहुत ही स्पष्ट वर्णन *भगवद्गीता, विष्णु पुराण* तथा अन्य वैदिक साहित्य में किया गया है।

तात्पर्य

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, आध्यात्मिक ज्ञान के प्रगति-पथ पर तीन *प्रस्थान* होते हैं—*न्याय प्रस्थान* (वेदान्त दर्शन), *श्रुति प्रस्थान* (उपनिषद् एवं वैदिक मन्त्र) तथा *स्मृति प्रस्थान* (*भगवद्गीता, महाभारत, पुराण* आदि)। दुर्भाग्यवश मायावादी दार्शनिकों को स्मृति प्रस्थान स्वीकार्य नहीं है। वैदिक साक्ष्यों पर आधारित निष्कर्ष *स्मृति* कहलाते हैं। कभी-कभी मायावादी दार्शनिक *भगवद्गीता* तथा *पुराणों* के प्रमाण को नहीं मानते। इसे *अर्धकुक्कुटीन्याय* या 'आधी मुर्गी तर्क' कहा जाता है (आदि लीला, ५.१७६ देखें)। यदि कोई वैदिक साहित्य में विश्वास करता है, तो उसे महान् आचार्यों द्वारा मान्य सारे वैदिक साहित्य को स्वीकार करना चाहिए, किन्तु मायावादी दार्शनिक केवल *न्याय प्रस्थान* तथा *श्रुति प्रस्थान* को मान्यता देते हैं और स्मृति प्रस्थान का

बहिष्कार कर देते हैं। किन्तु यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु *गीता, विष्णु पुराण* इत्यादि से साक्ष्य देते हैं, जो *स्मृति प्रस्थान* है। कोई भी व्यक्ति *भगवद्गीता* तथा *महाभारत* एवं पुराणों जैसे वैदिक साहित्य की उक्ति में भगवान् को नकार नहीं सकता। इसलिए चैतन्य महाप्रभु *भगवद्गीता* का श्लोक (७.५) उद्धृत करते हैं।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीव-भूतां महा-बाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ११८॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीव-भूतां महा-बाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ११८॥

अपरा—अपरा, निम्न शक्ति; **इयम्**—यह भौतिक संसार; **इतः**—इससे परे; **तु**—किन्तु; **अन्याम्**—अन्य; **प्रकृतिम्**—प्रकृति, शक्ति; **विद्धि**—तुम्हें जाननी चाहिए; **मे**—मेरी; **पराम्**—परा शक्ति; **जीव-भूताम्**—वे जीव हैं; **महा-बाहो**—हे महाबाहो; **यया**—जिससे; **इदम्**—यह भौतिक संसार; **धार्यते**—चलायमान हैं, कार्य करता है; **जगत्**—संसार।

अनुवाद

"'हे महाबाहु अर्जुन, इन अपरा (निकृष्ट) शक्तियों के अतिरिक्त मेरी एक परा (उत्कृष्ट) शक्ति भी है, जो उन सारे जीवों के रूप में है, जो इस भौतिक, निकृष्ट प्रकृति के संसाधनों का दोहन कर रहे हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता में बतलाया गया है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—ये पाँच तत्त्व परम सत्य की स्थूल शक्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त तीन सूक्ष्म शक्तियाँ भी हैं—यथा मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार अर्थात् इस घटनामय जगत् के साथ अपनी पहचान। इस तरह सारा प्रकट विश्व आठ शक्तियों में बँटा है और ये सभी अपरा (निकृष्ट) शक्तियाँ हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में बतलाया गया है (*मम माया दुरत्यया*), अपरा शक्ति माया इतनी प्रबल होती है कि यद्यपि जीव का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इसकी प्रबल शक्ति से जीव (*जीवभूत*) अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है और इसीसे अपनी पहचान करने लगता है। कृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि भौतिक शक्ति से परे

एक उच्चतर शक्ति है, जो *जीवभूत* कहलाती है। यह उच्चतर शक्ति भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आकर सारे भौतिक जगत् के कार्यकलापों का संचालन करती है।

परम कारण तो कृष्ण हैं (*जन्माद्यस्य यतः*), जो विविध प्रकार से कार्यरत शक्तियों के उद्गम हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पास अपरा तथा परा दोनों शक्तियाँ होती हैं। इनमें अन्तर यही होता है कि परा शक्ति वास्तविक है, जबकि अपरा शक्ति इस उच्चचर शक्ति की प्रतिबिम्ब स्वरूप है। दर्पण या जल में पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य जैसा प्रतीत होता है, किन्तु सूर्य होता नहीं। इसी प्रकार यह भौतिक जगत् आध्यात्मिक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है। यह यथार्थ प्रतीत होते हुए भी यथार्थ होता नहीं, केवल क्षणिक प्रतिबिम्ब होता है, जबकि आध्यात्मिक जगत् सच्ची वास्तविकता है। यह भौतिक जगत्, अपने सूक्ष्म तथा स्थूल रूपों सहित, आध्यात्मिक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र होता है।

जीव भौतिक शक्ति की उपज नहीं है; वह आध्यात्मिक शक्ति है, किन्तु पदार्थ के सम्पर्क में आने से वह अपनी पहचान भूल जाता है। इस तरह जीव अपनी पहचान पदार्थ के साथ करता है और प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि के वेश में भौतिक कार्यकलापों में उत्साह के साथ लग जाता है। उसे बिल्कुल पता नहीं रहता कि वह तनिक भी भौतिक उपज नहीं है, अपितु नितान्त आध्यात्मिक है। इस प्रकार अपनी वास्तविक पहचान खो देने से वह इस भौतिक जगत् में कठिन संघर्ष करता है। हरे कृष्ण आन्दोलन अथवा कृष्णभावनामृत आन्दोलन उसकी मूल चेतना को जागृत करने का प्रयास कर रहा है। गगनचुम्बी इमारत बनाने में उसका कार्यकलाप उसकी बुद्धि का प्रमाण है, किन्तु इस तरह की बुद्धि जरा भी उन्नत नहीं है। मनुष्य को जान लेना चाहिए कि उसकी वास्तविक चिन्ता इस भौतिक जगत् से मुक्त होने में है, क्योंकि यदि वह भौतिक कार्यकलापों में अपने मन को लगाता है, तो उसे बारम्बार भौतिक शरीर धारण करना होगा और इस तरह वह भले ही अपने आपको बुद्धिमान कहे, किन्तु भौतिक चेतना में वह तनिक भी बुद्धिमान नहीं माना जायेगा। जब हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन की बात करते हैं, जिसका उद्देश्य लोगों को बुद्धिमान बनाना है, तो बद्धजीव इसका गलत अर्थ लगाते हैं।

वह देहात्म बुद्धि में इतना मग्न रहता है कि वह यह सोचता ही नहीं कि गगनचुम्बी इमारत बनाने, बड़ी-बड़ी सड़कें तथा कारें निर्माण करने के अतिरिक्त भी बुद्धि पर आधारित अन्य कार्यकलाप हो सकते हैं। यह *माययापहृत ज्ञान* का अर्थात् माया के प्रभाव के कारण बुद्धि गँवा देने का प्रमाण है। जब जीव ऐसी धारणाओं से मुक्त हो जाता है, तब वह मुक्त कहलाता है। वास्तविक रूप में मुक्त हो जाने पर वह भौतिक जगत् से अपनी पहचान नहीं बनाता। मुक्ति का लक्षण ही यह है कि भौतिक कार्यकलापों में व्यर्थ में न लगकर आध्यात्मिक कार्यों में लगा जाये।

दिव्य प्रेममयी सेवा करना आत्मा का आध्यात्मिक कर्म है। मायावादी दार्शनिक भौतिक कर्म तथा इस आध्यात्मिक कर्म को समझने में भूल करते हैं, किन्तु *भगवद्गीता* (१४.२६) पुष्टि करती है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

जो व्यक्ति शुद्ध भक्ति (*अव्यभिचारिणी भक्ति*) के आध्यात्मिक कार्यों में लगा रहता है, वह तुरन्त ही दिव्य पद पर उन्नति करता है और उसे *ब्रह्मभूत* माना जाना चाहिए—जिसका अर्थ यह है कि वह अब भौतिक जगत् में नहीं, अपितु आध्यात्मिक जगत् में है। भक्ति तो आलोक अथवा जागृति है। जब कोई जीव गुरु के निर्देशन में आध्यात्मिक कर्म करता है, तो उसको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह समझने लगता है कि वह ईश्वर नहीं अपितु ईश्वर का दास है। जैसाकि चैतन्य महाप्रभु ने कहा है (*चैतन्य चरितामृत, मध्य* २०.१०८)—*जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्यदास'*—जीव की वास्तविक पहचान यह है कि वह परमेश्वर का सनातन सेवक है। जब तक मनुष्य को यह बोध नहीं हो जाता, तब तक वह अज्ञान में पड़ा रहता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१९) में भगवान् द्वारा की गई है—*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते...स महात्मा सुदुर्लभः*—"अनेक जन्मों तक जीवन-संघर्ष तथा ज्ञान का अनुशीलन करते रहने पर जब मनुष्य को वास्तविक ज्ञान होता है, तब वह मेरी शरण में आता है। ऐसा उन्नत *महात्मा* अत्यन्त दुर्लभ होता है।" इस तरह मायावादी

दार्शनिक ज्ञान में तो बहुत उन्नत लगते हैं, किन्तु फिर भी वे पूर्ण नहीं होते। पूर्णता प्राप्त करने के लिए उन्हें स्वेच्छा से कृष्ण की शरण ग्रहण करनी होगी।

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्र-ज्ञाख्या तथा परा ।
अविद्या-कर्म-संज्ञानन्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ ११९ ॥

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्र-ज्ञाख्या तथा परा ।
अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ ११९ ॥

विष्णु-शक्तिः—भगवान् विष्णु की शक्ति; **परा**—परा, आध्यात्मिक; **प्रोक्ता**—कही गई है; **क्षेत्र-ज्ञ-आख्या**—क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति; **तथा**— तथा; **परा**—परा, आध्यात्मिक; **अविद्या**—अज्ञान; **कर्म**—सकाम कर्म; **संज्ञा**—नाम से जाने जाने वाले; **अन्या**—अन्य; **तृतीया**—तीसरी; **शक्तिः**—शक्ति; **इष्यते**—ऐसी जानी जाती है।

अनुवाद

"'भगवान् विष्णु की शक्तियाँ तीन तरह की हैं—आध्यात्मिक शक्ति, जीव तथा अज्ञान। आध्यात्मिक शक्ति ज्ञान से परिपूर्ण है; जीव यद्यपि आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्धित है, किन्तु वे मोहग्रस्त होने के पात्र हैं और तीसरी शक्ति जो अज्ञान से भरी है, सदैव सकाम कर्मों में दृष्टिगोचर होती है।

तात्पर्य

यह *विष्णु पुराण* (६.७.६१) से लिया गया है।

भगवद्गीता से लिये गये पिछले श्लोक में यह स्थापित किया गया है कि जीवों को भगवान् की शक्तियों की श्रेणी में रखा जाता है। भगवान् शक्तिमान हैं और शक्ति के अनेक प्रकार हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)। *विष्णुपुराण* से लिये गये उपर्युक्त श्लोक से भी इसकी पुष्टि होती है। शक्तियाँ कई प्रकार की हैं और इन्हें तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जिनके नाम हैं आध्यात्मिक (अंतरंगा), तटस्था तथा बहिरंगा।

आध्यात्मिक शक्ति का प्राकट्य आध्यात्मिक जगत् (वैकुण्ठ) में होता है। कृष्ण के रूप, गुण, कर्म तथा परिकर सभी आध्यात्मिक हैं। इसकी भी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.५) में हुई है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

"यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी नष्ट नहीं होता और यद्यपि मैं सारे जीवों का स्वामी हूँ, किन्तु तो भी मैं अपनी आध्यात्मिक शक्ति से हर युग में अपने मूल दिव्य रूप में प्रकट होता हूँ।" *आत्ममाया* आध्यात्मिक शक्ति का सूचक है। जब कृष्ण इस या किसी अन्य ब्रह्माण्ड में अवतरित होते हैं, तो वे ऐसा अपनी आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं। हम भौतिक शक्ति के बल पर जन्म लेते हैं, किन्तु जैसाकि *विष्णु पुराण* के सन्दर्भ से यहाँ कहा गया है, *क्षेत्रज्ञ* अर्थात् जीव आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्धित है; अतएव जब हम अपने आपको भौतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त कर लेते हैं, तब हम आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश कर सकते हैं।

भौतिक शक्ति अंधकार की शक्ति या आध्यात्मिक कार्यों में पूर्ण अज्ञानता की शक्ति है। भौतिक शक्ति में जीव सकाम कर्म में प्रवृत्त होता है, क्योंकि वह सोचता है कि वह भौतिक शक्ति के प्रसार से सुखी बन सकता है। यह तथ्य इस कलियुग में विशेष रूप से उजागर होता है, क्योंकि मानव समाज आध्यात्मिक प्रकृति को समझे बिना भौतिक कार्यकलापों को बढ़ाता जाता है। आज के लोगों को अपनी आध्यात्मिक पहचान का लगभग कोई ज्ञान नहीं है। वे अपने आपको भौतिक जगत् के तत्त्वों से उत्पन्न मानते हैं और यह मानते हैं कि शरीर के विनाश के साथ ही हर वस्तु नष्ट हो जायेगी। इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब तक भौतिक इन्द्रियों वाला यह भौतिक शरीर है, तब तक इन्द्रियों का यथासम्भव भोग कर लिया जाए। नास्तिक होने के कारण उन्हें इसकी परवाह नहीं होती कि उनका कोई अगला जीवन भी है। ऐसे कार्यों को इस श्लोक में *अविद्याकर्मसंज्ञान्या* कहा गया है।

भौतिक शक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति से पृथक् होती है। इस तरह उसकी सृष्टि मूलत: भगवान् द्वारा की गई है, लेकिन वे उसके भीतर विद्यमान नहीं रहते। भगवान् ने इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.४) में इस प्रकार की है—*मत्स्थानि सर्वभूतानि*—"सारी वस्तुएँ मुझ पर आश्रित हैं।" इससे सूचित होता है कि हर वस्तु भगवान् की निजी शक्ति पर आश्रित है।

उदाहरणार्थ, सारे लोक बाह्य अन्तरिक्ष में टिके हैं, जो कृष्ण की भिन्ना शक्ति है। भगवान् *भगवद्गीता* (७.४) में बतलाते हैं :

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मेरी भिन्ना भौतिक शक्तियाँ हैं।" भिन्ना भौतिक शक्तियाँ इस तरह कार्य करती हैं मानो स्वतन्त्र हों, किन्तु यहाँ यह कहा गया है कि ऐसी शक्तियाँ वास्तविक होने पर भी स्वतन्त्र नहीं हैं, केवल अलग की गई शक्तियाँ हैं।

भिन्ना शक्ति को एक व्यावहारिक उदाहरण से समझा जा सकता है। मैं डिक्टाफोन में बोलकर पुस्तक लिखता हूँ और जब इस डिक्टाफोन को फिर से चलाया जाता है, तो ऐसा लगता है कि मैं स्वयं बोल रहा हूँ, किन्तु वास्तव में मैं नहीं बोल रहा होता। मैं पहली बार स्वयं बोला था, किन्तु बाद में डिक्टाफोन टेप, जो मुझ से अलग (पृथक्) है, ठीक मेरी ही तरह कार्य करता है। इसी प्रकार भौतिक शक्ति मूलतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से उद्भूत होती है, किन्तु वह उनसे पृथक् होकर कार्य करती है, यद्यपि इसके लिए शक्ति भगवान् से ही प्राप्त होती है। *भगवद्गीता* (९.१०) में भी यही बताया गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—"हे कुन्ती-पुत्र, यह भौतिक प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और यह सारे जड़ तथा चेतन जीवों को उत्पन्न करती है।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अध्यक्षता में अथवा उनके निर्देशन में, भौतिक शक्ति इस तरह कार्य करती है, मानो वह स्वतन्त्र हो, जबकि वास्तव में वह स्वतन्त्र नहीं है।

विष्णु पुराण से लिये गये इस श्लोक में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की समग्र शक्ति के तीन विभाग बताये गये हैं—आध्यात्मिक या अन्तरंगा शक्ति, तटस्था शक्ति या *क्षेत्रज्ञ* (जीव) तथा भौतिक शक्ति जो भगवान् से भिन्न है और स्वतन्त्र रूप से कार्यशील प्रतीत होती है। जब श्रील व्यासदेव ने ध्यान तथा आत्म-साक्षात्कार द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन प्राप्त किया, तो उन्होंने उनके पीछे भगवान् की भिन्ना शक्ति को भी खड़े देखा (*अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायां च तदपाश्रयम्*)। व्यासदेव ने यह भी अनुभव किया कि जीवों के ज्ञान को

आच्छादित करने वाली यही भिन्ना शक्ति या भौतिक शक्ति है। *यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्*)। यह भिन्ना भौतिक शक्ति जीवों को मोहित कर लेती है और इस प्रकार वे इसके वशीभूत होकर अत्यधिक श्रम करते हैं और उन्हें पता ही नहीं रहता कि वे अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा नहीं कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश उनमें से अधिकांश अपने आपको शरीर समझते हैं, इसलिए भौतिक इन्द्रियों का अन्धाधुन्ध भोग करना चाहते हैं, क्योंकि मृत्यु आने पर तो सब कुछ समाप्त हो ही जायेगा। यह नास्तिक दर्शन कभी भारत में भी फैला था, जिसे कभी चार्वाक मुनि ने प्रचारित किया था। उन्होंने कहा था :

ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् यावज्जीवेत सुखं जीवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य कुतः पुनरागमनो भवेत्॥

उनका मत था कि जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक छककर घी खाये। भारत में घी अनेक व्यंजन बनाने में मूलभूत सामग्री है। हर कोई अच्छा भोजन खाना चाहता है, इसलिए चार्वाक मुनि ने परामर्श दिया कि अधिक से अधिक घी खाया जाये। कोई कह सकता है, "भई, मेरे पास तो पैसे नहीं हैं, मैं घी कैसे खरीदूँ?" किन्तु चार्वाक मुनि कहते हैं, "यदि तुम्हारे पास पैसे नहीं है, तो माँगो, उधार लो या चोरी करो, किन्तु जैसे भी हो घी प्राप्त करके जीवन का भोग करो।" जो लोग आगे यह आपत्ति करते हैं कि माँगना, उधार लेना या चोरी करना जैसे अनधिकृत कार्य अपराध हैं, जिनके लिए उन्हें दोषी ठहराया जायेगा, उनके लिए चार्वाक मुनि का उत्तर है, "तुम्हें उत्तरदायी नहीं ठहराया जायेगा। मरने पर ज्यों ही तुम्हारा शरीर भस्म होकर राख हो जायेगा, तो सब कुछ समाप्त हो जायेगा।"

यह अज्ञान कहलाता है। *भगवद्गीता* बतलाती है कि शरीर नष्ट होने से कोई मरता नहीं (*न हन्यते हन्यमाने शरीरे*)। एक शरीर के विनाश का अर्थ है दूसरा शरीर पाना (*तथा देहान्तर प्राप्तिः*)। अतएव भौतिक जगत् में दायित्वविहीन कार्य करना बहुत खतरनाक है। आत्मा तथा इसके देहान्तर को जाने बिना लोग भौतिक शक्ति से आकृष्ट होकर ऐसे अनेकानेक कार्यों में लग जाते हैं, मानो केवल भौतिक ज्ञान के बल पर ही सुखी बना जा सकता है, आध्यात्मिक जगत् का कोई महत्त्व ही नहीं है। इसलिए सम्पूर्ण भौतिक जगत्

तथा इसके कार्यकलापों को *अविद्याकर्म संज्ञान्या* कहा गया है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इस भिन्ना-शक्ति या भौतिक शक्ति के अन्तर्गत कर्म करने वाले मनुष्यों के अज्ञान को दूर करने के लिए ही भगवान् अवतरित होते हैं, जिससे उन्हें आध्यात्मिक कार्यों की मूल प्रकृति का स्मरण हो सके (*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत*)। ज्योंही वे अपनी मूल प्रकृति से विचलित होते हैं, त्योंही भगवान् उन्हें यह शिक्षा देने के लिए आते हैं—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—"हे प्रिय जीवों, तुम सारे भौतिक कार्यों का परित्याग करके अपनी सुरक्षा के लिए केवल मेरी शरण में आओ।" (*भगवद्गीता* १८.६६)

यह चार्वाक मुनि का कथन है कि मनुष्य को घी खरीदकर जीवन का आनन्द भोगने के लिए भीख माँगना, उधार लेना या धन चुराना तक उचित है (*ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत्*)। इस तरह भारत के महानतम नास्तिक चार्वाक मुनि तक यह संस्तुति करते हैं कि घी खाओ, मांस नहीं। कोई सोच भी नहीं सकता था कि मनुष्य बाघ तथा कुत्तों की तरह मांस खाये, किन्तु लोग इतने गिर चुके हैं कि वे पशु बन गये हैं और वे यह दावा भी नहीं कर सकते कि उनके पास मानव सभ्यता भी है।

हेन जीव-तत्त्व लञा लिखि' पर-तत्त्व ।
आच्छन्न करिल श्रेष्ठ ईश्वर-महत्त्व ॥ १२० ॥

हेन जीव-तत्त्व लञा लिखि' पर-तत्त्व ।
आच्छन्न करिल श्रेष्ठ ईश्वर-महत्त्व ॥ १२० ॥

हेन—इतनी तिरस्कृत; **जीव-तत्त्व**—जीव तत्त्व; **लञा**—लेकर; **लिखि'**—लिखकर; **पर-तत्त्व**—पर तत्त्व; **आच्छन्न**—ढकी हुई, आच्छादित; **करिल**—किया; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ, भगवान्; **ईश्वर**—ईश्वर की; **महत्त्व**—महिमाएँ।

अनुवाद

"मायावादी दर्शन इतना गिरा हुआ है कि वह नगण्य जीवों को परम सत्य, भगवान् मानता है और इस तरह वह परम सत्य के महिमा तथा श्रेष्ठत्व को अद्वैतवाद से ढक देता है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टीका है कि सारे वैदिक शास्त्रों में *जीवतत्त्व* को भगवान् की शक्तियों में से एक बताया गया है। यदि कोई जीव को परम पूर्ण के सूक्ष्म स्फुलिंग के रूप में स्वीकार नहीं करता, लेकिन *जीवतत्त्व* की समता परम ब्रह्म या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से करता है, तो यह समझना चाहिए कि उसका सारा दर्शन अज्ञान पर आधारित है। दुर्भाग्यवश श्रीपाद शंकराचार्य ने जान-बूझकर जीवतत्त्व को परमेश्वर के तुल्य घोषित किया है। अतएव उनका पूरा दर्शन भ्रम पर आधारित है और यह उन लोगों को नास्तिक बनाने में सहायक होता है, जिनका जीवन-लक्ष्य अधूरा रह गया हो। किन्तु जैसाकि *भगवद्गीता* में वर्णन हुआ है, मानव जीवन का लक्ष्य परम भगवान् की शरण में जाकर उनका भक्त बनना है। किन्तु मायावादी दर्शन मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अस्तित्व को नकारकर अपने आपको भगवान् मानने के लिए प्रेरित करके उसे पथभ्रष्ट करता है। इस तरह इसने लाखों अबोध मनुष्यों को पथभ्रष्ट किया है।

व्यासदेव ने *वेदान्त-सूत्र* में बतलाया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् शक्तिमान हैं और प्रत्येक भौतिक या आध्यात्मिक वस्तु उनकी शक्ति से ही प्रकट होती है। भगवान् या परम ब्रह्म ही हर वस्तु के मूल या उद्गम स्रोत हैं (*जन्माद्यस्य यतः*) और अन्य सारे जगत् भगवान् की विभिन्न शक्तियों से प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि *विष्णु पुराण* द्वारा भी होती है :

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥

"इस जगत् में हमें जो कुछ भी दिखता है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की विभिन्न शक्तियों का विस्तार मात्र है, जो उस अग्नि के समान है, जो एक स्थान पर रखी रहने पर भी दूर दूर तक प्रकाश फैलाती है।" यह एक जीवन्त उदाहरण है। इसी प्रकार यह कहा गया है कि जिस तरह सूर्य की शक्ति, यानी सूर्य-प्रकाश में जगत् की सारी वस्तुएँ विद्यमान हैं, उसी तरह हर वस्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों के कारण विद्यमान है। अतः यद्यपि कृष्ण अपने धाम में रहते हैं (*गोलोक एव निवसत्य-*

खिलात्मभूतः), जहाँ वे गोपों तथा गोपियों के साथ अपनी दिव्य लीलाओं का आनन्द लेते हैं, फिर भी वे सर्वत्र, यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड के कण-कण में विद्यमान रहते हैं (*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्*)। यह वैदिक साहित्य का निर्णय है।

दुर्भाग्यवश, मायावादी दर्शन ने यह दावा करके कि जीव ईश्वर है, लोगों को पथभ्रष्ट करते हुए सारे विश्व में उत्पात मचा रखा है और प्रायः हर व्यक्ति इसके फलस्वरूप ईश्वरविहीन बन चुका है। इस तरह मायावादी दार्शनिकों ने परमेश्वर के यश को म्लान करके मानव समाज का सबसे बड़ा अहित किया है। मायावादी दार्शनिकों के इन्हीं अत्यन्त गर्हित कार्यों की प्रतिक्रिया स्वरूप चैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण महामन्त्र का सूत्रपात किया।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

"इस कलह तथा दम्भ के युग में मुक्ति का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना है। इसके अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है।" लोगों को चाहिए कि वे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने मात्र में लग जाएँ, क्योंकि इस तरह वे क्रमशः यह समझने लगेंगे कि वे भगवान् नहीं हैं, जैसाकि मायावादी दार्शनिक शिक्षा देते हैं, अपितु वे भगवान् के सनातन सेवक हैं। ज्योंही मनुष्य भगवान् की दिव्य सेवा में लग जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो पूर्णतया भक्ति में लगा रहता है और किसी भी परिस्थिति में पतित नहीं होता, वह भौतिक प्रकृति के सारे गुणों को तुरन्त पार करके ब्रह्म पद को प्राप्त होता है।" (*भगवद्गीता* १४.२६) अतएव हरे कृष्ण आन्दोलन या कृष्णभावनामृत आन्दोलन उन मूर्ख जीवों के लिए एकमात्र आशा की किरण है, जो यह सोचते हैं कि या तो ईश्वर हैं ही नहीं और यदि हैं भी, तो वे निराकार हैं और हम भी ईश्वर हैं। ये भ्रान्तियाँ अत्यन्त घातक हैं और इनका निराकरण करने का एकमात्र उपाय है—हरे कृष्ण आन्दोलन का प्रसार करना।

ব্যাসের সূত্রেতে কহে 'পরিণাম'-বাদ ।
'ব্যাস ভ্রান্ত'—বলি' তার উঠাইল বিবাদ ॥১২১॥

व्यासेर सूत्रेते कहे 'परिणाम'-वाद ।
'व्यास भ्रान्त'—बलि' तार उठाइल विवाद ॥ १२१ ॥

व्यासेर—श्रील व्यासदेव के; **सूत्रेते**—सूत्रों में; **कहे**—वर्णन करते हैं; **परिणाम**—परिवर्तन; **वाद**—दर्शन; **व्यास**—श्रील व्यासदेव; **भ्रान्त**—भ्रान्त, गलत; **बलि'**—उन पर आरोप लगाकर; **तार**—उनका; **उठाइल**—उठाया; **विवाद**—विवाद, आपत्ति।

अनुवाद

"श्रील व्यासदेव ने अपने *वेदान्त-सूत्र* में वर्णन किया है कि प्रत्येक वस्तु भगवान् की शक्ति के रूपान्तर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। किन्तु शंकराचार्य ने यह टीका करके कि व्यासदेव गलत थे, सारे जगत् को पथभ्रष्ट किया। इस तरह उन्होंने पूरे विश्व में आस्तिकता का घोर विरोध किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर बतलाते हैं, "श्रील व्यासदेव कृत *वेदान्त-सूत्र* में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि सारे जगत् भगवान् की विभिन्न शक्तियों के रूपान्तर के परिणाम हैं। किन्तु शंकराचार्य भगवान् की शक्ति को नहीं मानते; अपितु यह समझते हैं कि खुद भगवान् ही रूपान्तरित होते हैं। उन्होंने अनेक स्पष्ट वैदिक तथ्यों को तोड़मरोड़कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यदि भगवान् या परम सत्य रूपान्तरित होंगे, तो उनका एकत्व गड़बड़ा जायेगा। इसलिए उन्होंने श्रील व्यासदेव के ऊपर आरोप लगाया कि वे गलत थे। अतएव उन्होंने अपने अद्वैत दर्शन को विकसित करते हुए *विवर्तवाद* या मायावाद की स्थापना की है।"

ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय का प्रथम सूत्र है—*तदनन्यत्वम् आरम्भण शब्दादिभ्यः।* शंकराचार्य ने अपने *शारीरक भाष्य* में इस सूत्र की टीका करते हुए *वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्* नामक कथन को *छन्दोग्य उपनिषद्* (६.१.४) से यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत किया है कि भगवान् की शक्ति के रूपान्तर को स्वीकार करना दोषपूर्ण है। उन्होंने शक्ति के इस रूपान्तर का

गलत तरीके से विरोध किया है, जिसकी व्याख्या आगे की जायेगी। ईश्वर के बारे में उनकी यह धारणा निराकार है, इसलिए वे यह नहीं विश्वास करते कि सारा जगत् भगवान् की शक्तियों का रूपान्तर है, क्योंकि परम सत्य की विविध शक्तियों को मान लेने का अर्थ होगा परम सत्य को निराकार नहीं, अपितु साकार मानना। मनुष्य अपनी शक्ति के रूपान्तर से अनेक वस्तुओं को उत्पन्न कर सकता है। उदाहरणार्थ, एक व्यापारी अपनी शक्ति का रूपान्तर बड़े-बड़े कारखानों या व्यापार-संगठनों की स्थापना करने में करता है, फिर भी वह एक व्यक्ति ही रहता है, भले ही उसकी शक्ति का रूपान्तर अनेक कारखानों तथा व्यापार-संगठनों में हो चुका हो। मायावादी दार्शनिक इस सीधी-सी बात को नहीं समझ पाते। उनका छोटा मस्तिष्क तथा उनका अल्प ज्ञान उन्हें पर्याप्त प्रकाश प्रदान नहीं कर पाते, जिससे वे यह अनुभव कर सकें कि जब मनुष्य की शक्ति रूपान्तरित होती है, तो मनुष्य खुद जैसे का तैसा रहता है, वह रूपान्तरित नहीं होता।

शंकराचार्य को इस तथ्य पर विश्वास नहीं था कि परम सत्य की शक्ति रूपान्तरित होती है, अतएव उन्होंने मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना की। इस सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य कभी रूपान्तरित नहीं होता, किन्तु हम सोचते हैं कि ऐसा होता है और यही माया है। शंकराचार्य परम सत्य की शक्ति के रूपान्तर में विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे दावा करते हैं कि सारी वस्तुएँ एक हैं, अतएव जीव भी परमेश्वर के साथ एकाकार है। यही उनका मायावाद है।

श्रील व्यासदेव ने बतलाया है कि परम सत्य ऐसे व्यक्ति हैं, जो विविध शक्तियों से युक्त हैं। उन्होंने इच्छा की कि सृष्टि हो और अपने दृष्टिपात से (*स ऐक्षत*) इस भौतिक जगत् की सृष्टि की (*स असृजत*)। सृष्टि करने के बाद भी वे वही पुरुष बने रहते हैं; वे प्रत्येक वस्तु में रूपान्तरित नहीं होते। यह स्वीकार करना होगा कि भगवान् की अचिन्त्य शक्तियाँ होती हैं और उनके आदेश तथा उनकी इच्छा से ही नाना प्रकार के रूपान्तर प्रकट होते हैं। वैदिक साहित्य में कहा गया है—*स तत्त्वतोऽन्यथा-बुद्धिर्विकार इत्युदाहृतः।* इस मन्त्र से सूचित होता है कि एक तथ्य से दूसरा तथ्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ पिता एक तथ्य है और उस पिता से उत्पन्न पुत्र एक दूसरा तथ्य है। इस तरह दोनों ही

सत्य हैं, यद्यपि इनमें से एक दूसरे से उत्पन्न हुआ है। यह दूसरी उत्पत्ति जो पहले सत्य से पृथक् सत्य है, वह *विकार* अर्थात् ऐसा रूपान्तर कहलाता है, जिसके फलस्वरूप गौण-उत्पाद पैदा होती है। परम ब्रह्म परम सत्य हैं और उनसे उत्पन्न अन्य शक्तियाँ जिनका अलग अस्तित्व है, यथा जीव और यह जगत्, वे भी सत्य हैं। यह रूपान्तर का उदाहरण है, जिसे *विकार* या *परिणाम* कहते हैं। विकार का दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है—दूध एक सत्य है, किन्तु वही दूध दही में रूपान्तरित हो सकता है। इस तरह दही दूध का विकार है, यद्यपि दूध तथा दही के अवयव एक ही हैं।

छान्दोग्य-उपनिषद् में यह मन्त्र आता है—*ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्।* यह मन्त्र निस्सन्देह बतलाता है कि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है। परम सत्य की अचिन्त्य शक्तियाँ होती हैं, जैसाकि *श्वेताश्वतर उपनिषद* में समर्थन हुआ है (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*) और यह सारा प्रकट जगत् परमेश्वर की इन विभिन्न शक्तियों का प्रमाण है। परमेश्वर एक तथ्य हैं, अतएव परमेश्वर द्वारा जो कुछ भी सृजित हुआ है, वह भी वास्तविक है। हर वस्तु सत्य और पूर्ण (*पूर्णम्*) है, किन्तु मूल *पूर्णम्* अर्थात् पूर्ण परम सत्य जैसे के तैसे बने रहते हैं। *पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय।* परम सत्य इतने पूर्ण हैं कि यद्यपि उनसे असंख्य शक्तियाँ प्रकट होती हैं और अनेक सृष्टियाँ प्रकट होती हैं, जो उनसे भिन्न लगती हैं, तो भी वे अपना व्यक्तित्व बनाये रखते हैं। उनमें किसी भी दशा में ह्रास नहीं होता।

निष्कर्ष यह निकलता है कि सम्पूर्ण प्रकट सृष्टि परमेश्वर की शक्ति का रूपान्तर है; परमेश्वर या परम सत्य का खुद का नहीं; वे सदैव वैसे ही बने रहते हैं। भौतिक जगत् तथा जीव आदि स्रोत भगवान्, या परम सत्य या ब्रह्म के विकार हैं। दूसरे शब्दों में, परम सत्य या ब्रह्म मूल उपादान हैं और अन्य सभी इसी उपादान के रूपान्तर हैं। इसकी पुष्टि *तैत्तिरीय उपनिषद्* (३.१) में भी हुई है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।* "यह सम्पूर्ण प्रकट जगत् परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा सम्भव बनाया गया है।" इस श्लोक से सूचित होता है कि परम सत्य ब्रह्म मूल कारण हैं और जीव तथा जगत् का प्राकट्य इसके परिणाम हैं। चूँकि कारण सत्य है, अतएव परिणाम भी वास्तविक हैं। ये माया नहीं हैं। शंकराचार्य ने असंतुलित भाव से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है

कि इस जगत् को तथा जीवों को भगवान् के गौण-उत्पाद मानना माया है, क्योंकि भौतिक जगत् तथा जीवों के अस्तित्व (उनके मतानुसार) परम सत्य से सर्वथा भिन्न हैं। ज्ञान के ऐसे खिलवाड़ से मायावादी दार्शनिकों ने *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या* नारे का प्रचार किया है, जिसके अनुसार परम सत्य तथ्य है, किन्तु जगत् के प्राकट्य तथा जीव मात्र माया हैं, अथवा ये सभी परम सत्य हैं और भौतिक जगत् तथा जीव का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है।

अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि शंकराचार्य ने परमेश्वर, जीव तथा भौतिक प्रकृति को अविभाज्य तथा अज्ञान के रूप में प्रस्तुत करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा को आच्छादित करना चाहा है। वे मानते हैं कि यह भौतिक जगत् *मिथ्या* अर्थात् असत्य है, किन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। यदि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर तथ्य (सत्य) हैं, तो फिर उनकी सृष्टि मिथ्या कैसे हो सकती है? सामान्य व्यवहार तक में भौतिक जगत् को मिथ्या नहीं सोचा जा सकता। इसीलिए वैष्णव दार्शनिक कहते हैं कि यह भौतिक सृष्टि मिथ्या नहीं, अपितु क्षणिक है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से भिन्न है, परन्तु इसका सृजन भगवान् की शक्ति से बड़े ही अद्भुत ढंग से हुआ है, अतएव इसे मिथ्या कहना निन्दनीय है।

अभक्तगण भौतिक प्रकृति की अद्भुत सृष्टि की वास्तव में प्रशंसा करते हैं, किन्तु वे इस सृष्टि के मूल कारण रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बुद्धि और शक्ति की प्रशंसा नहीं कर पाते। किन्तु श्रीपाद रामानुजाचार्य *ऐतरेय उपनिषद्* (१.१.१) के एक वैदिक सूत्र *आत्मा वा इदमग्र आसीत्* का उल्लेख करते हैं, जो यह बताता है कि सृष्टि के पूर्व परमात्मा या परम सत्य विद्यमान थे। यदि कोई तर्क करे कि, "यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूर्णतया आध्यात्मिक हैं, तो वे सृष्टि के उद्गम किस प्रकार हो सकते हैं और उनमें एकसाथ भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ कैसे हो सकती हैं?" इस चुनौती का उत्तर देने के लिए श्रीपाद रामानुजाचार्य *तैत्तिरीय उपनिषद* (३.१) के निम्नलिखित मन्त्र का प्रमाण देते हैं :

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥

यह मन्त्र पुष्टि करता है कि सम्पूर्ण प्रकट जगत् परम सत्य से प्रकट होता है, उन्हीं पर आश्रित होता है और प्रलय के बाद पुनः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या परम सत्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। जीव मूलतः आध्यात्मिक है और जब वह आध्यात्मिक जगत् में या परमेश्वर के शरीर में प्रविष्ट होता है, तब भी व्यक्तिगत आत्मा के रूप में उसकी अलग पहचान बनी रहती है। इस सन्दर्भ में श्रीपाद रामानुजाचार्य उदाहरण देते हैं कि जब कोई हरा पक्षी हरे वृक्ष में प्रवेश करता है, तो वह वृक्ष से एकाकार नहीं हो जाता। यद्यपि वह वृक्ष की हरियाली से घुला-मिला प्रतीत होता है, किन्तु पक्षी के रूप में वह अपनी अलग पहचान बनाये रखता है। इसी तरह से दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। जब कोई पशु जंगल में जाता है, तो वह भले ही जंगल से एकाकार होता दिखाई दे, किन्तु वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाये रखता है। उसी प्रकार भौतिक जगत् में भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति वाले जीव अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व बनाये रखते हैं। इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियाँ इस जगत् के भीतर पारस्परिक क्रिया करती हैं, किन्तु वे अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखती हैं। अतः भौतिक या आध्यात्मिक शक्तियों के साथ मिलन व्यक्तित्व के विनाश का सूचक नहीं है। श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार यद्यपि भगवान् की सारी शक्तियाँ एक हैं, फिर भी वे अपनी-अपनी अलग पहचान (*वैशिष्ट्य*) बनाये रखती हैं।

श्रीपाद शंकराचार्य ने *वेदान्त-सूत्र* के *आनन्दमयोऽभ्यासात्* शब्दों की गलत व्याख्या करके पाठकों को पथभ्रष्ट करने का प्रयास किया है। यही नहीं, उन्होंने व्यासदेव में भी त्रुटियाँ ढूँढने का प्रयास किया है। यहाँ पर *वेदान्त-सूत्र* के सभी सूत्रों की परीक्षा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम *वेदान्त-सूत्र* पर एक अलग ग्रंथ लिखना चाहते हैं।

परिणाम-वादे ईश्वर हयेन विकारी ।
एत कहि' 'विवर्त'-वाद स्थापना ये करि ॥ १२२॥

परिणाम-वादे ईश्वर हयेन विकारी ।
एत कहि' 'विवर्त'-वाद स्थापना ये करि ॥ १२२॥

परिणाम-वादे—शक्ति के परिवर्तन के तर्क को स्वीकार करके; **ईश्वर**—ईश्वर; **हयेन**—हो जाते हैं; **विकारी**—विकारी, परिवर्तित; **एत कहि'**—ऐसा कहकर; **विवर्त**—भ्रम, माया; **वाद**—तर्क, सिद्धान्त; **स्थापना**—स्थापना; **ग्रे**—क्या; **करि**—करते हैं।

अनुवाद

"शंकराचार्य के अनुसार भगवान् की शक्ति के रूपान्तर (विकार) के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से अप्रत्यक्ष रीति से परम सत्य के रूपान्तरित होने का भ्रम उत्पन्न होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टीका है कि यदि कोई *परिणामवाद* अर्थात् शक्ति के रूपान्तर को ठीक से नहीं समझता, तो वह इस प्रकट भौतिक जगत् तथा जीव विषयक सत्य को कुछ और ही समझ बैठेगा। *छान्दोग्य उपनिषद्* (६.८.४) में कहा गया है, *सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः।* भौतिक जगत् तथा जीव पृथक्-पृथक् हैं और वे शाश्वत सत्य हैं, मिथ्या नहीं हैं। किन्तु शंकराचार्य ने व्यर्थ ही इस डर से कि *परिणामवाद* (शक्ति के रूपान्तर) से ब्रह्म रूपान्तरित (*विकारी*) हो जायेंगे, यह मान लिया है कि भौतिक जगत् तथा जीव दोनों ही मिथ्या हैं और उनका कोई व्यक्तित्व नहीं है। उन्होंने वाग्जाल द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जीवों तथा भौतिक जगत् की व्यक्तिगत पहचान भ्रामक है और उन्होंने रज्जु (रस्सी) को सर्प मानने या सीपी को सोना समझने के दृष्टान्त दिये हैं। इस तरह उन्होंने अत्यन्त घृणित ढंग से सामान्य लोगों को ठगा है।

रज्जु को सर्प समझने का दृष्टान्त *माण्डूक्य उपनिषद्* में उल्लिखित है, किन्तु वहाँ पर इसका आशय शरीर को आत्मा समझने की भूल कर बैठने की व्याख्या करना है। चूँकि आत्मा वास्तव में आध्यात्मिक कण है, जैसाकि *भगवद्गीता* (*ममैवांशो जीवलोके*) में इसकी पुष्टि हुई है, माया (*विवर्तवाद*) के कारण पशु सदृश मनुष्य शरीर को आत्मा मानने लगता है। यह *विवर्त* या माया का सही उदाहरण है। *अतत्त्वतोऽन्यथा बुद्धिर्विवर्त इत्युदाहृतः* श्लोक ऐसे विवर्त का वर्णन करता है। असली तथ्यों को न जानना और परिणामस्वरूप एक वस्तु को भूल से दूसरी मानना (यथा शरीर को ही स्वयं या आत्मा मान बैठना) *विवर्तवाद*

कहलाता है। प्रत्येक बद्धजीव, जो शरीर को आत्मा मानता है, वह इस विवर्तवाद द्वारा मोहित होता है। जब कोई सर्वशक्तिमान भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को भूल जाता है, तब वह इसी *विवर्तवाद* का शिकार होता है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कभी भी बदले बिना यथारूप में किस प्रकार रहते हैं, इसकी व्याख्या *ईशोपनिषद* में मिलती है—*पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।* ईश्वर पूर्ण हैं। यदि उनसे एक पूर्ण जगत् को निकाल लिया जाए, तो भी वे पूर्ण ही रहते हैं। यह भौतिक सृष्टि भगवान् की शक्ति से प्रकट है, किन्तु वे तब भी वही व्यक्ति बने रहते हैं। उनका रूप, परिकर, गुण इत्यादि कभी क्षीण नहीं होते। श्रील जीव गोस्वामी अपने *परमात्म-सन्दर्भ* ग्रन्थ में *विवर्तवाद* की टीका इस प्रकार करते हैं : "विवर्तवाद के प्रभाव में आकर मनुष्य पृथक् हस्तीयों को अर्थात् प्रकट जगत् तथा जीवों को ब्रह्म से एकाकार मान बैठता है। ऐसा वास्तविक तथ्य के प्रति पूर्ण अनभिज्ञता के कारण होता है। परम सत्य या परब्रह्म सर्वदा एक और अपरिवर्तनीय रहते हैं। वे अस्तित्व की अन्य सारी धारणाओं से पूर्णतया मुक्त रहते हैं। वे मिथ्या अहंकार से पूर्णतया मुक्त होते हैं, क्योंकि उनका स्वरूप पूर्ण आध्यात्मिक है। उनका अज्ञान तथा भ्रान्ति (विवर्तवाद) के प्रभाव में आना नितान्त असम्भव है। परम सत्य हमारी कल्पना से परे हैं। हमें स्वीकार करना चाहिए कि उनमें निर्मल गुण पाये जाते हैं, जो प्रत्येक जीव में नहीं होते। वे सामान्य जीवों के दोषों से रंच-भर भी कलुषित नहीं होते, इसलिए हमें परम सत्य को अचिन्त्य शक्तियों से युक्त समझना चाहिए।"

বস্তুতঃ পরিণাম-বাদ——সেই সে প্রমাণ ।
দেহে আত্ম-বুদ্ধি——এই বিবর্তের স্থান ॥ ১২৩॥

वस्तुतः परिणाम-वाद——सेइ से प्रमाण ।
देहे आत्म-बुद्धि——एइ विवर्तेर स्थान ॥ १२३॥

वस्तुतः—वास्तव में; **परिणाम-वाद**—शक्ति के परिवर्तन का सिद्धान्त, शक्ति के विकार का सिद्धान्त; **सेइ**—वह; **से**—केवल; **प्रमाण**—प्रमाण; **देहे**—शरीर में; **आत्म-बुद्धि**—आत्म-बोध; **एइ**—यह; **विवर्तेर**—माया का, भ्रम का; **स्थान**—स्थान।

अनुवाद

"शक्ति का रूपान्तर एक जाँचा हुआ तथ्य है। यह आत्मा के देहात्मभाव की गलत धारणा है, जो भ्रम या विवर्त है।

तात्पर्य

जीव आध्यात्मिक स्फुलिंग है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अंश है। दुर्भाग्यवश वह शरीर को आत्मा समझ लेता है और यह भ्रान्ति ही *विवर्त* अर्थात् 'असत्य को सत्य के रूप में स्वीकार कर लेना' कहलाती है। यह शरीर आत्मा नहीं है, किन्तु पशुतुल्य तथा मूर्ख व्यक्ति इसे ऐसा ही समझते हैं। विवर्त आत्मा के स्वरूप में परिवर्तन का द्योतक नहीं होता। यह भ्रान्त धारणा कि शरीर ही आत्मा है, वही विवर्त है। उसी प्रकार जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहिरंगा शक्ति, *भगवद्गीता* में उल्लिखित आठ स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों (*भूमिरापोऽनलो वायु* इत्यादि) से युक्त होकर, विभिन्न अवस्थाओं में क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त करती है, उस समय भगवान् परिवर्तित नहीं होते।

अविचिन्त्य-शक्ति-युक्त श्री-भगवान् ।
इच्छाय जगद्रूपे पाय परिणाम ॥ १२४॥

अविचिन्त्य-शक्ति-युक्त श्री-भगवान् ।
इच्छाय जगद्रूपे पाय परिणाम ॥ १२४॥

अविचिन्त्य—अचिन्त्य; **शक्ति**—शक्ति; **युक्त**—युक्त; **श्री**—ऐश्वर्य-पूर्ण; **भगवान्**—भगवान्; **इच्छाय**—उनकी इच्छा से; **जगत्-रूपे**—प्रकट जगत् के रूप में; **पाय**—हो जाते हैं; **परिणाम**—उनकी शक्ति से परिवर्तित।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सभी तरह से ऐश्वर्यवान हैं। अतएव उन्होंने अपनी अचिन्त्य शक्तियों से भौतिक जगत् को रूपान्तरित कर दिया है।

तथापि अचिन्त्य-शक्त्ये हय अविकारी ।
प्राकृत चिन्तामणि ताहे दृष्टान्त ये धरि ॥ १२५॥

तथापि अचिन्त्य-शक्त्ये हय अविकारी ।
प्राकृत चिन्तामणि ताहे दृष्टान्त ये धरि ॥ १२५॥

तथापि—तथापि; **अचिन्त्य-शक्त्ये**—अचिन्त्य शक्ति से; **हय**—रहते हैं; **अविकारी**—अविकारी, परिवर्तन के बिना; **प्राकृत**—भौतिक; **चिन्तामणि**—चिन्तामणि पत्थर; **ताहे**—उस दृष्टि से; **दृष्टान्त**—दृष्टान्त; **ग्रे**—जो; **धरि**—हम स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

"पारस पत्थर अपनी शक्ति से लोहे को सोने में बदल देता है, फिर भी स्वयं वैसा ही रहता है। इस दृष्टान्त द्वारा हम यह समझ सकते हैं कि यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी असंख्य शक्तियों का रूपान्तर करते हैं, किन्तु वे स्वयं अपरिवर्तित रहते हैं।

नाना रत्न-राशि हय चिन्तामणि हैते ।
तथापिह मणि रहे स्वरूपे अविकृते ॥१२६॥

नाना रत्न-राशि हय चिन्तामणि हैते ।
तथापिह मणि रहे स्वरूपे अविकृते ॥ १२६ ॥

नाना—प्रकार; **रत्न-राशि**—अमूल्य रत्न; **हय**—सम्भव हो जाते हैं; **चिन्तामणि**—चिन्तामणि; **हैते**—से; **तथापिह**—तथापि, निश्चित रूप से; **मणि**—चिन्तामणि; **रहे**—रहता है; **स्वरूपे**—आपने मूल-रूप में; **अविकृते**—अविकृत।

अनुवाद

"यद्यपि पारस पत्थर (चिन्तामणि) अनेक प्रकार के मूल्यवान रत्नों को उत्पन्न करता है, किन्तु वह वैसा ही रहता है। वह अपने मूल रूप को नहीं बदलता।

प्राकृत-वस्तुते यदि अचिन्त्य-शक्ति हय ।
ईश्वरेर अचिन्त्य-शक्ति,—इथे कि विस्मय ॥१२७॥

प्राकृत-वस्तुते यदि अचिन्त्य-शक्ति हय ।
ईश्वरेर अचिन्त्य-शक्ति,—इथे कि विस्मय ॥ १२७ ॥

प्राकृत-वस्तुते—भौतिक वस्तुएँ; **यदि**—यदि; **अचिन्त्य**—अचिन्त्य; **शक्ति**—शक्ति; **हय**—सम्भव होती है; **ईश्वरेर**—भगवान् की; **अचिन्त्य**—अचिन्त्य; **शक्ति**—शक्ति; **इथे**—इसमें; **कि**—क्या; **विस्मय**—आश्चर्यजनक।

अनुवाद

"यदि भौतिक वस्तुओं में ऐसी अचिन्त्य शक्ति हो सकती है, तो फिर हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति में क्यों विश्वास नहीं करना चाहिए?

तात्पर्य

इस श्लोक में दिये गये श्री चैतन्य महाप्रभु के तर्क को सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है यदि वह सूर्य की क्रियाओं के विषय में ही सोच-विचार करे, जो अनन्त काल से असीम ऊष्मा तथा प्रकाश देता आ रहा है, किन्तु फिर भी उसकी शक्ति का थोड़ा भी ह्रास नहीं हुआ है। आधुनिक विज्ञान का विश्वास है कि सूर्य के प्रकाश द्वारा ही सारे जगत् का पालन होता है और वास्तव में यह देखा जा सकता है कि किस तरह सूर्य-प्रकाश की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से ब्रह्माण्ड-भर में व्यवस्था बनी हुई है। वनस्पतियों का उगना तथा ग्रहों का भ्रमण तक सूर्य की ऊष्मा और प्रकाश के ही कारण सम्पन्न होता है। इसलिए कभी-कभी आधुनिक वैज्ञानिक सूर्य को सृष्टि का मूल कारण मान लेते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि सूर्य तो माध्यम मात्र है, क्योंकि इसकी भी रचना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सर्वोपरि शक्ति द्वारा हुई है। सूर्य तथा पारस पत्थर के अतिरिक्त भी ऐसी अन्य अनेक भौतिक वस्तुएँ हैं, जो अपनी शक्ति को अनेक प्रकार से रूपान्तरित करती हैं और फिर भी वे जैसी की तैसी बनी रहती हैं। अतएव भगवान् के लिए, जो मूल कारण हैं, यह आवश्यक नहीं कि अपनी विभिन्न शक्तियों के रूपान्तरों या परिवर्तनों के कारण वे भी परिवर्तित हों।

विवर्तवाद तथा परिणामवाद की श्रीपाद शंकराचार्य द्वारा जो व्याख्या की गई है, उसकी असत्यता की पहचान वैष्णव आचार्यों द्वारा, विशेषतया जीव गोस्वामी द्वारा, की जा चुकी है, जिनका मत है कि शंकराचार्य *वेदान्त-सूत्र* को वास्तव में समझे ही नहीं। *आनन्दमयोऽभ्यासात्*—वास्तव में केवल इसी एक सूत्र की शंकराचार्य ने जो व्याख्या की है, उसमें *मयट्* प्रत्यय में जो वाग्जाल का आश्रय लिया गया है, उससे सिद्ध होता है कि उन्हें *वेदान्त-सूत्र* का बहुत कम ज्ञान था। वे वेदान्त दर्शन के सूत्रों द्वारा केवल अपने निर्विशेषवाद की पुष्टि

करना चाह रहे थे। किन्तु वस्तुत: वे ऐसा करने में असफल रहे हैं, क्योंकि वे सशक्त तर्क प्रस्तुत नहीं कर पाये। इस सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी *ब्रह्मपुच्छंप्रतिष्ठा* सूत्र (*तैत्तिरीय उपनिषद्* २.५) का प्रमाण देते हैं, जिससे यह वैदिक प्रमाण प्राप्त होता है कि ब्रह्म ही प्रत्येक वस्तु का उद्गम है। इस श्लोक की व्याख्या करते समय श्रीपाद शंकराचार्य ने विभिन्न संस्कृत शब्दों का ऐसा अर्थ लगाया है, जिससे वे जीव गोस्वामी के अनुसार, यह कहना चाहते हैं कि व्यासदेव को उच्च तर्क शास्त्र का बहुत कम ज्ञान था। *वेदान्त-सूत्र* के वास्तविक अर्थ से ऐसे मनमाने भटकाव से ऐसे लोगों के एक वर्ग का जन्म हुआ है, जो शब्दजाल से वैदिक साहित्य, विशेषतया *भगवद्गीता,* का अपरोक्ष अर्थ निकालने का प्रयास करते हैं। इनमें से एक ने तो यहाँ तक कह डाला है कि *कुरुक्षेत्र* शब्द शरीर के अर्थ में आया है। ऐसी व्याख्या से यही लगता है कि न तो भगवान् कृष्ण को, न ही व्यासदेव को सही शब्दप्रयोग या व्युत्पत्ति आती थी। उन्होंने लोगों को ऐसी कल्पना करने के लिए प्रेरित किया है कि न तो कृष्ण को इसका पता था कि वे क्या बोल रहे हैं, न व्यासदेव को पता था कि वे क्या लिख रहे हैं, अत: भगवान् कृष्ण मायावादियों को अपने ग्रंथ की व्याख्या करने के लिए छोड़ गये। किन्तु ऐसी व्याख्याएँ केवल यही बताती हैं कि उनके समर्थकों को बहुत कम दार्शनिक ज्ञान था।

इस तरह से *वेदान्त-सूत्र* तथा अन्य वैदिक साहित्य का मिथ्या अपरोक्ष अर्थ निकालने में व्यर्थ समय नष्ट करने के स्थान पर मनुष्य को चाहिए कि इन ग्रंथों के शब्दों को यथारूप स्वीकार कर ले। इसीलिए *भगवद्गीता यथारूप* प्रस्तुत करते समय हमने मूल शब्दों के अर्थों को बदला नहीं है। इसी तरह यदि *वेदान्त-सूत्र* को मनमानी तथा द्वेषपूर्ण मिलावट के बिना मूल रूप में पढ़ा जाए, तो यह आसानी से समझ में आ जायेगा। इसीलिए श्रील व्यासदेव *श्रीमद्भागवत* (१.१.१) में प्रथम सूत्र *जन्माद्यस्य यत:* से प्रारम्भ करके *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या करते हैं।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ: स्वराट्।

"मैं उनका (भगवान् कृष्ण का) ध्यान करता हूँ, जो दिव्य सत्य रूप हैं, समस्त कारणों के आदि कारण हैं, जिनसे सारे प्रकट ब्रह्माण्डों का उदय होता है, जिनमें

उनकी स्थिति रहती है और जिनके द्वारा फिर वे विनष्ट कर दिये जाते हैं। मैं शाश्वत तेजस्वी उन भगवान् का ध्यान करता हूँ, जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सारे जगत् को जानते हुए भी पूर्ण स्वतन्त्र रहते हैं।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अच्छी तरह जानते हैं कि हर कार्य को किस तरह पूर्णरूपेण किया जाता है। वे *अभिज्ञ*—सदैव पूर्णतया अवगत होते हैं। इसलिए *भगवद्गीता* (७.२६) में भगवान् ने कहा है कि वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य की हर बात जानते हैं, किन्तु उन्हें केवल भक्त ही वास्तविक रूप में जानते हैं, अन्य कोई नहीं। इसलिए भक्तगण भगवान् को कम से कम आंशिक रूप में जानते हैं, किन्तु ऐसे मायावादी दार्शनिक जो परम सत्य को समझने के लिए वृथा तर्कवितर्क करते रहते हैं, व्यर्थ ही अपना समय नष्ट करते हैं।

'प्रणव' से महावाक्य—वेदेर निदान ।
ईश्वर-स्वरूप प्रणव सर्व-विश्व-धाम ॥ १२८॥

प्रणव—ओंकार; **से**—वह; **महा-वाक्य**—दिव्य ध्वनि; **वेदेर**—वेदों का; **निदान**—मूल सिद्धान्त; **ईश्वर-स्वरूप**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सीधा प्रतिनिधित्व; **प्रणव**—ओंकार; **सर्व-विश्व**—सभी ब्रह्माण्डों का; **धाम**—आगार है।

अनुवाद

वैदिक साहित्य के प्रमुख शब्द अर्थात् वैदिक ॐकार की ध्वनि, समस्त वैदिक ध्वनियों का आधार है। इसलिए ॐकार को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ध्वनि रूप तथा जगत् के आगार के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

तात्पर्य

भगवद्गीता (८.१३) में ॐकार की महिमा का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

यह श्लोक बतलाता है कि ॐकार या प्रणव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करता है। अतएव यदि कोई मरते समय केवल ॐकार का स्मरण करता है, तो वह भगवान् का स्मरण करता है। इसलिए वह तुरन्त वैकुण्ठ-लोक को भेजा जाता है। ॐकार समस्त वैदिक मन्त्रों का मूल सिद्धान्त है, क्योंकि यह भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधित्व करता है, जिनको जानना समस्त वेदों का चरम लक्ष्य है, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। किन्तु मायावादी दार्शनिक *भगवद्गीता* में बताये गये इन सरल तथ्यों को नहीं समझ पाते; फिर भी उन्हें वेदान्ती होने का गर्व रहता है। इसीलिए हम लोग वेदान्ती दार्शनिकों को कभी-कभी *विदन्ती* अर्थात् बिना दाँत वाला (वि—रहित, बिना; दन्ती—दाँत वाला) कहते हैं। शंकर दर्शन के कथन, जो कि मायावादी दार्शनिक के दाँतों जैसे हैं, सदा से वैष्णव आचार्यों यथा रामानुजाचार्य जैसे महान् आचार्यों के प्रबल तर्कों द्वारा खण्डित होते रहे हैं। श्रीपाद रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य मायावादी दार्शनिकों के दाँत तोड़ने वाले हैं, जिन्हें "दन्तविहीन" या *विदन्ती* कहा जा सकता है।

जैसा ऊपर कहा गया है, *भगवद्गीता* (८.१३) में दिव्य ध्वनि ॐकार की व्याख्या हुई है :

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

"इस योगाभ्यास में सुस्थापित हो जाने के बाद तथा पवित्र शब्द ॐ, जो अक्षरों का परम संयोग है, उसका उच्चारण करते हुए यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन करता है और अपने शरीर का त्याग करता है, तो वह निश्चय ही वैकुण्ठ के आध्यात्मिक ग्रहों को जाता है।" यदि कोई यह सचमुच समझ जाता है कि ॐकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ध्वनि-अभिव्यक्ति है, तो चाहे वह ॐकार का उच्चारण करे या हरे कृष्ण मन्त्र का, परिणाम निश्चय ही एक-सा निकलता है।

पुनः *भगवद्गीता* (९.१७) में ही ॐकार की दिव्य ध्वनि की व्याख्या की गई है :

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रम् ॐकार ऋक् साम यजुरेव च॥

"मैं इस ब्रह्माण्ड का पिता, माता, आश्रय तथा पितामह हूँ। मैं ज्ञातव्य, पवित्र करने वाला तथा ॐ शब्द हूँ। मैं ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद भी हूँ।"

इसी तरह *भगवद्गीता* के सत्रहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक में दिव्य ध्वनि ॐ की और अधिक व्याख्या की गई है :

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

"सृष्टि के आदि काल से *ॐ तत् सत्* ये तीन शब्द परम सत्य (ब्रह्म) को बतलाने के लिए प्रयुक्त होते आये हैं। ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मंत्र-पाठ करते समय तथा भगवान् की तुष्टि के लिए यज्ञ करते समय इनका उच्चारण होता रहा है।"

सारे वैदिक साहित्य में ॐकार की महिमा का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने *भागवत् सन्दर्भ* नामक शोध-ग्रंथ में लिखा है कि वैदिक साहित्य में ॐकार को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नाम की ध्वनि तरंग माना गया है। केवल इसी दिव्य ध्वनि-तरंग से बद्धजीव माया के प्रभाव से छूट सकता है। कभी-कभी ॐकार को उद्धारक या *तार* भी कहा जाता है। *श्रीमद्भागवत* का शुभारम्भ ॐकार ध्वनि से होता है—*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।* इसलिए महान् भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने ॐकार को *ताराङ्कुर* अर्थात् भौतिक जगत् से उद्धार का बीज कहा है। चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनका पवित्र नाम तथा उनकी ध्वनि-तरंग ॐकार भी उन्हीं के समान हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि पवित्र नाम या ॐकार, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य प्रतिनिधि है, भगवान् की समस्त शक्तियों से युक्त है।

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

भगवान् के पवित्र नाम की पवित्र ध्वनि में सारी शक्तियाँ निहित हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भगवान् का पवित्र नाम या ॐकार साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है। दूसरे शब्दों में, जो कोई ॐकार तथा भगवान् के पवित्र

नाम हरे कृष्ण का उच्चारण करता है, वह भगवान् से उनके ध्वनि रूप में तुरन्त मिलता है। *नारद पञ्चरात्र* में स्पष्ट कहा गया है कि जो *अष्टाक्षर* अर्थात् *ॐ नमो नारायणाय* नामक आठ अक्षर वाले मन्त्र का जप करता है, उसके समक्ष साक्षात् भगवान् नारायण प्रकट होते हैं। *माण्डूक्य उपनिषद्* की भी ऐसी घोषणा है कि वैकुण्ठ-लोक में जो कुछ भी दिखता है, वह ॐकार की आध्यात्मिक शक्ति का विस्तार है।

श्रील जीव गोस्वामी ने समस्त उपनिषदों के आधार पर यह कहा है कि ॐकार सर्वोपरि परम सत्य है और सारे आचार्यों तथा प्रामाणिक विद्वानों ने इसे इसी रूप में स्वीकार किया है। ॐकार अनादि, परिवर्तनरहित, परम तथा सारे ह्रास एवं बाह्य कल्मष से मुक्त होता है। ॐकार हर वस्तु का आदि, मध्य और अन्त है और जो भी जीव ॐकार को इस रूप में समझ लेता है, वह आध्यात्मिक स्वरूप की पूर्णता को ॐकार में प्राप्त करता है। प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित होने के कारण ॐकार ईश्वर है, जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.६१) में पुष्ट हुआ है (*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*)। विष्णु के समान ही सर्वव्यापी होने के कारण ॐकार विष्णु के समान ही है। जो ॐकार तथा भगवान् विष्णु को अभिन्न रूप में जानता है, उसे शोक या मोह नहीं सताते। जो ॐकार का उच्चारण करता है, वह शूद्र न रहकर तुरन्त ही ब्राह्मण पद को प्राप्त होता है। ॐकार के उच्चारण मात्र से सारी सृष्टि को एक इकाई या भगवान् की शक्ति के विस्तार रूप में समझा जा सकता है। *इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्-स्थान-निरोधसम्भवाः*—"भगवान् स्वयं यह प्रकट विश्व हैं, फिर भी वे उससे अलिप्त हैं। उन्हीं से यह प्रकट विश्व उद्भूत हुआ है, उन्हीं पर आश्रित है और प्रलय के बाद उन्हीं में प्रविष्ट होता है।" (*भागवत* १.५.२०) यद्यपि जो यह नहीं समझता, वह भिन्न निष्कर्ष निकालता है, किन्तु *श्रीमद्भागवत* के अनुसार सम्पूर्ण विराट् जगत् भगवान् की शक्ति का विस्तार रूप है। भगवान् के पवित्र नाम ॐकार के उच्चारण द्वारा ही इस बात की अनुभूति की जा सकती है।

किन्तु मनुष्य को मूर्खतावश यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि चूँकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अतः हमने उनका चित्रण करने के लिए

अ, उ तथा म इन तीनों अक्षरों को जोड़कर एक संयोग बना दिया है। वास्तव में दिव्य ध्वनि ॐकार अ, उ तथा म इन तीनों अक्षरों का संयोग तो है, किन्तु इसमें दिव्य शक्ति होती है और जो भी इसका उच्चारण करता है, उसे तुरन्त ही अनुभव होने लगेगा कि ॐकार तथा भगवान् विष्णु अभिन्न हैं। कृष्ण घोषित करते हैं—*प्रणवः सर्ववेदेषु*—"मैं सारे वैदिक मन्त्रों में ॐ अक्षर हूँ।" (*भगवद्गीता* ७.८) अतएव यह निष्कर्ष निकालना होगा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनेक अवतारों में से ॐकार ध्वनि-अवतार है। सारे वेदों को यह मत मान्य है। मनुष्य को यह सदा स्मरण में रखना होगा कि भगवान् का पवित्र नाम तथा भगवान् स्वयं सदैव अभिन्न हैं (*अभिन्नत्वान् नामनामिनोः*)। चूँकि ॐकार समस्त वैदिक ज्ञान का मूल सिद्धान्त है, अतएव किसी भी वैदिक स्तोत्र के उच्चारण के पूर्व इसका उच्चारण किया जाता है। ॐकार के बिना कोई भी वेद मन्त्र सफल नहीं होता। इसीलिए गोस्वामियों का अभिमत है कि *प्रणव* (*ॐकार*) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है और उन्होंने ॐकार का विश्लेषण इसके अक्षरों के अनुसार किया है :

अकारेणोच्यते कृष्णः सर्वलोकैकनायकः।
उकारेणोच्यते राधा मकारो जीववाचकः॥

ॐकार तीन अक्षरों से मिलकर बना है—अ, उ तथा म। *अकारेणोच्यते कृष्णः*—*अ* अक्षर (अकार) कृष्ण का सूचक है, जो *सर्वलोकैकनायकः* अर्थात् सारे जीवों तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक लोकों के नायक हैं। *नायक* का अर्थ है नेता। वे सर्वोच्च नेता हैं (*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*)। *उ* अक्षर (उकार) कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधारानी का सूचक है और *म* अक्षर (मकार) जीवों को निर्देशित करता है। इस प्रकार ॐ कृष्ण, उनकी शक्ति और उनके नित्य सेवकों का मिश्रण है। दूसरे शब्दों में, ॐकार कृष्ण, उनके नाम, यश, लीला, परिकर, विस्तार, भक्तगण, शक्तियाँ तथा उनसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु का द्योतक है। जिस प्रकार *चैतन्य-चरितामृत* के इस श्लोक में चैतन्य महाप्रभु ने कहा है *सर्वविश्वधाम*—ॐकार उसी प्रकार से प्रत्येक वस्तु का आश्रय है, जिस प्रकार कृष्ण प्रत्येक वस्तु के आश्रय हैं (*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्*)।

मायावादी दार्शनिक अनेक वैदिक मन्त्रों को *महावाक्य* अर्थात् प्रमुख वैदिक मन्त्र मानते हैं—यथा *तत्त्वमसि* (*छान्दोग्य उपनिषद्* ६.८.७), *इदं सर्वं यदयम् आत्मा* तथा *ब्रह्मेदं सर्वम्* (*बृहदारण्यक उपनिषद्* २.५.१), *आत्मैवेदं सर्वम्* (छान्दोग्य उपनिषद् ७.२५.२) तथा *नेह नानास्ति किञ्चन* (कठ उपनिषद् २.१.११)। यही सबसे बड़ी भूल है। केवल ॐकार ही *महावाक्य* है। शेष सारे मन्त्र जिन्हें मायावादी महावाक्य मानते हैं, केवल गौण हैं। उन्हें महावाक्य या महामन्त्र नहीं माना जा सकता। *तत्त्वमसि* मन्त्र वेदों के केवल आंशिक ज्ञान का द्योतक है, जबकि ॐकार वेदों के पूर्ण ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए वह दिव्य ध्वनि जिसमें सारा वैदिक ज्ञान निहित है, वह *ॐकार* (*प्रणव*) है।

शंकराचार्य के अनुयायी जितने भी शब्दों का उच्चारण करते हैं, उनमें से ॐकार के अतिरिक्त अन्य कोई महावाक्य माने जाने योग्य नहीं है। वे मात्र सामयिक टिप्पणियाँ करने वाले हैं। किन्तु शंकराचार्य ने कभी भी महावाक्य ॐकार के उच्चारण पर बल नहीं दिया, उन्होंने एकमात्र *तत्त्वमसि* को महावाक्य माना है। जीव के ईश्वर होने की कल्पना करते हुए उन्होंने *वेदान्त-सूत्र* के सारे मन्त्रों की गलत व्याख्या करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जीवों का तथा परम सत्य का पृथक्-पृथक् अस्तित्व नहीं है। यह वैसा ही है, जैसाकि राजनीतिज्ञ अहिंसा को *भगवद्गीता* से प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। कृष्ण असुरों के लिए हिंसक थे, किन्तु यह सिद्ध करना कि वे हिंसक नहीं थे, अन्ततोगत्वा कृष्ण को नकारना है। जिस तरह *भगवद्गीता* की ऐसी व्याख्याएँ हास्यास्पद हैं, उसी तरह *वेदान्त-सूत्र* की शंकराचार्य की व्याख्या भी हास्यास्पद है और कोई भी विवेकशील तथा तर्कशील व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करेगा। वर्तमान में केवल तथाकथित वेदान्ती ही *वेदान्त-सूत्र* की गलत व्याख्या नहीं करते, किन्तु अन्य धूर्त लोग भी ऐसा करते हैं, जो इतने नीच हैं कि संन्यासियों तक को मांस, मछली तथा अंडा खाने का सुझाव देते हैं। इस तरह शंकर के तथाकथित अनुयायी या निर्विशेष मायावादी अधिकाधिक अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं। भला ऐसे नीच लोग उस *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या कैसे कर सकते हैं, जो समस्त वैदिक ज्ञान का सार है?

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने खुले शब्दों में कहा है—*मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश*—"जो कोई मायावादियों से *वेदान्त-सूत्र* की टीका सुनता है, समझो उसका सर्वनाश हो गया।" जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में बतलाया गया है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों का लक्ष्य कृष्ण को जानना है। किन्तु मायावादी दर्शन ने हर व्यक्ति को कृष्ण से विमुख किया है। अतएव संसार को ऐसी अधोगति से बचाने के लिए विश्वभर में कृष्णभावनामृत आन्दोलन की भारी आवश्यकता है। प्रत्येक विवेकशील तथा बुद्धिमान व्यक्ति को मायावादियों की दार्शनिक व्याख्याओं को त्यागकर वैष्णव आचार्यों की व्याख्या स्वीकार करनी चाहिए। वेदों के वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए मनुष्य को *भगवद्गीता यथारूप* पढ़नी चाहिए।

सर्वाश्रय ईश्वरेर प्रणव उद्देश ।
'तत्त्वमसि'—वाक्य हय वेदेर एकदेश ॥ १२९॥

सर्वाश्रय ईश्वरेर प्रणव उद्देश ।
'तत्त्वमसि'—वाक्य हय वेदेर एकदेश ॥ १२९॥

सर्व-आश्रय—सबके आश्रय; **ईश्वरेर**—भगवान् के; **प्रणव**—ॐकार; **उद्देश**—उद्देश्य; **तत् त्वम् असि**—*तत् त्वम् असि* वैदिक मंत्र ("तुम वही हो"); **वाक्य**—कथन; **हय**—हो जाता है; **वेदेर**—वैदिक साहित्य का; **एक-देश**—आंशिक समझ।

अनुवाद

"प्रणव (ॐकार) को समस्त वैदिक ज्ञान के आगार के रूप में प्रस्तुत करना ही भगवान् का उद्देश्य है। *तत्त्वमसि* शब्द वैदिक ज्ञान की केवल आंशिक व्याख्या है।

तात्पर्य

तत्त्वमसि का अर्थ है, "तुम वही आध्यात्मिक सत्ता हो।"

'प्रणव, महा-वाक्य—ताहा करि' आच्छादन ।
महावाक्ये करि 'तत्त्वमसि'र स्थापन ॥ १३०॥

'प्रणव, महा-वाक्य—ताहा करि' आच्छादन ।
महावाक्ये करि 'तत्त्वमसि'र स्थापन ॥ १३०॥

प्रणव—ओंकार; **महा-वाक्य**—प्रमुख मंत्र; **ताहा**—वह; **करि'**—करके; **आच्छादन**—आच्छादित; **महा-वाक्ये**—मुख्य मंत्र में; **करि**—मैं करता हूँ; **'तत् त्वम् असि'र स्थापन**—*तत् त्वम् असि* की स्थापना।

अनुवाद

"प्रणव (ॐकार) वेदों में महावाक्य (महामन्त्र) है। शंकराचार्य के अनुयायी इसे आच्छादित करके तत्त्वमसि मन्त्र पर बिना किसी प्रमाण के बल देते हैं।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक *तत्त्वमसि, सोऽहम्* जैसे कथनों पर तो बल देते हैं, किन्तु वे वास्तविक महामन्त्र, प्रणव (ॐकार) पर बल नहीं देते। अतएव वैदिक ज्ञान की गलत व्याख्या करने के कारण वे भगवान् के चरणकमलों में सबसे बड़े अपराधी हैं। चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट कहते हैं—*मायावादी कृष्णे अपराधी*—"मायावादी दार्शनिक भगवान् कृष्ण के सबसे बड़े अपराधी हैं।" भगवान् कृष्ण घोषित करते हैं :

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु॥

"जो लोग ईर्ष्यालु तथा दुष्ट हैं, जो मनुष्यों में सबसे अधम हैं, उन्हें मैं निरन्तर भौतिक संसार रूपी सागर में विभिन्न आसुरी योनियों में डाल देता हूँ।" (*भगवद्गीता* १६.१९) आसुरी योनियाँ मायावादी दार्शनिकों के मरने की प्रतीक्षा में रहती हैं, क्योंकि ये लोग कृष्ण से ईर्ष्या करते हैं। जब *भगवद्गीता* (९.३४) में कृष्ण कहते हैं—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु* ("अपने मन को सदा मेरा चिन्तन करने में, मेरा भक्त बनने में, मुझे ही नमस्कार करने तथा मेरी पूजा करने में लगाओ"), तो एक आसुरी विद्वान कहता है कि यह कृष्ण नहीं हैं, जिसकी शरण में मनुष्य को जाना है। वह विद्वान इस जीवन में तो कष्ट भोग ही रहा है और यदि यह निर्धारित कष्ट इस जीवन में पूरा नहीं होता, तो अगले जन्म में उसे फिर भोगना पड़ेगा। मनुष्य को इस बात में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से ईर्ष्या न करे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु अगले श्लोक में वेदों के उद्देश्य को स्पष्टतया बतलाते हैं।

सर्व-वेद-सूत्रे करे कृष्णेर अभिधान ।
मुख्य-वृत्ति छाड़ि' कैल लक्षणा-व्याख्यान ॥ १३१ ॥

सर्व-वेद-सूत्रे करे कृष्णेर अभिधान ।
मुख्य-वृत्ति छाड़ि' कैल लक्षणा-व्याख्यान ॥ १३१ ॥

सर्व-वेद-सूत्रे—सभी *वेदान्त-सूत्रों* में; **करे**—स्थापित करता है; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **अभिधान**—व्याख्या; **मुख्य-वृत्ति**—मुख्य व्याख्या; **छाड़ि'**—छोड़कर; **कैल**—किया; **लक्षणा**—अप्रत्यक्ष; **व्याख्यान**—व्याख्यान।

अनुवाद

"सारे वैदिक सूत्रों तथा साहित्य का लक्ष्य भगवान् कृष्ण को ही समझना है, किन्तु शंकराचार्य के अनुयायियों ने वेदों के वास्तविक अर्थ को अपनी अप्रत्यक्ष व्याख्याओं से आच्छादित कर दिया है।

तात्पर्य

कहा गया है :

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

"वैदिक साहित्य में, जिसमें रामायण, पुराण तथा महाभारत सम्मिलित हैं, आदि से लेकर अन्त तक तथा बीच में भी केवल भगवान् हरि की ही व्याख्या की गई है।"

स्वतः-प्रमाण वेद——प्रमाण-शिरोमणि ।
लक्षणा करिले स्वतः-प्रमाणता-हानि ॥ १३२ ॥

स्वतः-प्रमाण वेद——प्रमाण-शिरोमणि ।
लक्षणा करिले स्वतः-प्रमाणता-हानि ॥ १३२ ॥

स्वतः-प्रमाण—स्वतः प्रमाण, अपने आप में प्रमाणित; **वेद**—वैदिक साहित्य; **प्रमाण**—प्रमाण; **शिरोमणि**—उच्चतम; **लक्षणा**—व्याख्या; **करिले**—करना; **स्वतः-प्रमाणता**—स्वतः प्रमाणित; **हानि**—खो जाता है।

अनुवाद

"स्वतःप्रमाणित वैदिक साहित्य सभी प्रमाणों में सर्वोपरि है, किन्तु

यदि इस साहित्य की व्याख्या की जाती है, तो इसकी स्वत:प्रमाणितता नष्ट हो जाती है।

तात्पर्य

हम अपने कथनों के समर्थन हेतु वैदिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु यदि हम इसकी व्याख्या अपने खुद के निर्णय के अनुसार करें, तो वैदिक साहित्य का प्रमाण अधूरा या व्यर्थ हो जाता है। दूसरे शब्दों में, वैदिक साहित्य की व्याख्या करने से वैदिक प्रमाण का मूल्य घट जाता है। जब कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का उद्धरण देता है, तो ऐसा समझा जाता है कि उद्धरण प्रामाणिक है। भला कोई ऐसे प्रमाण को अपने वश में कैसे ला सकता है? यह तो अंकुर या कली को ही नष्ट करने के समान है, जिससे कि पुष्प तथा फल उत्पन्न ही न हो सकें (*principiis obsta*)।

এই মত প্রতিসূত্রে সহজার্থ ছাড়িয়া ।
গৌণার্থ ব্যাখ্যা করে কল্পনা করিয়া ॥ ১৩৩॥

এइ मत प्रतिसूत्रे सहजार्थ छाड़िया ।
गौणार्थ व्याख्या करे कल्पना करिया ॥ १३३॥

एइ मत—इस प्रकार; **प्रति-सूत्रे**—*वेदान्त-सूत्र* के प्रत्येक मंत्र में; **सहज-अर्थ**—स्पष्ट सामान्य अर्थ; **छाड़िया**—त्यागकर; **गौण-अर्थ**—गौण अर्थ; **व्याख्या**—व्याख्या; **करे**—वह करता है; **कल्पना करिया**—कल्पना करके।

अनुवाद

"मायावाद सम्प्रदाय के सदस्यों ने वैदिक साहित्य के वास्तविक एवं सरलता से समझे जाने वाले अर्थ को छोड़कर अपने दर्शन को सिद्ध करने के लिए अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार अप्रत्यक्ष (गौण) अर्थ प्रचलित किये हैं।"

तात्पर्य

दुर्भाग्यवश शंकराचार्य की व्याख्या ने प्राय: सम्पूर्ण जगत् को आच्छादित कर दिया है। इसलिए वैदिक साहित्य के मूल, सरलता से समझे जाने वाले सहज सार को प्रस्तुत करने की अत्यधिक आवश्यकता है। इसीलिए हमने

भगवद्गीता यथारूप के प्रस्तुतिकरण से ऐसा करना प्रारम्भ कर दिया है और हम समूचे वैदिक साहित्य को उसके प्रत्यक्ष शब्दार्थ के रूप में प्रस्तुत करना चाह रहे हैं।

এই মতে প্রতিসূত্রে করেন দূষণ ।
শুনি' চমৎকার হৈল সন্ন্যাসীর গণ ॥ ১৩৪॥

এइ मते प्रतिसूत्रे करेन दूषण ।
शुनि' चमत्कार हैल सन्न्यासीर गण ॥ १३४॥

एइ मते—इस प्रकार; **प्रति-सूत्रे**—प्रत्येक सूत्र में; **करेन**—दिखाता है; **दूषण**—दोष; **शुनिया**—सुनकर; **चमत्कार**—आश्चर्यचकित हो गये; **हैल**—वे हो गये; **सन्न्यासीर**—सभी मायावादियों का; **गण**—दल।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रकार शंकराचार्य द्वारा की गई प्रत्येक सूत्र की व्याख्या की और त्रुटियाँ दिखला दीं, तो वहाँ पर उपस्थित सारे मायावादी संन्यासी आश्चर्यचकित रह गये।

সকল সন্ন্যাসী কহে,—'শুনহ শ্রীপাদ ।
তুমি যে খণ্ডিলে অর্থ, এ নহে বিবাদ ॥ ১৩৫॥

सकल सन्न्यासी कहे,—'शुनह श्रीपाद ।
तुमि ये खण्डिले अर्थ, ए नहे विवाद ॥ १३५॥

सकल—सभी; **सन्न्यासी**—मायावादी संन्यासी; **कहे**—कहते हैं; **शुनह**—कृपया सुनो; **श्रीपाद**—हे श्रीपाद; **तुमि**—आप; **ये**—वह; **खण्डिले**—खण्डित किया; **अर्थ**—अर्थ; **ए**—यह; **नहे**—नहीं; **विवाद**—विवाद।

अनुवाद

सारे मायावादी संन्यासियों ने कहा, "हे श्रीपाद, आप कृपया यह जान लें कि हमें वास्तव में आपके द्वारा इन अर्थों के खण्डन के बारे में कोई विवाद नहीं है, क्योंकि आपने तो इन सूत्रों की स्पष्ट समझ प्रदान की है।

आचार्य-कल्पित अर्थ,—इहा सभे जानि ।
सम्प्रदाय-अनुरोधे तबु ताहा मानि ॥ १३६ ॥

आचार्य-कल्पित अर्थ,—इहा सभे जानि ।
सम्प्रदाय-अनुरोधे तबु ताहा मानि ॥ १३६ ॥

आचार्य—शंकराचार्य; **कल्पित**—कल्पित; **अर्थ**—अर्थ; **इहा**—यह; **सभे**—हम सब; **जानि**—जानते हैं; **सम्प्रदाय-अनुरोधे**—किन्तु अपने सम्प्रदाय के हित में; **तबु**—फिर भी; **ताहा**—वह; **मानि**—हम स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

"हम जानते हैं कि यह सारा वाग्जाल शंकराचार्य की कल्पना से उद्भूत है, किन्तु हम उसी सम्प्रदाय के होने के कारण इसे स्वीकार करते हैं, यद्यपि हम इससे सन्तुष्ट नहीं हैं।

मुख्यार्थ व्याख्या कर, देखि तोमार बल' ।
मुख्यार्थे लागाल प्रभु सूत्र-सकल ॥ १३७ ॥

मुख्यार्थ व्याख्या कर, देखि तोमार बल' ।
मुख्यार्थे लागाल प्रभु सूत्र-सकल ॥ १३७ ॥

मुख्य-अर्थ—मुख्य अर्थ, प्रत्यक्ष अर्थ; **व्याख्या**—व्याख्या; **कर**—आप करते हैं; **देखि**—देखें; **तोमार**—आपका; **बल**—बल, शक्ति; **मुख्य-अर्थे**—प्रत्यक्ष अर्थ; **लागाल**—आरम्भ किया; **प्रभु**—प्रभु; **सूत्र-सकल**—*वेदान्त-सूत्र* के सभी सूत्रों की।

अनुवाद

मायावादी संन्यासियों ने आगे कहा, "अब हम देखना चाहते हैं कि आप इन सूत्रों की उनके प्रत्यक्ष अर्थ में कितनी अच्छी तरह व्याख्या कर सकते हैं।" यह सुनकर चैतन्य महाप्रभु ने *वेदान्त-सूत्र* की प्रत्यक्ष व्याख्या करना प्रारम्भ किया।

बृहद्वस्तु 'ब्रह्म' कहि—'श्री-भगवान्' ।
षड्-विधैश्वर्य-पूर्ण, पर-तत्त्व-धाम ॥ १३८ ॥

बृहद्वस्तु 'ब्रह्म' कहि—'श्री-भगवान्' ।
षड्-विधैश्वर्य-पूर्ण, पर-तत्त्व-धाम ॥ १३८ ॥

बृहत्-वस्तु—सार जो महानतम से बढ़कर है; **ब्रह्म**—ब्रह्म के नाम से ज्ञात; **कहि**—हम कहते हैं; **श्री-भगवान्**—श्री भगवान्; **षट्**—छः; **विध**—विविधताएँ; **ऐश्वर्य**—ऐश्वर्य; **पूर्ण**—पूर्ण; **पर-तत्त्व**—परम सत्य; **धाम**—आगार।

अनुवाद

"ब्रह्म जो कि बड़े से भी बड़ा है, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् है। वे छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं; अतएव वे परम सत्य तथा परम ज्ञान के आगार हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि परम सत्य की अनुभूति तीन अवस्थाओं में होती है—निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति के विस्तार हैं, जो छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं—ये हैं धन, यश, बल, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग। भगवान् छहों ऐश्वर्यों से युक्त हैं, अतएव वे परम ज्ञान में अन्तिम सत्य हैं।

স্বরূপ-ঐশ্বর্যে তাঁর নাহি মায়া-গন্ধ ।
সকল বেদের হয় ভগবান্সে 'সম্বন্ধ' ॥ ১৩৯॥

स्वरूप-ऐश्वर्ये ताँर नाहि माया-गन्ध ।
सकल वेदेर हय भगवान्से 'सम्बन्ध' ॥ १३९ ॥

स्वरूप—अपने आदि रूप में; **ऐश्वर्ये**—ऐश्वर्य; **ताँर**—उनके; **नाहि**—नहीं है; **माया-गन्ध**—भौतिक जगत् का कल्मष; **सकल**—सब में; **वेदेर**—वेदों के; **हय**—ऐसा है; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **से**—वह; **सम्बन्ध**—सम्बन्ध।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने मूल रूप में भौतिक जगत् के कल्मष से रहित छह दिव्य ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। यह समझना होगा कि समस्त वैदिक साहित्य में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही परम लक्ष्य हैं।

তাঁরে 'নির্বিশেষ' কহি, চিচ্ছক্তি না মানি ।
অর্ধ-স্বরূপ না মানিলে পূর্ণতা হয় হানি ॥১৪০॥

ताँरे 'निर्विशेष' कहि, चिच्छक्ति ना मानि ।
अर्ध-स्वरूप ना मानिले पूर्णता हय हानि ॥ १४० ॥

ताँरे—उनको; **निर्विशेष**—निर्विशेष; **कहि**—हम कहते हैं; **चित्-शक्ति**—आध्यात्मिक शक्ति; **ना**—नहीं; **मानि**—मानते; **अर्ध**—अर्ध; **स्वरूप**—स्वरूप; **ना**—नहीं; **मानिले**—मानते; **पूर्णता**—पूर्णता; **हय**—हो जाती है; **हानि**—दोष, हानि।

अनुवाद

"जब हम परमेश्वर को निविर्शेष कहते हैं, तब हम उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को नकारते हैं। तार्किक दृष्टि से जब तुम आधा सत्य स्वीकार करते हैं, तब आप पूरे सत्य को नहीं समझ सकते।

तात्पर्य

उपनिषदों में कहा गया है :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यह श्लोक जो ईशोपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद् तथा अन्य कई उपनिषदों में आया है, बतलाता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छः ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। उनका पद अद्वितीय है, क्योंकि उनके पास धन, बल, प्रभाव, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग है। ब्रह्म का अर्थ है सबसे बड़ा, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तो महानतम से भी महान् हैं, जिस तरह ब्रह्माण्ड-भर में व्याप्त सूर्य-प्रकाश की तुलना में सूर्य का गोला बड़ा होता है। यद्यपि अल्पज्ञानी व्यक्ति के लिए ब्रह्माण्ड-भर में व्याप्त सूर्य-प्रकाश ही बहुत बड़ा लगता है, किन्तु सूर्य-प्रकाश से भी बड़ा होता है सूर्य और सूर्य से भी बड़े हैं सूर्यदेव। इसी प्रकार निर्विशेष ब्रह्म महानतम नहीं है, भले ही हमें ऐसा लगे। निर्विशेष ब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का केवल शारीरिक तेज है, किन्तु भगवान् का दिव्य रूप निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा दोनों से बड़ा होता है। इसीलिए वैदिक साहित्य में जहाँ कहीं भी ब्रह्म शब्द आया है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक समझना चाहिए।

भगवद्गीता में भगवान् को परब्रह्म भी कहा गया है। मायावादी तथा अन्य लोग कभी-कभी ब्रह्म को ठीक से समझ नहीं पाते, क्योंकि प्रत्येक जीव भी

ब्रह्म है। इसलिए कृष्ण को परब्रह्म कहा गया है। वैदिक साहित्य में जहाँ-जहाँ "ब्रह्म" या "परब्रह्म" शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहाँ उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का द्योतक समझना चाहिए। यही उनका वास्तविक अर्थ है। चूँकि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य ब्रह्म के विषय में है, अतएव कृष्ण ही वैदिक ज्ञान के चरम लक्ष्य हैं। निर्विशेष ब्रह्मज्योति भगवान् के साकार रूप पर आश्रित है। इसलिए ब्रह्मज्योति भले ही प्रथम साक्षात्कार हो, किन्तु परम पुरुष को पाने के लिए इसके भीतर प्रवेश करने की आवश्यकता है, जैसाकि ईशोपनिषद में उल्लेख है; तभी ज्ञान पूर्ण होता है। *भगवद्गीता* (७.१९) में भी इसकी पुष्टि की गई है—*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।* चिन्तन द्वारा परम सत्य की खोज तब पूर्ण होती है, जब कोई कृष्ण को समझने के बिन्दु तक आता है और उनकी शरण में जाता है। पूर्ण ज्ञान का वास्तविक विषय यही है।

निर्विशेष ब्रह्म के रूप में परम सत्य विषयक अधूरी अनुभूति भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्यों का निषेध करती है। परम सत्य के विषय में यह घातक ज्ञान है। जब तक परम सत्य के सारे पहलूओं—निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा अन्ततः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्—को स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक ज्ञान अधूरा रहता है। अपने *वेदार्थ-संग्रह* में श्रीपाद रामानुजाचार्य कहते हैं :

ज्ञानेन धर्मेण स्वरूपमपि निरूपितम्।
न तु ज्ञानमात्रं ब्रह्मेति कथमिदम् अवगम्यते॥

इस प्रकार वे इंगित करते हैं कि परम सत्य के वास्तविक स्वरूप को उनके ज्ञान और गुणों के आधार पर समझा जा सकता है। परम सत्य को केवल ज्ञान से पूर्ण समझ लेना पर्याप्त नहीं होगा। वैदिक साहित्य (*मुण्डक उपनिषद्* १.१.९) में यह उक्ति आती है—*यः सर्वज्ञः सर्ववित्,* जिसका अर्थ यह है कि परम सत्य हर बात को पूरी तरह से जानते हैं, किन्तु वेदों से ही हमें यह भी ज्ञात होता है कि *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,* जिसके अनुसार वे न केवल हर बात को जानते हैं, अपितु अपनी विविध शक्तियों का उपयोग करके वे तदनुसार कार्य भी करते हैं। अतएव यह जान लेना कि ब्रह्म अर्थात् सर्वोपरि चेतन है, पर्याप्त नहीं होगा। हमें यह भी जानना होगा कि वे अपनी विविध शक्तियों के माध्यम से कैसे चेतनापूर्वक कार्य करते हैं। मायावाद दर्शन

हमें केवल परम सत्य की चेतना के विषय में बतलाता है, उस चेतना के द्वारा वे किस तरह कार्य करते हैं, इसकी जानकारी नहीं देता। यही इस दर्शन का दोष है।

ভগবান্‌প্রাপ্তি-হেতু যে করি উপায় ।
শ্রবণাদি ভক্তি——কৃষ্ণ-প্রাপ্তির সহায় ॥ ১৪১ ॥

भगवान्‌प्राप्ति-हेतु ग्रे करि उपाय ।
श्रवणादि भक्ति——कृष्ण-प्राप्तिर सहाय ॥ १४१ ॥

भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **प्राप्ति-हेतु**—उन्हें प्राप्त करने के साधन; **ग्रे**—क्या; **करि**—मैं करता हूँ; **उपाय**—उपाय; **श्रवण-आदि**—श्रावण आदि भक्ति; **भक्ति**—भक्ति; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **प्राप्तिर**—उनको प्राप्त करने के लिए; **सहाय**—उपाय, साधन।

अनुवाद

"श्रवण से प्रारम्भ करके भक्ति द्वारा ही मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तक पहुँच सकता है। उनके पास पहुँचने का यही एकमात्र साधन है।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक केवल ब्रह्म को मात्र पूर्ण ज्ञान समझकर सन्तुष्ट हो जाते हैं, किन्तु वैष्णव दार्शनिक न केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में विस्तार से जानते हैं, अपितु उन तक सीधे पहुँचने की विधि भी जानते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी विधि बतलाई है, जो नवधा भक्ति है और जिसका शुभारम्भ श्रवण से होता है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम्॥

(*भागवत* ७.५.२३)

नवधाभक्ति के नौ अंग इस प्रकार हैं—कृष्ण के बारे में श्रवण करना, उनका कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, उनके चरणकमलों की सेवा करना, मन्दिर में उनकी पूजा करना, उनकी स्तुतियाँ करना, दास-रूप में उनकी सेवा करना, उनसे सख्य भाव रखना और बिना किसी शर्त के उनकी शरण में जाना। केवल नवधाभक्ति के अभ्यास द्वारा, जिसमें भगवान् के सम्बन्ध में श्रवण करना सर्वप्रमुख है (*श्रवणादि*), भगवान् तक सीधे पहुँचा जा सकता है। श्री चैतन्य

महाप्रभु ने श्रवण की इस विधि के महत्त्व पर काफी बल दिया है। उनके अनुसार, यदि लोगों को कृष्ण के विषय में श्रवण करने का अवसर दिया जाए, तो वे निश्चय ही अपनी सुप्त चेतना या भगवत्प्रेम को धीरे-धीरे विकसित कर लेंगे। *श्रवणादिशुद्धचित्ते करये उदय* (*चैतन्य चरितामृत, मध्य* २२.१०७)। हर एक में ईश्वर के प्रति प्रेम सुप्त रूप में रहता है, और यदि मनुष्य को भगवान् के विषय में श्रवण करने का अवसर प्रदान किया जाए, तो वह प्रेम विकसित हो सकता है। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर कार्य करता है। हम लोगों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में केवल श्रवण करने का अवसर देते हैं और खाने के लिए उन्हें प्रसाद देते हैं। इसका वास्तविक फल यह है कि विश्वभर में लोग इस विधि को अपना रहे हैं और कृष्ण के शुद्ध भक्त बन रहे हैं। हमने आम लोगों को कृष्ण के विषय में सुनने तथा कृष्ण का प्रसाद ग्रहण करने का अवसर प्रदान करने के लिए विश्वभर में सैकड़ों केन्द्र खोल रखे हैं। ये दोनों विधियाँ हर एक, यहाँ तक कि एक बालक भी अपना सकता है। चाहे कोई निर्धन हो या धनी, विद्वान हो या मूर्ख, काला हो या गोरा, वृद्ध हो या बालक—जो भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में सुनता है और प्रसाद ग्रहण करता है, वह भक्ति के दिव्य स्तर तक ऊपर उठ जाता है।

सेइ सर्व-वेदेर 'अभिधेय' नाम ।
साधन-भक्ति हैते हय प्रेमेर उदगम ॥ १४२॥

सेइ सर्व-वेदेर 'अभिधेय' नाम ।
साधन-भक्ति हैते हय प्रेमेर उद्गम ॥ १४२॥

सेइ सर्व-वेदेर—सभी वैदिक साहित्य का वही सार है; **अभिधेय नाम**—*अभिधेय* नामक प्रक्रिया अथवा भक्तियुक्त क्रियाएँ; **साधन-भक्ति**—इस प्रक्रिया का दूसरा नाम "साधन भक्ति"; **हैते**—इससे; **हय**—है; **प्रेमेर**—भगवत् प्रेम का; **उद्गम**—जागरण, उद्गम।

अनुवाद

"गुरु के निर्देशानुसार इस संयमित साधन भक्ति का अभ्यास करने पर मनुष्य का सुप्त भगवत् प्रेम निश्चित रूप से जागृत हो उठता है। यह विधि अभिधेय कहलाती है।

तात्पर्य

श्रवण तथा कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति के अभ्यास से बद्धजीव का अशुद्ध हृदय शुद्ध हो जाता है और इस तरह वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को समझ सकता है। इस सनातन सम्बन्ध का वर्णन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा इस प्रकार किया गया है—*जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर नित्यदास*—जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सनातन दास है। इस *सम्बन्ध* के प्रति आश्वस्त हो जाने पर जीव वैसे कार्य करता है। यह *अभिधेय* कहलाता है। इसके बाद आती है *प्रयोजन सिद्धि* अर्थात् जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति। यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने इस सम्बन्ध को समझकर वैसे कार्य करता है, तो उसका जीवन-उद्देश्य स्वत: परिपूर्ण हो जाता है। मायावादी दार्शनिक आत्म-साक्षात्कार की पहली अवस्था से भी चूक जाते हैं, क्योंकि उनमें ईश्वर के साकार होने की कोई धारणा नहीं होती। भगवान् सबके स्वामी हैं और केवल वे ही ऐसे पुरुष हैं, जो सारे जीवों की सेवा स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु मायावाद दर्शन में इस ज्ञान का अभाव रहता है, इसलिए मायावादियों को ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध का भी ज्ञान नहीं हो पाता। वे झूठे ही सोचते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है या प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के तुल्य है। इसलिए जीव की वास्तविक स्थिति उनको स्पष्ट न होने के कारण वे आगे बढ़ें भी तो कैसे? यद्यपि मायावादी दार्शनिकों को अपने मुक्त होने का गर्व रहता है, किन्तु वे भगवान् के चरणकमलों की अवज्ञा करने के कारण पुन: भौतिक कार्यकलापों में आ गिरते हैं। यही *पतन्ति अध:* कहलाता है :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिन
स्त्वय्यस्त-भावादविशुद्धबुद्धय:।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत:
पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रय:॥

(*भागवत* १०.२.३२)

यहाँ यह कहा गया है कि जो लोग अपने आपको मुक्त समझते हैं, किन्तु भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को न जानने के कारण भक्ति नहीं करते, वे निश्चय ही पथभ्रष्ट हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध

को जाने और उसी के अनुसार कर्म करे। तभी उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो सकेगा।

कृष्णेर चरणे हय यदि अनुराग ।
कृष्ण विनु अन्यत्र तार नाहि रहे राग ॥ १४३॥

कृष्णेर चरणे हय यदि अनुराग ।
कृष्ण विनु अन्यत्र तार नाहि रहे राग ॥ १४३ ॥

कृष्णेर—कृष्ण के; **चरणे**—चरणकमलों में; **हय**—हो जाता है; **यदि**—यदि; **अनुराग**—अनुराग; **कृष्ण**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; **विनु**—बिना; **अन्यत्र**—और कहीं; **तार**—उसका; **नाहि**—नहीं; **रहे**—रहती; **राग**—आसक्ति, प्रेम।

अनुवाद

"यदि कोई भगवत्प्रेम उत्पन्न कर लेता है और कृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्त हो जाता है, तो धीरे-धीरे अन्य सारी वस्तुओं से उसकी आसक्ति लुप्त हो जाती है।

तात्पर्य

यह भक्ति में प्रगति की परीक्षा है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (११.२.४२) में कहा गया है— *भक्तिपरेषानुभवो विरक्तिरन्यत्र च*—भक्ति में भक्त की अनुरक्ति केवल कृष्ण से होती है; तब वह अन्य अनेक वस्तुओं में आसक्त रहना नहीं चाहता। यद्यपि मायावादी दार्शनिकों को मुक्ति-मार्ग पर अत्यधिक अग्रसर माना जाता है, किन्तु हम देखते हैं कि कुछ समय के बाद वे राजनीतिक तथा परोपकारी कार्यों पर उतर आते हैं। अनेक बड़े बड़े संन्यासी जिन्हें मुक्त तथा अत्यन्त उन्नत माना जाता है, वे फिर से भौतिकतावादी कार्यकलापों में उतर आते हैं, यद्यपि उन्होंने इस जगत् को *मिथ्या* (झूठा) कहकर छोड़ दिया था। किन्तु जब कोई भक्त भक्ति विकसित कर लेता है, तब वह फिर से ऐसे परोपकारी कार्यों में आसक्त नहीं होता। वह केवल भगवान् की सेवा करने के लिए ही प्रेरित होता है और वह ऐसी सेवा में अपना सारा जीवन लगा देता है। वैष्णव तथा मायावादी दार्शनिकों में यही अन्तर है। इसलिए भक्ति व्यावहारिक है, जबकि मायावादी दर्शन मात्र मानसिक चिन्तन है।

पञ्चम पुरुषार्थ सेई प्रेम-महाधन ।
कृष्णेर माधुर्य-रस कराय आस्वादन ॥ १४४॥

पञ्चम पुरुषार्थ सेइ प्रेम-महाधन ।
कृष्णेर माधुर्य-रस कराय आस्वादन ॥ १४४॥

पञ्चम—पाँचवाँ; **पुरुष-अर्थ**—जीवन का उद्देश्य; **सेइ**—वह; **प्रेम**—ईश्वर-प्रेम; **महा-धन**—महान् धन; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **माधुर्य**—माधुर्य प्रेम; **रस**—रस; **कराय**—कराता है; **आस्वादन**—आस्वादन।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम इतना उन्नत होता है कि इसे मानव जीवन का पाँचवा लक्ष्य माना जाता है। भगवत्प्रेम जागृत करके कोई भी व्यक्ति माधुर्य प्रेम के पद को प्राप्त कर सकता है और इसी जीवन काल में ही उसका आस्वादन कर सकता है।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक मुक्ति को ही जीवन की चरम सिद्धि मानते हैं, जो सिद्धि का चतुर्थ पद है। सामान्यतया लोग जीवन के चार प्रमुख लक्ष्यों (पुरुषार्थों) से परिचित हैं। ये हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। किन्तु भक्ति तो मुक्ति के भी ऊपर के पद पर स्थित है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक रूप से मुक्त व्यक्ति ही भगवत्प्रेम (*कृष्णप्रेम*) के अर्थ को समझ सकता है। रूप गोस्वामी को उपदेश देते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा था—*कोटिमुक्तमध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्णभक्त*—"करोड़ों मुक्त व्यक्तियों में से कोई एक व्यक्ति ही कृष्ण का भक्त बन पाता है।"

सबसे अधिक उन्नत मायावादी दार्शनिक मुक्ति पद तक ऊपर उठ सकता है, किन्तु कृष्ण-भक्ति तो ऐसी मुक्ति से भी बढ़कर है। श्रील व्यासदेव ने इस तथ्य की व्याख्या *श्रीमद्भागवत* (१.१.२) में इस प्रकार की है :

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।

"भागवत पुराण उन सारे भौतिकता से प्रेरित धर्मों का पूर्ण तिरस्कार करते हुए उस सर्वोच्च सत्य की प्रतिष्ठा करता है, जो केवल उन भक्तों को ही समझ में

आ सकता है; जिनके हृदय शुद्ध हैं।" यह सर्वोच्च सत्य वास्तविकता है, जो सबके कल्याण हेतु माया से भिन्न है। ऐसा सत्य तापत्रय को समूल नष्ट करने वाला है।" *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या करने वाला *श्रीमद्भागवत* ग्रंथ *परमो निर्मत्सराणाम्* के लिए है अर्थात् उनके लिए है, जो ईर्ष्या से पूरी तरह दूर रहते हैं। मायावादी दार्शनिक ईश्वर के अस्तित्व से ईर्ष्या करते हैं, अतएव *वेदान्त-सूत्र* वास्तव में उनके लिए नहीं है। वे व्यर्थ ही *वेदान्त-सूत्र* में अपनी टाँग अड़ाते हैं, किन्तु उनमें इसे समझने का सामर्थ्य नहीं है, जैसेकि *वेदान्त-सूत्र* के लेखक अपने भाष्य *श्रीमद्भागवत* में लिखते हैं कि यह उनके लिए है जिनके हृदय शुद्ध हैं (*परमो निर्मत्सराणाम्*)। यदि कोई कृष्ण से ईर्ष्या करता है, तो वह *वेदान्त-सूत्र* या *श्रीमद्भागवत* को कैसे समझ सकता है? मायावादियों का मुख्य पेशा है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को अपमानित करना। उदाहरणार्थ, यद्यपि *भगवद्गीता* में कृष्ण चाहते हैं कि हम उनकी शरण में जाएँ, किन्तु वर्तमान भारत के एक महान् पंडित एवं तथाकथित दार्शनिक ने विरोध किया है कि हमें "कृष्ण की शरण" में थोड़े जाना है। इसलिए वह ईर्ष्यालु है। चूँकि विभिन्न मायावादी कृष्ण से ईर्ष्या करते हैं, अतएव वे *वेदान्त-सूत्र* को समझ नहीं पाते। भले ही वे मुक्त क्यों न हो चुके हों, जैसाकि वे झूठे ही दावा करते हैं, किन्तु कृष्णदास कविराज गोस्वामी यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के इस कथन को दुहराते हैं कि कृष्ण-प्रेम मुक्ति की अवस्था से परे है।

प्रेमा हैते कृष्ण हय निज भक्त-वश ।
प्रेमा हैते पाय कृष्णेर सेवा-सुख-रस ॥ १४५ ॥

प्रेमा हैते कृष्ण हय निज भक्त-वश ।
प्रेमा हैते पाय कृष्णेर सेवा-सुख-रस ॥ १४५ ॥

प्रेमा—कृष्ण-प्रेम; **हैते**—से; **कृष्ण**—कृष्ण; **हय**—हो जाते हैं; **निज**—अपने; **भक्त-वश**—भक्तों के वश में; **प्रेमा**—ईश-प्रेम; **हैते**—से; **पाय**—वह पाता है; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **सेवा-सुख-रस**—भक्ति रस।

अनुवाद

"महानतम से भी महान् परम भगवान् भक्तिमय सेवा के कारण अत्यन्त तुच्छ भक्त के भी वश में हो जाते हैं। भक्ति की ऐसी सुन्दर तथा

उन्नत प्रकृति है कि अनन्त भगवान् सूक्ष्म जीव की भक्ति के कारण उसके अधीन हो जाते हैं। भगवान् के साथ भक्ति-कार्यों के आदान-प्रदान में भक्त को भक्ति के दिव्य रस का वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है।

तात्पर्य

भक्त के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से तदाकार होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। *मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्* (*कृष्ण कर्णामृत* १०७)। श्रील बिल्वमंगल ठाकुर अपने निजी अनुभव के आधार पर कहते हैं कि यदि कोई भगवत्प्रेम विकसित कर लेता है, तो मुक्ति उसकी दासी बन जाती है और उसके लिए महत्त्वहीन हो जाती है। मुक्ति भक्त के समक्ष खड़ी रहती है और सब प्रकार की सेवा करने के लिए उत्सुक रहती है। मायावादी दार्शनिकों का मुक्ति का मानदण्ड भक्त के लिए अत्यन्त नगण्य है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भी भक्ति द्वारा उसके अधीन हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो अर्जुन के सारथी बने और जब अर्जुन ने आदेश दिया कि वे उसका रथ दोनों सेनाओं के बीच ले चलें (*सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत*) तो उन्होंने आज्ञा का पालन किया। भगवान् और भक्त का सम्बन्ध ऐसा होता है कि भगवान् महानतम से भी महान् होते हुए भी अपने तुच्छ भक्त की निष्ठायुक्त एवं अनन्य भक्ति के कारण उसकी सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं।

सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन नाम ।
एइ तिन अर्थ सर्व-सूत्रे पर्यवसान ॥ १४६॥

सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन नाम ।
एइ तिन अर्थ सर्व-सूत्रे पर्य्यवसान ॥ १४६ ॥

सम्बन्ध—सम्बन्ध; **अभिधेय**—कार्यरत कर्तव्य; **प्रयोजन**—जीवन का प्रयोजन; **नाम**—नाम; **एइ**—नहीं; **तिन**—तीन; **अर्थ**—अर्थ; **सर्व**—सभी; **सूत्रे**—*वेदान्त-सूत्रों* में; **पर्य्यवसान**—अन्तिम सीमा।

अनुवाद

"*वेदान्त-सूत्र* के प्रत्येक सूत्र में जिन तीन विषयों की व्याख्या की गई

है, वे हैं—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अपना सम्बन्ध, उस सम्बन्ध के अनुसार कार्यकलाप तथा जीवन का चरम लक्ष्य (भगवत्प्रेम विकसित करना), क्योंकि इन तीनों में ही सम्पूर्ण वेदान्त दर्शन की चरम परिणति है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (५.५.५) में कहा गया है :

पराभवस्तावदबोधजातो
यावन्न जिज्ञासत आत्म-तत्त्वम्॥

"जब तक मनुष्य अपना जीवन-लक्ष्य नहीं जानता, तब तक उसे अपने सारे कार्यों में पराजय मिलती है। ब्रह्म के विषय में जिज्ञासु होकर ही जीवन-लक्ष्य समझा जा सकता है।" ऐसी जिज्ञासा से ही *ब्रह्मसूत्र* का शुभारम्भ होता है—*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।* मनुष्य को यह जानने की जिज्ञासा होनी चाहिए कि वह कौन है, ब्रह्माण्ड क्या है, ईश्वर क्या हैं और उसके, ईश्वर तथा भौतिक जगत् के बीच का सम्बन्ध क्या है। ऐसे प्रश्न बिल्ली या कुत्ते नहीं कर सकते, किन्तु ये प्रश्न सच्चे मनुष्य के मन में उठने चाहिए। इन चारों बातों का ज्ञान *सम्बन्ध ज्ञान* कहलाता है—स्वयं के विषय में ज्ञान, ब्रह्माण्ड, परमेश्वर तथा इनका आन्तरिक सम्बन्ध। जब भगवान् से ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो अगला कार्यक्रम होता है इस सम्बन्ध के अनुसार कर्म करना। यह *अभिधेय* अर्थात् भगवान् के सम्बन्ध में किया जाने वाला कर्म कहलाता है। ऐसे नियत कर्म कर लेने के बाद जब मनुष्य को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य—भगवत्प्रेम—प्राप्त हो जाता है, तो उसे *प्रयोजन सिद्धि* मिल जाती है अर्थात् मनुष्य जीवन का लक्ष्य परिपूर्ण हो जाता है। *ब्रह्मसूत्र* या *वेदान्त-सूत्र* में इन विषयों को अच्छी तरह समझाया गया है। अतएव जो व्यक्ति *वेदान्त-सूत्र* को इन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में नहीं समझता, वह केवल अपना समय बरबाद कर रहा है। यही *श्रीमद्भागवत* (१.२.८) का कहना है :

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

भले ही कोई बड़ा भारी विद्वान क्यों न हो और अपने नियत कार्यों को

कितनी ही तल्लीनता से क्यों न करता हो, किन्तु यदि अन्ततः वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में जिज्ञासा नहीं करता और *श्रवणं कीर्तनम्* के प्रति उदासीन बना रहता है, तो उसने जो कुछ भी किया है, वह समय का अपव्यय मात्र है। मायावादी दार्शनिक अपने, प्रकट विश्व के तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पारस्परिक सम्बन्ध को न समझ पाने के कारण मात्र अपना समय नष्ट करते हैं और उनका दार्शनिक चिन्तन व्यर्थ होता है।

এই-মত সর্ব-সূত্রের ব্যাখ্যান শুনিয়া ।
সকল সন্ন্যাসী কহে বিনয় করিয়া ॥ ১৪৭॥

এइ-মত সর্ব-সূত্রের ব্যাখ্যান শুনিয়া ।
সকল সন্ন্যাসী কহে বিনয় করিয়া ॥ ১৪৭॥

एइ-मत—इस प्रकार; **सर्व-सूत्रेर**—*वेदान्त-सूत्र* के सभी सूत्रों के; **व्याख्यान**—व्याख्यान; **शुनिया**—सुनने से; **सकल**—सब; **सन्यासी**—मायावादी संन्यासियों के दल; **कहे**—कहा; **विनय**—विनम्र होकर; **करिया**—ऐसा करके।

अनुवाद

जब सारे मायावादी संन्यासियों ने सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन के आधार पर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रस्तुत की गई व्याख्या सुनी, तो वे अत्यन्त विनीत होकर बोले।

तात्पर्य

जो कोई व्यक्ति वेदान्त दर्शन को समझने का इच्छुक है, उसे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा वैष्णव आचार्यों की व्याख्याएँ स्वीकार करनी चाहिए, क्योंकि इन्होंने भी भक्तियोग के सिद्धान्तों के अनुसार *वेदान्त-सूत्र* पर भाष्य लिखे हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती समेत सारे संन्यासी अत्यन्त विनीत एवं उनके आज्ञाकारी बन गये और वे इस प्रकार बोले।

বেদময়-মূর্তি তুমি,—সাক্ষাত্নারায়ণ ।
ক্ষম অপরাধ,—পূর্বে যে কৈলুঁ নিন্দন ॥ ১৪৮॥

वेदमय-मूर्ति तुमि,—साक्षात्नारायण ।
क्षम अपराध,—पूर्वे ग्रे कैलुँ निन्दन ॥ १४८ ॥

वेद-मय—साक्षात् वैदिक ज्ञान; **मूर्ति**—मूर्ति; **तुमि**—आप; **साक्षात्**—साक्षात्; **नारायण**—नारायण; **क्षम**—क्षमा; **अपराध**—अपराध; **पूर्वे**—पहले; **ग्रे**—जो; **कैलुँ**—हमने किया है; **निन्दन**—निन्दा।

अनुवाद

"हे महोदय, आप साक्षात् वैदिक ज्ञान और साक्षात् नारायण हैं। कृपा करके हमें उन सारे अपराधों के लिए क्षमा कर दें, जिन्हें हमने आपकी आलोचना करके पहले किये हैं।"

तात्पर्य

भक्तियोग का पूरा मार्ग ही विनीत और समर्पित होने की विधि पर आधारित है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सारे मायावादी संन्यासी उनकी *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या सुनकर अत्यन्त विनीत एवं समर्पित हो चुके थे। उन्होंने *वेदान्त-सूत्र* का अध्ययन न करने एवं कीर्तन तथा नृत्य मात्र करने के लिए महाप्रभु की जो आलोचना की थी, उसके लिए क्षमा माँगी। हम महाप्रभु के पदचिह्नों का ही अनुसरण करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार कर रहे हैं। भले ही हम *वेदान्त-सूत्रों* में अधिक पटु न हों और उनके अर्थों को न समझ पाते हों, किन्तु हम आचार्यों के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। चूँकि हम महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण दृढ़तापूर्वक तथा आज्ञाकारी होकर कर रहे हैं, अतएव यह मान लेना होगा कि हम *वेदान्त-सूत्र* के विषय में हर वस्तु जानते हैं।

सेइ हैते सन्न्यासीर फिरि गेल मन ।
'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम सदा करये ग्रहण ॥ १४९ ॥

सेइ हैते सन्न्यासीर फिरि गेल मन ।
'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम सदा करये ग्रहण ॥ १४९ ॥

सेइ हैते—उस समय से लेकर; **सन्न्यासीर**—सारे मायावादी संन्यासी; **फिरि**—बदल; **गेल**—गये; **मन**—मन; **कृष्ण कृष्ण**—कृष्ण का पावन नाम; **नाम**—नाम; **सदा**—सदा; **करये**—करते हैं; **ग्रहण**—स्वीकार।

अनुवाद

जब मायावादी संन्यासियों ने महाप्रभु से *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या सुनी, उसी क्षण से उनके मन बदल गये और चैतन्य महाप्रभु के आदेश से वे भी सदा "कृष्ण! कृष्ण!" उच्चारण करने लगे।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि कभी-कभी *सहजिया* वर्ग के भक्तगण यह अभिमत व्यक्त करते हैं कि प्रकाशानन्द सरस्वती तथा प्रबोधानन्द सरस्वती एक ही व्यक्ति हैं। प्रबोधानन्द सरस्वती श्री चैतन्य महाप्रभु के एक महान् वैष्णव भक्त थे, किन्तु प्रकाशानन्द सरस्वती, जो कि बनारस के मायावादी संन्यासियों के मुखिया थे, एक भिन्न व्यक्ति थे। प्रबोधानन्द सरस्वती रामानुज संप्रदाय से सम्बन्धित थे, जबकि प्रकाशानन्द सरस्वती शंकराचार्य सम्प्रदाय के थे। प्रबोधानन्द सरस्वती ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से *चैतन्य-चन्द्रामृत, राधा-रससुधानिधि, संगीत-माधव, वृन्दावन-शतक* तथा *नवद्वीप-शतक* प्रमुख हैं। अपनी दक्षिण भारत की यात्रा के समय श्री चैतन्य महाप्रभु की भेंट श्री प्रबोधानन्द सरस्वती से हुई थी, जिनके दो भाई थे—वेंकट भट्ट तथा तिरुमलय भट्ट, जो रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव थे। गोपाल भट्ट गोस्वामी प्रबोधानन्द सरस्वती के भतीजे थे। ऐतिहासिक तथ्यों से पता चलता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने १४३३ शकाब्द अर्थात् १५११ ई. के चातुर्मास्य काल में दक्षिण भारत की यात्रा की थी, तभी वे रामानुज सम्प्रदाय के प्रबोधानन्द से मिले थे। तो फिर वही व्यक्ति शंकर-सम्प्रदाय के सदस्य के रूप में उनसे दो वर्ष बाद १४३५ शकाब्द में कैसे मिल सकता है? अतएव यह निष्कर्ष निकालना होगा कि सहजिया सम्प्रदाय वालों का यह अनुमान कि प्रबोधानन्द सरस्वती तथा प्रकाशानन्द सरस्वती एक ही व्यक्ति थे, मात्र भ्रम है।

এই-মতে তাঁ-সবার ক্ষমি' অপরাধ ।
সবাকারে কৃষ্ণ-নাম করিলা প্রসাদ ॥ ১৫০॥

এइ-মতে তাঁ-সবার ক্ষমি' অপরাধ ।
সবাকারে কৃষ্ণ-নাম করিলা প্রসাদ ॥ ১৫০॥

एइ-मते—इस प्रकार; **ताँ-सबार**—सभी संन्यासियों का; **क्षमि'**—क्षमा करके; **अपराध**—अपराध; **सबाकारे**—वे सभी; **कृष्ण-नाम**—कृष्ण का पावन नाम; **करिला**—दिया; **प्रसाद**—प्रसाद के रूप में।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने मायावादी संन्यासियों के सारे अपराध क्षमा कर दिये और उन पर बड़ी कृपा करके उन्हें कृष्णनाम का आशीर्वाद प्रदान किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कृपावतार हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने उन्हें *महावदान्यावतार* अर्थात् सर्वाधिक उदार अवतार कहकर सम्बोधित किया है। वे उन्हें *करुणयावतीर्णः कलौ* भी कहते हैं अर्थात् इस कलियुग में वे अपनी महान् कृपा के कारण ही अवतीर्ण हुए हैं। यहाँ इसी का दृष्टान्त है। श्री चैतन्य महाप्रभु मायावादी संन्यासियों से मिलना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे उन्हें कृष्ण के चरणकमलों पर अपराधी मानते थे, किन्तु यहाँ पर वे उन्हें क्षमा कर देते हैं (*ताँ-सबार क्षमि 'अपराध*), यह प्रचार कार्य में एक दृष्टान्त है। *आपनि आचरि 'भक्तिशिखाइमु सबारे।* श्री चैतन्य महाप्रभु हमें यह सिखलाते हैं कि उपदेशकों की जिनसे भेंट होती है, वे सभी लगभग कृष्णभावनामृत के विरोधी होने के साथ ही अपराधी भी होते हैं, किन्तु उपदेशकों का कर्तव्य है कि उन्हें कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रति आश्वस्त करें और उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित करें। हम संकीर्तन आन्दोलन के प्रचार-कार्य को अनेक विरोधियों के होने पर भी चालू रखे हुए हैं और अफ्रीका जैसे विश्व के सुदूर देशों में भी इस कीर्तन-विधि को लोग अपना रहे हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपराधियों को भी हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित करके कृष्णभावनामृत आन्दोलन की सफलता का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। हमें चाहिए कि हम आदरपूर्वक चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलें और इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम अपने प्रयासों में सफल होंगे।

তবে সব সন্ন্যাসী মহাপ্রভুকে লৈয়া ।
ভিক্ষা করিলেন সভে, মধ্যে বসাইয়া ॥ ১৫১ ॥

तबे सब सन्यासी महाप्रभुके लैया ।
भिक्षा करिलेन सभे, मध्ये वसाइया ॥ १५१ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **सब**—सब; **सन्यासी**—मायावादी संन्यासी; **महाप्रभुके**—चैतन्य महाप्रभु; **लैया**—उनको लेकर; **भिक्षा करिलेन**—प्रसाद लिया, भोजन किया; **सभे**—सबने मिलकर; **मध्ये**—मध्य में; **वसाइया**—उन्हें बैठाकर।

अनुवाद

इसके बाद सारे संन्यासियों ने महाप्रभु को अपने मध्य में ले लिया और सबने मिलकर भोजन किया।

तात्पर्य

इसके पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु न तो मायावादी संन्यासियों से मिलते-जुलते थे, न उनसे बातें करते थे, किन्तु अब उन्होंने उनके साथ भोजन किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें हरे कृष्ण कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया और उनके अपराधों को क्षमा कर दिया, तो वे पवित्र हो गये; अतएव उनके साथ भोजन करने या *भगवत्प्रसाद* ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं थी, यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु यह जान रहे थे कि यह भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित नहीं हुआ है। मायावादी संन्यासी अर्चाविग्रह की पूजा नहीं करते, या करते हैं, तो शिव के विग्रह की पूजा या *पञ्चोपासना* (विष्णु, शिव, दुर्गादेवी, गणेश तथा सूर्य की पूजा) करते हैं। यहाँ हम किसी देवता या विष्णु का कोई उल्लेख नहीं पाते, फिर भी चैतन्य महाप्रभु ने संन्यासियों के साथ इस आधार पर भोजन किया कि उन लोगों ने हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया था और उन्होंने उनके सारे अपराध माफ कर दिये थे।

ভিক্ষা করি' মহাপ্রভু আইলা বাসাঘর ।
হেন চিত্র-লীলা করে গৌরাঙ্গ-সুন্দর ॥ ১৫২ ॥

भिक्षा करि' महाप्रभु आइला वासाघर ।
हेन चित्र-लीला करे गौराङ्ग-सुन्दर ॥ १५२ ॥

भिक्षा—भिक्षा; **करि'**—लेकर; **महाप्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **आइला**—लौट आये; **वासाघर**—अपने निवासस्थान पर; **हेन**—इस प्रकार; **चित्र-लीला**—विचित्र लीला; **करे**—करते हैं; **गौराङ्ग**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **सुन्दर**—अति सुन्दर।

अनुवाद

मायावादी संन्यासियों के साथ भोजन करने के बाद गौरसुन्दर कहलाने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवास-स्थान को लौट आये। इस प्रकार महाप्रभु अपनी विचित्र लीलाएँ करते हैं।

चन्द्रशेखर, तपन मिश्र, आर सनातन ।
शुनि' देखि' आनन्दित सबाकार मन ॥ १५३॥

चन्द्रशेखर, तपन मिश्र, आर सनातन ।
शुनि' देखि' आनन्दित सबाकार मन ॥ १५३॥

चन्द्रशेखर—चन्द्रशेखर; **तपन मिश्र**—तपन मिश्र; **आर**—तथा; **सनातन**—सनातन; **शुनि'**—सुनकर; **देखि'**—देखकर; **आनन्दित**—बहुत प्रसन्न हुए; **सबाकार**—वे सब; **मन**—मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के तर्कों को सुनकर तथा उनकी विजय देखकर चन्द्रशेखर, तपन मिश्र तथा सनातन गोस्वामी सभी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

यहाँ इसका एक उदाहरण है कि संन्यासी को किस प्रकार प्रचार करना चाहिए। जब श्री चैतन्य महाप्रभु वाराणसी गये, तो वे अकेले थे। उनके साथ बड़ी टोली न थी। किन्तु वहाँ पर उन्होंने चन्द्रशेखर तथा तपन मिश्र से मित्रता कर ली थी और सनातन गोस्वामी भी उनसे मिलने आये थे। इस तरह वहाँ पर उनके अनेक मित्र न होते हुए भी अपने दृढ़तापूर्ण प्रचार तथा वेदान्त दर्शन पर स्थानीय संन्यासियों से तर्क करने में अपनी विजय के कारण वे देश के उस भाग में अत्यधिक विख्यात हो गये, जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है।

प्रभुके देखिते आइसे सकल सन्न्यासी ।
प्रभुर प्रशंसा करे सब वाराणसी ॥ १५४॥

प्रभुके देखिते आइसे सकल सन्न्यासी ।
प्रभुर प्रशंसा करे सब वाराणसी ॥ १५४॥

प्रभुके—चैतन्य महाप्रभु को; **देखिते**—देखने के लिए; **आइसे**—वे आये; **सकल**—सब; **सन्न्यासी**—मायावादी संन्यासी; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु की; **प्रशंसा**—प्रशंसा; **करे**—वे करते हैं; **सब**—सब; **वाराणसी**—वाराणसी नगर की।

अनुवाद

इस घटना के बाद वाराणसी के अनेक मायावादी संन्यासी महाप्रभु को मिलने के लिए आये और सारे नगर ने उनकी प्रशंसा की।

वाराणसी-पुरी आइला श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
पुरी-सह सर्व-लोक हैल महा-धन्य ॥ १५५॥

वाराणसी-पुरी आइला श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
पुरी-सह सर्व-लोक हैल महा-धन्य ॥ १५५॥

वाराणसी—वाराणसी नाम के; **पुरी**—नगर; **आइला**—आये; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **पुरी**—नगर; **सह**—साथ; **सर्व-लोक**—सभी लोग; **हैल**—हो गये; **महा-धन्य**—कृतज्ञ, आभारी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के वाराणसी आने के कारण नगर के साथ उसके सारे लोग महाधन्य हुए।

लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुके देखिते ।
महा-भिड़ हैल द्वारे, नारे प्रवेशिते ॥ १५६॥

लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुके देखिते ।
महा-भिड़ हैल द्वारे, नारे प्रवेशिते ॥ १५६॥

लक्ष लक्ष—लाखों; **लोक**—लोग; **आइसे**—आये; **प्रभुके**—महाप्रभु को; **देखिते**—देखने के लिए; **महा-भिड़**—बड़ी भीड़; **हैल**—वहाँ हो गई; **द्वारे**—द्वार पर; **नारे**—न हो सके; **प्रवेशिते**—प्रविष्ट।

अनुवाद

उनके निवासस्थान के द्वार पर इतनी अधिक भीड़ हो गई कि उसकी संख्या लाखों तक पहुँच गई।

प्रभु यबे या'न विश्वेश्वर-दरशने ।
लक्ष लक्ष लोक आसि' मिले सेई स्थाने ॥ १५७॥

प्रभु यबे या'न विश्वेश्वर-दरशने ।
लक्ष लक्ष लोक आसि' मिले सेइ स्थाने ॥ १५७॥

प्रभु—चैतन्य महाप्रभु; **यबे**—जब; **या'न**—जाते हैं; **विश्वेश्वर**—विश्वेश्वर, वाराणसी के देवता (अर्चाविग्रह); **दरशने**—दर्शन करने के लिए; **लक्ष लक्ष**—लाखों; **लोक**—लोग; **आसि'**—आते हैं; **मिले**—मिलते हैं; **सेइ**—वह; **स्थाने**—उस स्थान पर।

अनुवाद

जब महाप्रभु विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने गये, तो उनका दर्शन पाने के लिए लाखों लोग वहाँ एकत्रित हो गये।

तात्पर्य

इस श्लोक की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु नियमित रूप से वाराणसी स्थित (शिवजी के) विश्वेश्वर मन्दिर का दर्शन करते थे। वैष्णव सामान्यतया किसी देवता के मन्दिर में दर्शन करने नहीं जाते, किन्तु यहाँ हम पाते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु नियमित रूप से वाराणसी के प्रमुख अर्चाविग्रह विश्वेश्वर मन्दिर का दर्शन करते थे। सामान्यतया वाराणसी में मायावादी संन्यासी तथा शिवजी के उपासक रहते हैं, तो फिर यह कैसे हुआ कि वैष्णव संन्यासी के रूप में चैतन्य महाप्रभु भी विश्वेश्वर मन्दिर में दर्शन करने जाते थे? इसका उत्तर यह है कि कोई भी वैष्णव देवताओं के प्रति धृष्टतापूर्ण व्यवहार नहीं करता। वह सबका समुचित आदर करता है, यद्यपि वह देवता को कभी भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के तुल्य नहीं मानता।

ब्रह्म-संहिता में शिवजी, ब्रह्माजी, सूर्यदेव, गणेश तथा भगवान् विष्णु को नमस्कार करने के मन्त्र हैं। इन सबकी पूजा निर्विशेषवादियों द्वारा *पञ्चोपासना* के रूप में की जाती है। निर्विशेषवादी अपने मन्दिरों में भगवान् विष्णु, शिवजी, सूर्यदेव, दुर्गादेवी और कभी-कभी ब्रह्माजी के भी विग्रह स्थापित करते हैं और यह प्रथा आज भी हिन्दू धर्म के नाम पर भारत में विद्यमान है। वैष्णवजन भी इन सारे देवताओं की पूजा कर सकते हैं, किन्तु *ब्रह्म-संहिता* के नियमों के ही अनुसार, जिसकी संस्तुति श्री चैतन्य महाप्रभु ने की है। इस सन्दर्भ में

ब्रह्म-संहिता में आये शिवजी, ब्रह्माजी, दुर्गादेवी, सूर्यदेव तथा गणेश विषयक मन्त्र देखे जा सकते हैं :

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"बहिरंगा शक्ति, माया, जो चित् शक्ति की छाया की तरह है, समस्त लोगों के द्वारा दुर्गा रूप में पूजित है, जो इस संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाली हैं। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनकी इच्छा के अनुसार दुर्गा स्वयं कार्य करती हैं।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.४४)

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्
सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"अम्लों की क्रिया से दूध दही में परिणत हो जाता है, फिर भी कार्य रूपी दही न तो अपना कारणरूप दूध है न उससे भिन्न है। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनका शम्भु रूप इसी प्रकार का रूपान्तर है, जिससे कि संहार का कार्य सम्पन्न हो सके।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.४५)

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्ड-विधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनसे उनके भिन्न अंश ब्रह्मा को भौतिक संसार के नियमन की शक्ति उसी प्रकार प्राप्त होती है, जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश के एक अंश को सूर्यकान्त नामक मणियों के तेज के रूप में प्रकट करता है। (*ब्रह्म-संहिता* ५.४९)

यद्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः।

विघ्नान् विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनके चरणकमलों को गणेशजी सदैव अपने हाथी रूपी सिर से निकले दो कुम्भों पर धारण किये रहते हैं, जिससे कि उन्हें तीनों लोकों में प्रगति के पथ पर आने वाले सारे अवरोधों को नष्ट करने की शक्ति प्राप्त हो।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.५०)

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"अनन्त तेजयुक्त सूर्य, जो सारे ग्रहों का राजा है और अच्छे आत्मा का प्रतिबिम्ब है, इस जगत् की आँख के तुल्य है। मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनके आदेश का पालन करते हुए सूर्य काल के चक्र पर आरूढ़ होकर अपनी यात्रा पूरी करता है।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.५२)

ये सारे देवता कृष्ण के दास हैं, वे कृष्ण के तुल्य नहीं हैं। अतएव यदि कोई पञ्चोपासना मन्दिर में जाये भी, जिसका ऊपर उल्लेख हुआ है, तो उसे चाहिए कि वह विग्रहों को उस रूप में स्वीकार न करे, जिस रूप में निर्विशेषवादी मानते हैं। उन सबको व्यक्तिगत देवता मानना चाहिए, किन्तु ये सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। उदाहरणार्थ, *पद्म पुराण* के अनुसार शंकराचार्य शिवजी के अवतार माने जाते हैं। उन्होंने भगवान् के आदेशानुसार मायावाद दर्शन का प्रचार किया। हम श्लोक ११४ के अन्तर्गत इसकी व्याख्या कर चुके हैं। *ताँर दोष नाहि, तेंहो आज्ञाकारी दास।* "इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है, क्योंकि उन्होंने तो इस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशानुसार वेदों के वास्तविक उद्देश्य को आच्छादित कर दिया है।" यद्यपि शिवजी ने ब्राह्मण (शंकराचार्य) के रूप में मायावाद के गलत दर्शन का प्रचार किया, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि चूँकि उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश पर ऐसा किया, इसलिए इसमें उनका कोई दोष नहीं है (*ताँर दोष नाहि*)।

हमें चाहिए कि सभी देवताओं का समुचित आदर करें। यदि हम एक चींटी तक का सम्मान कर सकते हैं, तो फिर देवताओं का क्यों नहीं? किन्तु हमें यह सदैव जानना चाहिए कि कोई भी देवता न तो भगवान् के तुल्य है, न उनसे बड़ा है। *एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—"केवल कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और अन्य सारे देवता, जिनमें शिवजी, ब्रह्माजी, देवी दुर्गा तथा गणेश आते हैं, उनके दास हैं।" जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति करता है, वहाँ हम जैसे क्षुद्र जीवों का क्या कहना? हम निश्चय ही भगवान् के सनातन दास हैं। मायावादी दर्शन की मान्यता है कि देवता, जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्—सभी समान हैं। अतएव यह वैदिक ज्ञान का सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण और झूठा विचार है।

स्नान करिते यबे या'न गङ्गा-तीरे ।
ताहाञि सकल लोक हय महा-भिड़े ॥१५८॥

स्नान करिते यबे या'न गङ्गा-तीरे ।
ताहाञि सकल लोक हय महा-भिड़े ॥ १५८ ॥

स्नान—स्नान; **करिते**—करने के लिए; **यबे**—जब; **या'न**—जाते हैं; **गङ्गा**—गंगा; **तीरे**—तट पर; **ताहाञि**—वहीं पर उसी समय; **सकल**—सब; **लोक**—लोग; **हय**—इकट्ठे हो जाते; **महा-भिड़े**—बड़ी संख्या में।

अनुवाद

जब भी श्री चैतन्य महाप्रभु स्नान करने के लिए गंगा के किनारे जाते, तभी सैकड़ों-हजारों लोगों की भारी भीड़ वहाँ एकत्र हो जाती।

बाहु तुलि' प्रभु बले,—बल हरि हरि ।
हरि-ध्वनि करे लोक स्वर्ग-मर्त्य भरि' ॥१५९॥

बाहु तुलि' प्रभु बले,—बल हरि हरि ।
हरि-ध्वनि करे लोक स्वर्ग-मर्त्य भरि' ॥ १५९ ॥

बाहु तुलि'—बाहें (भुजाएँ) उठाकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **बले**—बोलते; **बल**—आप सब बोलें; **हरि हरि**—हरि हरि, भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; **हरि-ध्वनि**—हरि शब्द की

ध्वनि; **करे**—करते; **लोक**—सभी लोक; **स्वर्ग-मर्त्य**—स्वर्ग में, आकाश में और पृथ्वी पर; **भरि'**—पूर्णतया भरकर।

अनुवाद

जब भी भीड़ बढ़ जाती, श्री चैतन्य महाप्रभु खड़े हो जाते और अपने दोनों हाथ उठाकर "हरि! हरि!" का उच्चारण करते, जिसके प्रत्युत्तर में लोग फिर "हरि! हरि!" उच्चारण करते और इस ध्वनि से धरती और आकाश दोनों भर जाते।

लोक निस्तारिया प्रभुर चलिते हैल मन ।
वृन्दावने पाठाइला श्री-सनातन ॥ १६० ॥

लोक निस्तारिया प्रभुर चलिते हैल मन ।
वृन्दावने पाठाइला श्री-सनातन ॥ १६० ॥

लोक—लोग; **निस्तारिया**—उद्धार करके; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **चलिते**—चलने के लिए; **हैल**—हो गया; **मन**—मन; **वृन्दावने**—वृन्दावन की ओर; **पाठाइला**—भेजा; **श्री-सनातन**—सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

इस प्रकार सामान्य लोगों का उद्धार करके महाप्रभु ने वाराणसी से प्रस्थान करने की इच्छा की। उन्होंने श्री सनातन गोस्वामी को शिक्षा देकर वृन्दावन भेजा।

तात्पर्य

महाप्रभु का वृन्दावन से लौटकर वाराणसी में रुकने का वास्तविक प्रयोजन सनातन गोस्वामी से भेंट करके उन्हें शिक्षा देना था। सनातन गोस्वामी महाप्रभु से उनके वाराणसी लौटने पर मिले, जहाँ महाप्रभु ने दो महीने तक वैष्णव दर्शन तथा वैष्णव कार्यकलापों के रहस्यों की शिक्षा प्रदान की। महाप्रभु ने उन्हें पूरी शिक्षा देने के बाद उन्हें अपना आदेश पालन करने के लिए वृन्दावन भेज दिया। जब सनातन गोस्वामी वृन्दावन गये, तो वहाँ कोई मन्दिर न थे। पूरा शहर एक खुले मैदान की तरह खाली था। सनातन गोस्वामी ने यमुना के किनारे अपना आसन जमाया और कुछ काल बाद धीरे-धीरे उन्होंने पहला मन्दिर

बनवाया। फिर अन्य मन्दिर बने और अब तो यह नगर मन्दिरों से भरा हुआ है, जिनकी संख्या ५००० के लगभग है।

রাত্রি-দিবসে লোকের শুনি' কোলাহল ।
বারাণসী ছাড়ি' প্রভু আইলা নীলাচল ॥১৬১॥

रात्रि-दिवसे लोकेर शुनि' कोलाहल ।
वाराणसी छाड़ि' प्रभु आइला नीलाचल ॥ १६१ ॥

रात्रि—रात; **दिवसे**—दिन; **लोकेर**—सभी सामान्य लोग; **शुनि**—सुनकर; **कोलाहल**—कोलाहल, शोर; **वाराणसी**—वाराणसी नगर; **छाड़ि'**—छोड़कर; **प्रभु**—भगवान्; **आइला**—लौट गये; **नीलाचल**—पुरी को।

अनुवाद

चूँकि वाराणसी नगरी सदैव लोगों की भीड़ एवं कोलाहल से भरी रहती थी, अतएव सनातन को वृन्दावन भेजकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी लौट आये।

এই লীলা কহিব আগে বিস্তার করিয়া ।
সঙ্ক্ষেপে কহিলাঁ ইহাঁ প্রসঙ্গ পাইয়া ॥১৬২॥

एइ लीला कहिब आगे विस्तार करिया ।
सङ्क्षेपे कहिलाँ इहाँ प्रसङ्ग पाइया ॥ १६२ ॥

एइ—ये; **लीला**—लीलाएँ; **कहिब**—मैं कहूँगा; **आगे**—आगे, कुछ समय बाद; **विस्तार**—विस्तार से वर्णन; **करिया**—करके; **सङ्क्षेपे**—संक्षेप में; **कहिलाँ**—मैंने कही हैं; **इहाँ**—इस जगह; **प्रसङ्ग**—प्रसंग; **पाइया**—लाभ उठाकर।

अनुवाद

मैंने यहाँ पर महाप्रभु की इन लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है, किन्तु बाद में मैं इनका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा।

এই পঞ্চ-তত্ত্ব-রূপে শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য ।
কৃষ্ণ-নাম-প্রেম দিয়া বিশ্ব কৈলা ধন্য ॥১৬৩॥

एइ पञ्च-तत्त्व-रूपे श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
कृष्ण-नाम-प्रेम दिया विश्व कैला धन्य ॥ १६३ ॥

एइ—यह; **पञ्च-तत्त्व-रूपे**—पाँच रूपों में भगवान्; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **प्रेम**—कृष्ण-प्रेम; **दिया**—दिया; **विश्व**—सारा संसार; **कैला**—किया; **धन्य**—धन्य।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु तथा उनके पंचतत्त्व पार्षदों ने भगवान् के पवित्र नाम का वितरण भगवत्प्रेम जगाने के लिए सारे ब्रह्माण्ड में किया। इस तरह सारा ब्रह्माण्ड धन्य हो गया।

तात्पर्य

यहाँ पर यह कहा गया है कि चैतन्य महाप्रभु ने अपने संगियों के साथ संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करके सारे ब्रह्माण्ड को धन्य कर दिया। चैतन्य महाप्रभु ने ५०० वर्ष पूर्व अपनी उपस्थिति से सारे ब्रह्माण्ड को पहले ही पवित्र बनाया है, अतएव अब जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों पर चलकर और आचार्यों के उपदेशों का पालन करते हुए महाप्रभु की निष्ठापूर्वक सेवा करने का प्रयास करेगा, वह सारे ब्रह्माण्ड में हरे कृष्ण महामन्त्र के पवित्र नाम का प्रचार करने में सफल हो सकेगा। कुछ ऐसे मूर्ख आलोचक हैं, जो यह कहते हैं कि यूरोपवासियों तथा अमरीकी लोगों को संन्यास नहीं दिया जा सकता, किन्तु यहाँ हम यह देख रहे हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार सारे ब्रह्माण्ड में करना चाह रहे थे। प्रचार-कार्य के लिए संन्यासी आवश्यक हैं। ये आलोचक सोचते हैं कि प्रचार-कार्य के लिए केवल भारतीयों या हिन्दुओं को ही संन्यास दिया जाना चाहिए, किन्तु उनका ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से शून्य है। संन्यासियों के बिना प्रचार-कार्य में बाधा पड़ेगी। अतएव चैतन्य महाप्रभु के आदेश के अनुसार तथा उनके पार्षदों के आशीर्वाद से इस विषय में भेदभाव नहीं बरतना चाहिए, किन्तु विश्वभर के लोगों को प्रचार करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और उन्हें संन्यास दिया जाना चाहिए, जिससे कि चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का यह सम्प्रदाय असीमित रूप से विस्तार प्राप्त करे। हमें मूर्खों की आलोचना की परवाह नहीं है। हम

अपना कार्य करते रहेंगे और चैतन्य महाप्रभु तथा उनके पंचतत्त्व पार्षदों के आशीर्वाद पर ही आश्रित रहेंगे।

मथुराते पाठाइल रूप-सनातन ।
दुइ सेना-पति कैल भक्ति प्रचारण ॥ १६४॥

मथुराते पाठाइल रूप-सनातन ।
दुइ सेना-पति कैल भक्ति प्रचारण ॥ १६४॥

मथुराते—मथुरा की ओर; **पाठाइल**—भेजे; **रूप-सनातन**—रूप और सनातन गोस्वामी दोनों भाई; **दुइ**—वे दोनों; **सेना-पति**—सेनापति के रूप में; **कैल**—उन्होंने उन्हें बनाया; **भक्ति**—भक्ति; **प्रचारण**—प्रचार के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी इन दो सेनापतियों को वृन्दावन भेज दिया।

तात्पर्य

जब रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी वृन्दावन गये, तो वहाँ एक भी मन्दिर न था। किन्तु अपने प्रचार द्वारा उन्होंने धीरे-धीरे अनेक मन्दिर बनवाये। सनातन गोस्वामी ने मदनमोहन मन्दिर बनवाया और रूप गोस्वामी ने गोविन्दजी मन्दिर बनवाया। इसी प्रकार उनके भतीजे जीव गोस्वामी ने राधा-दामोदर मन्दिर, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने राधारमण मन्दिर, श्री लोकनाथ गोस्वामी ने गोकुलानन्द मन्दिर तथा श्यामानन्द गोस्वामी ने श्यामसुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। इस तरह धीरे-धीरे अनेक मन्दिर बने। प्रचार-कार्य के लिए मन्दिरों का निर्माण भी आवश्यक होता है। इन गोस्वामियों ने न केवल ग्रंथ लिखे, अपितु मन्दिर भी बनवाये; क्योंकि प्रचार-कार्य के लिए इन दोनों की आवश्यकता होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि उनका संकीर्तन आन्दोलन सारे विश्व में परिव्याप्त हो जाए। अब चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ ने चैतन्य सम्प्रदाय के प्रचार का यह कार्य अपने हाथों में लिया है, अतएव इसके सदस्यों को न केवल विश्व के प्रत्येक नगर तथा ग्राम में मन्दिर बनवाने चाहिए, अपितु जो पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, उनका वितरण

भी करना चाहिए और इन पुस्तकों की संख्या को भी बढ़ाना चाहिए। पुस्तकों के वितरण तथा मन्दिरों के निर्माण कार्य को साथ-साथ समानान्तर रेखाओं की भाँति चलना चाहिए।

নিত্যানন্দ-গোসাঞে পাঠাইলা গৌড়-দেশে ।
তেঁহো ভক্তি প্রচারিলা অশেষ-বিশেষে ॥ ১৬৫ ॥

নিত্যানন্দ-গোসাঞে পাঠাইলা গৌড়-দেশে ।
তেঁহো ভক্তি প্রচারিলা অশেষ-বিশেষে ॥ ১৬৫ ॥

নিত্যানন্দ—प्रभु नित्यानन्द; **गोसाञे**—आचार्य; **पाठाइला**—भेजे गये थे; **गौड़-देशे**—बंगाल में; **तेंहो**—वे; **भक्ति**—भक्ति; **प्रचारिला**—प्रचार किया; **अशेष-विशेषे**—बहुत व्यापक रीति से।

अनुवाद

जिस तरह रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी मथुरा की ओर भेजे गये थे, उसी तरह नित्यानन्द प्रभु को चैतन्य महाप्रभु ने सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार करने के लिए बंगाल भेजा था।

तात्पर्य

बंगाल में नित्यानन्द प्रभु का नाम अत्यन्त विख्यात है। निस्सन्देह, जो कोई नित्यानन्द प्रभु को जानता है, समझ लो कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु को भी जानता है। किन्तु कुछ ऐसे पथभ्रष्ट भक्त हैं, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की अपेक्षा नित्यानन्द प्रभु की महत्ता पर अधिक बल देते हैं। यह ठीक नहीं है। न ही श्री चैतन्य महाप्रभु पर नित्यानन्द प्रभु की अपेक्षा अधिक बल दिया जाना चाहिए। *चैतन्य-चरितामृत* के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने अपना घर इसीलिए छोड़ दिया, क्योंकि उनका भाई नित्यानन्द प्रभु की अपेक्षा चैतन्य महाप्रभु की महत्ता पर अधिक बल देता था। वास्तव में यह विचार किये बिना कि नित्यानन्द बड़े हैं या चैतन्य महाप्रभु या कि अद्वैत प्रभु, हमें चाहिए कि किसी भेदभाव के बिना पंचतत्त्व का सम्मान करें। सबका समान आदर होना चाहिए—*श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौर-भक्तवृन्द।* भगवान् चैतन्य या भगवान् नित्यानन्द के सारे भक्त पूज्य हैं।

आपने दक्षिण देश करिला गमन ।
ग्रामे ग्रामे कैला कृष्ण-नाम प्रचारण ॥ १६६॥

आपने दक्षिण देश करिला गमन ।
ग्रामे ग्रामे कैला कृष्ण-नाम प्रचारण ॥ १६६॥

आपने—स्वयं; **दक्षिण देश**—दक्षिण भारत; **करिला**—गये; **गमन**—यात्रा करते हुए; **ग्रामे ग्रामे**—प्रत्येक गाँव में; **कैला**—उन्होंने किया; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण के पावन नाम का; **प्रचारण**—प्रचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं दक्षिण भारत गये, जहाँ उन्होंने गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का प्रचार किया।

सेतुबन्ध पर्यन्त कैला भक्तिर प्रचार ।
कृष्ण-प्रेम दिया कैला सबार निस्तार ॥ १६७॥

सेतुबन्ध पर्य्यन्त कैला भक्तिर प्रचार ।
कृष्ण-प्रेम दिया कैला सबार निस्तार ॥ १६७॥

सेतुबन्ध—सेतुबन्ध, जहाँ भगवान् रामचन्द्र ने अपना पुल बनाया; **पर्य्यन्त**—उस स्थान तक; **कैला**—किया; **भक्तिर**—भक्ति का; **प्रचार**—प्रचार; **कृष्ण-प्रेम**—कृष्ण-प्रेम; **दिया**—प्रदान किया; **कैला**—किया; **सबार**—सब का; **निस्तार**—उद्धार।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु भारत प्रायद्वीप के दक्षिण धुर तक गये, जिसे सेतुबन्ध (कुमारी अन्तरीप) कहते हैं। उन्होंने सर्वत्र भक्ति सम्प्रदाय तथा कृष्ण-प्रेम का वितरण किया और इस तरह सबका उद्धार किया।

एइ त' कहिल पञ्च-तत्त्वेर व्याख्यान ।
इहार श्रवणे हय चैतन्य-तत्त्व ज्ञान ॥ १६८॥

एइ त' कहिल पञ्च-तत्त्वेर व्याख्यान ।
इहार श्रवणे हय चैतन्य-तत्त्व ज्ञान ॥ १६८॥

एइ त'—यह; **कहिल**—वर्णन किया; **पञ्च-तत्त्वेर**—पंचतत्त्व का; **व्याख्यान**—

व्याख्यान; **इहार**—इसका; **श्रवणे**—सुनकर; **हय**—होता है; **चैतन्य-तत्त्व**—चैतन्य महाप्रभु के सत्य-तत्त्व का; **ज्ञान**—ज्ञान।

अनुवाद

इस तरह मैंने पंचतत्त्व के सत्य की व्याख्या की है। जो इस व्याख्या को सुनता है, उसका श्री चैतन्य महाप्रभु विषयक ज्ञान बढ़ता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को समझने में पंचतत्त्व महत्त्वपूर्ण कारक है। सहजिया लोग पंचतत्त्व के महत्त्व को नहीं जानते, इसलिए वे अपने खुद के नारे बनाते रहते हैं, यथा—भज निताइ गौर, राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम, या श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द। ऐसे उच्चारण भले ही अच्छे पद्य हों, किन्तु इनसे हमें भक्ति में प्रगति करने की सहायता नहीं मिलती। ऐसे उच्चारणों में अनेक विसंगतियाँ हैं, जिनकी चर्चा यहाँ न करना ही ठीक होगा। वास्तव में पंचतत्त्व नामों का उच्चारण करते समय उन्हें नमस्कार करना चाहिए—*श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।* ऐसे उच्चारण से मनुष्य को हरे कृष्ण महामन्त्र का निरपराध कीर्तन करने की क्षमता के लिए आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते समय इसका भी पूरा-पूरा उच्चारण करना चाहिए—*हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।* हमें चाहिए कि कल्पनाशील भक्तों द्वारा बनाये गये किसी नारे को मूर्खतावश ग्रहण न करें। यदि हम जप से कोई लाभ उठाना चाहते हैं, तो हमें महान् आचार्यों का अनुसरण कड़ाई से करना होगा। इसकी पुष्टि महाभारत में हुई है—*महाजनो येन गतः स पन्थाः*—"जिस पथ से होकर आचार्य तथा महापुरुष गण चलते हैं, वही प्रगति का वास्तविक मार्ग है।"

শ্রী-চৈতন্য, নিত্যানন্দ, অদ্বৈত,—তিন জন ।
শ্রীবাস-গদাধর-আদি যত ভক্ত-গণ ॥ ১৬৯॥

श्री-चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत,—तिन जन ।
श्रीवास-गदाधर-आदि यत भक्त-गण ॥ १६९॥

श्री-चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत—श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु; **तिन**—ये तीन; **जन**—व्यक्ति; **श्रीवास-गदाधर**—श्रीवास तथा गदाधर; **आदि**—आदि; **ग्रत**—सब; **भक्त-गण**—भक्तगण।

अनुवाद

पंचतत्त्व महामन्त्र का कीर्तन करते समय श्री चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास के नामों का, उनके अनेक भक्तों समेत उच्चारण करना चाहिए। यही विधि है।

सबाकार पादपद्मे कोटि नमस्कार ।
येछे तेछे कहि किछु चैतन्य-विहार ॥ १७० ॥

सबाकार पादपद्मे कोटि नमस्कार ।
ग्रैछे तैछे कहि किछु चैतन्य-विहार ॥ १७० ॥

सबाकार—वे सब; **पाद-पद्मे**—चरणकमलों पर; **कोटि**—करोड़ों, अनगिनत, असंख्य; **नमस्कार**—नमस्कार; **ग्रैछे तैछे**—किसी न किसी तरह; **कहि**—मैं कहता हूँ; **किछु**—कुछ; **चैतन्य-विहार**—चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के बारे में।

अनुवाद

मैं पंचतत्त्व को पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार मेरे विचार से मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के विषय में कुछ वर्णन कर सकूँगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ १७१ ॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ १७१ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—चरणकमलों पर; **ग्रार**—जिनके; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करता है; **कृष्ण-दास**—कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और

सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए *श्रीचैतन्य-चरितामृत* कह रहा हूँ।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण-प्रेम के संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार समूचे संसार में करना चाहते थे, अतएव अपने जीवन काल में उन्होंने संकीर्तन आन्दोलन को प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने विशेष रूप से श्री रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को वृन्दावन और नित्यानन्द को बंगाल भेजा तथा स्वयं दक्षिण भारत गये। इस प्रकार वे शेष जगत् में अपने सम्प्रदाय का प्रचार-कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के ऊपर छोड़ गये। इस संघ के सदस्यों को सदैव स्मरण रखना होगा कि यदि वे आचार्यों के आदेशानुसार नियमों का दृढ़ता से पालन करेंगे और निष्ठापूर्वक प्रचार करेंगे, तो उन्हें निश्चित रूप से श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रभूत आशीर्वाद प्राप्त होगा और उनका प्रचार-कार्य सारे विश्व में सर्वत्र सफल होगा।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत आदिलीला के अन्तर्गत "भगवान् चैतन्य के पाँच स्वरूप" शीर्षक सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।